तृतीय संस्करण
१९४९

दो रुपया आठ आने

तृतीय संस्करण के सम्बन्ध में—

'वीर मराठे' का तृतीय संस्करण पाठकों के सामने उपस्थित किया जा रहा है। प्रथम संस्करण के बाद—मराठा इतिहास के ऐतिहासकों की विचारधाराओं और संसार की प्रगति में जो उतार-चढ़ाव व परिवर्तन हुए हैं उनको दृष्टि में रख कर कुछेक आवश्यक परिवर्तन किये गए हैं।

प्रथम संस्करण की भाँति यह संस्करण भी—हरिद्वार समीपवर्तिनी गङ्गा के उस पार अधिष्ठित वनमालाओं और पर्वतमालाओं की अधिष्ठातृ कुलमाता-गुरुकुल कांगड़ी की अदृश्य आत्मा को समर्पित है। उस भूमि-भाग की निर्बाध स्वच्छन्द पहाड़ियों की घाटियों के उतार-चढ़ाव में, उन दिनों विद्यार्थी जीवन में मराठे वीरों की ऐतिहासिक वीरता की घटनायें चित्रित दिखाई देती थीं।

आशा है यह तृतीय संस्करण भी भारतीय राष्ट्र में स्वतन्त्रता तथा स्वच्छन्दता की भावनाओं को जागृत करेगा।

—भीमसेन विद्यालंकार

तृतीय संस्करण

१९५९

दो रुपया आठ आने

तृतीय संस्करण के सम्बन्ध में—

'वीर मराठे' का तृतीय संस्करण पाठकों के सामने उपस्थित किया जा रहा है। प्रथम संस्करण के बाद—मराठा इतिहास के ऐतिहासकों की विचारधाराओं और संसार की प्रगति में जो उतार-चढ़ाव व परिवर्तन हुए हैं उनको दृष्टि में रख कर कुछेक आवश्यक परिवर्तन किये गए हैं।

प्रथम संस्करण की भाँति यह संस्करण भी—हरिद्वार समीपवर्तिनी गङ्गा के उस पार अधिष्ठित वनमालाओं और पर्वतमालाओं की अधिष्ठातृ कुलमाता-गुरुकुल कांगड़ी की अदृश्य आत्मा को समर्पित है। उस भूमि-भाग की निर्बाध स्वच्छन्द पहाड़ियों की घाटियों के उतार-चढ़ाव में, उन दिनों विद्यार्थी जीवन में मराठे वीरों की ऐतिहासिक वीरता की घटनायें चित्रित दिखाई देती थीं।

आशा है यह तृतीय संस्करण भी भारतीय राष्ट्र में स्वतन्त्रता तथा स्वच्छन्दता की भावनाओं को जागृत करेगा।

—भीमसेन विद्यालंकार

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में इन ग्रन्थों से सहायता ली गई है—

१—'मराठी रियासत' (मराठी भाषा में)

२—'राइज़ आफ़ क्रिश्चियन पावर इन इण्डिया' (मेजर बसु कृत)

३—'एम्पायर इन एशिया' (मि० टौरन्स)

४—'छत्रपतींचे कारस्थानी' तथा मराठी भाषा में लिखे गए शिवाजी के जीवन चरित्र।

५—यदुनाथ सरकार द्वारा लिखित 'शिवाजी'

६—'मॉडर्न रिव्यू' के विशेष लेख।

७—महादेव रानडे का 'मराठों का उत्कर्ष'।

हम इन सब ग्रन्थों के लेखकों तथा सम्पादकों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता का भाव प्रकाशित करते हैं।

भूमिका

(ले०—श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर, 'केसरी' व 'मराठा' के संस्थापक मराठी वाङ्मय के साहित्य-सम्राट)

भीमसेन विद्यालंकार, सम्पादक 'सत्यवादी' और 'अर्जुन' ने मुझे अपनी 'वीर मराठे' नाम की पुस्तक की भूमिका लिखने के लिये कहा है। मैं इसे सम्मान की बात समझता हूँ—केवल अपने लिए ही नहीं अपितु उस जाति के लिए भी जिसके साथ मेरा सम्बन्ध है।

राष्ट्रीय मनोवृत्ति के विकास में जाति-अभिमान का भी विशेष स्थान है, और इस बात पर सर्वसम्मति है कि इस जाति-अभिमान को भी जागृत रखकर प्रसन्न होना चाहिए। परन्तु यह जाति-अभिमान नम्रतासम्मिश्रित होना चाहिए और इसका प्रकाशन इस ढंग से करना चाहिए जिससे दूसरे के हृदय को ठेस न पहुँचे और नम्रता के कारण जातिअभिमान शोभायुक्त हो। इतिहास सदा खुले पन्नों वाली पुस्तक है, इसको जिज्ञासु व्यक्ति उत्सुकता से पढ़ना चाहता है, और उस पढ़ने वाले का हृदय उत्साहित और विकसित होता है। इतिहास का अध्ययन करने वाले व्यक्ति—जिन्होंने इतिहास-शास्त्र की आत्मा को अपना लिया है—आसानी से अपने आप को ईर्ष्या की भावनाओं से मुक्त करा सकते हैं और ऐतिहासिक घटनाओं के सम्बन्ध में तटस्थ तथा निर्मुक्त व्यक्ति की मनोवृत्ति के साथ, सम्मतियां बना सकते हैं। प्रसन्नता की बात है कि श्री० भीमसेन में इतिहास के विद्यार्थी के लिए आवश्यक, तटस्थ होकर घटनाओं को देखने की भावना विद्यमान् हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने मराठा लोगों की वीरतापूर्ण घटनाओं पर प्रस्तुत पुस्तक लिखकर हिन्दी भाषा-भाषियों के सामने उपस्थित की है। इस पुस्तक की भूमिका लिखकर जो थोड़ी बहुत

नेता मैंने की है, मुझे उनका प्रतिफल, लेखक महोदय ने मराठों के सम्बन्ध में उदारतापूर्ण एवं गौरवमय वर्णन लिख कर दे दिया है।

मुझे नहीं मालूम कि भारतवर्ष के सब प्रान्तों में मराठों का नाम समानरूपेण सम्मान और प्रसन्नता के साथ स्मरण किया जाता है कि नहीं, कुछेक व्यक्ति मराठा शब्द का प्रयोग 'लुटेरे और डाकू' के अर्थों में भी करते हैं। यदि ऐसी स्थिति है तो इसके लिये मराठा लोगों को अपने हिस्से का दायित्व लेना ही चाहिए, क्योंकि सामान्यतया राजनैतिक दृष्टि से सफल जातियों को इस प्रकार के नाम देना अनिवार्य बात होती है। यह बात निर्विवाद है कि मराठा लोगों ने स्वराज्य स्थापित करने की भावना से तथा भारतवर्ष में अपनी प्रभावशाली शक्ति स्थापित करने के लिये दिल्ली की मुग़लशक्ति को नष्टप्राय कर दिया था; और यूरोपियन ऐतिहासिकों की सम्मति में अंग्रेज़ लोग मुग़लों के उत्तराधिकारी नहीं थे, अपितु उन्होंने मराठों से भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली को छीना था अथवा दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि दिल्ली में असली राजशक्ति के संचालक मराठे थे और अंग्रेज़ उनके उत्तराधिकारी हुए। अंग्रेज़ों ने भारत का राजदण्ड मराठों के हाथों से छीना था। क्योंकि १८०३ ई० तक जब कि लार्ड लेक ने मराठों को दिल्ली से स्थिर रूप में शासनच्युत किया था, मराठा लोग ही दिल्ली दरबार में, पिछले १०० वर्षों से उसी प्रकार से राजतन्त्र तथा शासनतन्त्र को चला रहे थे, जिस प्रकार अंग्रेज़ बंगाल में मुग़लों से दीवानी के अधिकार लेकर दीवानी मुहकमों का संचालन कर रहे थे।

चौथ और सरदेशमुखी की सनदों द्वारा मुग़लों ने मराठा लोगों को मुग़ल प्रान्तों में कर वसूल करने का अधिकार दिया और उन्हें इसके बदले में मुग़ल दरबार की सैनिक आवश्यकताएँ पूरी करनी होती थीं। १७४० ई० में [illegible] के बादशाह नादिरशाह ने दिल्ली पर हमला कर उसे बर्बाद कर दिया था तब समस्त भारतवर्ष [illegible] प्रभाव, [illegible] की सत्ता के [illegible] में क्षीण हुआ था और [illegible] में [illegible] नहीं [illegible] पर सब [illegible]।

[illegible] और १७६० ई० के [illegible] ने [illegible] के प्रति [illegible]

मराठी सेनाओं के साथ अटक तक पहुँचा था। १७६१ ई० की पानीपत की लड़ाई अफ़गान पार्टी और हिन्दुस्तानी पार्टियों में दिल्ली दरबार में शक्ति प्राप्त करने के लिये किये जा रहे षडयन्त्रों का परिणाम रूप थी। इन षडयन्त्रों में मराठा लोगों ने हिन्दुस्तानी पार्टी के सहायकों की हैसियत से भाग लिया था।

यद्यपि मराठा जाति की एक पीढ़ी की पीढ़ी, पानीपत के युद्ध में तबाह हो गई परन्तु उसके ११ साल बाद मराठों ने पुनः दिल्ली में शक्ति प्राप्त कर ली थी, और इस समय से आगे, महादजी सिंधिया की मृत्यु तक, महादजी सिंधिया ही मुगल बादशाह का सैनिक-संरक्षक था और उत्तर भारत के राजपूतों के लिये भय पैदा करने वाला था। ईस्ट इंडिया कम्पनी की ओर से बङ्गाल की ओर से दिल्ली पर होने वाली नोक-झोंक तथा छीनाझपटी को रोकने वाले भी महादजी सिंधिया के ही मराठा सिपाही थे। बंगाल में—कलकत्ता की मराठा खाई, मराठा डिच—मराठों के बंगाल में उत्तर-पूर्व सीमा तक पहुंचने की स्पष्ट साक्षी है। एक दक्खनी ब्राह्मण ने बिहार में सूबेदार की हैसियत में शासन भी किया।

नागपुर मराठों की प्रसिद्ध राजधानी थी। यहां के शासक शिवाजी के भोंसले राजवंश के उत्तराधिकारियों में से ही राजा होकर राज्य करते थे। यह बात निर्विवाद है कि मध्यभारत और दक्षिण भारत का बड़ा भाग, मराठों के स्वराज के अंग थे। शिवाजी से पहले उनके पिता शाहजी ने तंजौर में पहले जागीर, फिर धीरे २ अपना राज्य कायम किया था। और मद्रास के समीपवर्ती जिंजी के किले को, सम्भा जी की मृत्यु के बाद मुगलों की बड़ी २ सेनाओं के आक्रमणों से राजवंश के प्रसिद्ध व्यक्तियों तथा सन्तानों को सुरक्षित रखने के लिये चुना गया था। (यहाँ छत्रपति राजाराम तथा उसका परिवार भी रखा गया।)

उपरिलिखित विवरण से यह स्पष्ट हो गया है कि किसी समय मराठा लोग अखिल भारतीय शक्ति के रूप में भारत के शासनतन्त्र का संचालन करते थे।

परन्तु मराठा लोग भी दोषों से मुक्त नहीं थे। उनमें भी—राजनैतिक शक्ति के महत्वाकांक्षी-राज्य के स्थापना करने तथा दूसरे लोगों पर एकतंत्र

शासन कायम करने की इच्छा वाली जातियों के से गुण दोष मिले हुए थे। मैं इस प्रसंग में मराठों के शासक रूप में प्रकट किये गये गुण-दोषों की विवेचना करना उचित नहीं समझता—मराठा लोग शक्तिशाली वीर लोग थे और उन्हें वीर और शक्तिशाली होने की कीमत भी देनी पड़ी। फिर भी मराठों में एक विशेषता थी—इस विशेषता का इस पुस्तक के लेखक ने आकर्षक ढंग में उल्लेख किया है। उनकी यह विशेषता उनके सैनिक जीवन की विशेषताओं में संनिहित थी। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक को मराठों के सैनिक गुणों ने विशेष रूप से प्रभावित किया है। मराठों की प्रशंसा में लिखे गये भावप्रकाशन को स्वीकार करने के स्थान पर मैं यह कहना उचित समझता हूं कि प्रस्तुत पुस्तक का नाम लेखक की वीर मनोवृत्ति को प्रकट करता है और इसलिये मराठों की इस वीर मनोवृत्ति की सराहना की गई है।

मैं इस आशा के साथ इस भूमिका को समाप्त करता हूं कि भारतवर्ष की विभिन्न जातियां पहले की अपेक्षा अधिक मात्रा में एक दूसरे के गुणों को समझ कर एक दूसरे की विशेषता को सराहने की मनोवृत्ति पैदा करेंगी।

—एन. सी. केलकर

'केसरी,' पूना

॥ ओ३म् ॥

प्रथम परिच्छेद

: १ :

समय की लहर

समय की लहर को रोकना असम्भव है। शक्तिशाली सम्राट् और उनके विश्व-व्यापी साम्राज्य भी इस लहर के वेग को नहीं रोक सकते। रशिया के प्रबल सम्राट् ज़ार निकोलस द्वितीय और जर्मनी के विलियम कैसर को भी अपने सिंहासन छोड़ने पड़े। स्वाधीनता, आत्मनिर्णय और समानता के सिद्धान्त क्रान्ति-युग के जीवन-मंत्र हैं। ब्रिटिश साम्राज्य जैसे शक्तिशाली व्यापक संगठन भी इन भावनाओं को दबाने में असमर्थ सिद्ध हुए हैं। छोटे २ देश और जनसमुदाय समय की इस लहर का सहारा लेते हुए प्रबल वेग से उठ रहे हैं। इस सदी की तीसरी और चौथी दशाब्दी में कोई राष्ट्र किसी नए राष्ट्र की जनता को उसकी इच्छा के प्रतिकूल अपने अधीन नहीं कर सका। जापान, इटली और जर्मनी के महत्वाकांक्षी तानाशाहों ने चीन, अबिसीनिया और योरुप के छोटे २ राष्ट्रों को पैरों तले रौंदना चाहा। विश्व के प्रजातन्त्रवादी राष्ट्र तथा उनकी जनता इनके विरुद्ध हथियार लेकर खड़ी हो गई। सोवियत रूस की जनता के किसान-मजदूरों की सरकार ने, जनता की अदम्य शक्ति का प्रदर्शन कर जर्मनी के नाज़ीगुट को नष्टभ्रष्ट कर दिया। ऋषि दयानन्द के शब्दों में 'राजाओं के राजा—किसान आदि—परिश्रम करनेवाले हैं और राजा उनका रक्षक है; जो प्रजा न हो तो राजा किसका ?' आज भी प्रजा को सन्तुष्ट करने की, समय की लहर प्रबल वेग से चल रही है।

इसी प्रकार १७ वीं, १८ वीं सदी में भी उस समय के सम्राट् जातीयता, समानता और स्वाधीनता के भावों की समय की लहर को नहीं रोक सके थे। अमरीका, फ्रांस, इटली और इंगलैण्ड की जाग्रत जनता ने तात्कालिक शासकों से अपने जन्मसिद्ध अधिकारों को प्राप्त किया। प्राचीन रीति-रिवाजों को बदलने में और अन्यायों को मलियामेट करने में कमी नहीं की। इस प्रबल अनिवार्य प्रवाह का आदिस्रोत कहां है? किस समय और किस देश में इस नये युग का अवतार हुआ था?

विचारशील दार्शनिक और विस्तृत दृष्टि वाले ऐतिहासिक इस संसार को एक राष्ट्र समझते हैं। वे भिन्न २ देशों को इस विश्व-राष्ट्र का अंग समझते हैं। इस शरीर-राष्ट्र में जब एक अंग पर आघात पहुंचता है तो उसका शेष अंगों पर भी असर पड़ता है। महासमुद्र में उठी हुई तरंगें दूर २ तक अपना प्रभाव पैदा करती हैं। प्राकृतिक जगत् की यही घटना आए दिन हम देखते हैं। इस नियम की सच्चाई आजकल के सभ्य जगत् में भी दिखाई दे रही है। रशिया के बोल्शविज़्म ने अपने विचारों को सब भूमि-भागों तक पहुँचाया है। विचार-क्रांतियां बड़े २ समुद्रों को पार करके असर पैदा कर रही हैं। हमारा भारतवर्ष भी आज इन विचार-क्रांतियों के सम्पर्क में आकर जाग्रत हो रहा है।

अमेरिका और फ्रांस की राज्य-क्रांतियों ने अनेक देशों में क्रांतियां कराईं। भारतवर्ष में भी समय २ पर नई लहरें पैदा हुईं। सम्राट् अकबर के समय इस देश की जनता प्राचीन रिवाजों से ऊबकर नये और स्वर्णीय युग के लिये तरस रही थी। धर्मान्धता से बिछुड़े और रूठे हुए हिन्दुओं और मुसलमानों को मिलाने का उद्योग किया जा रहा था। सम्राट् अकबर के जीवन में यह लहर पूर्ण रूप से उतरी हुई थी। राष्ट्रीय एकता के महत्व को अकबर समझता था। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उसने नयी संस्थाओं और नई नीतियों का भी संचालन किया। इन्हीं दिनों पश्चिमीय देशों में भी इसी प्रकार की जागृति हो रही थी। योरोप में लूथर ने इसका श्रीगणेश किया। उसने रोम के पोप

की स्वेच्छाचारिता एकाधिकारिता को तिलांजलि दी। लूथर का जीवन प्राचीन धार्मिक अन्यायों के विरोध में (प्रोटैस्ट रूप) या प्रतिवादरूप था। इसीलिये उसकी विचारधारा का नाम प्रोटैस्टएट पड़ा। फ्रांस, स्विट्ज़रलैंड आदि देशों में इस जागृति ने ह्युगनिज़्म और कैल्वनिज़्म का रूप धारण किया। इंगलैंड में रानी एलिज़बेथ ने ईसाई सम्प्रदाय की इन दो विरोधी लहरों (प्रोटैस्टैएट और रोमन कैथोलिसज़्म) की टक्कर से स्वदेश को बचाने की कोशिश की। 'उस समय के भारतवर्ष में भी यही रंग-ढङ्ग दिखाई दे रहे थे।

उत्तर भारत में गुरुनानक देव हिन्दुओं और मुसलमानों की कट्टरता से खिन्न होकर, धार्मिक असहिष्णुता का अन्त करने के लिये समाज को युक्तिवाद, भ्रातृ-भाव और एकेश्वरवाद का उपदेश दे कर शिक्षित कर रहे थे। प्राचीन धार्मिक एकाधिकारी महन्तों के प्रभाव को मलियामेट करने के लिये उन्होंने प्राकृत भाषा में धार्मिक उपदेश देने का उपक्रम बाँधा। नानकदेव की शिक्षाओं ने सिक्ख जाति के रूप में अपना तेज प्रकट किया। गुरु गोविन्दसिंह और महाराजा रणजीतसिंह ने इस तेज को राजतेज का रूप दिया। महाराजा रणजीतसिंह ने अपने समय में निम्नाङ्कित अङ्क का "देग व तेग व फ़तह व जीत बेदिरंग-याफ़्त, अज़नानक, गुरुगोविन्दसिंह" सिक्का चलाया। यह सब कैसा हुआ! इन फकीरों के सामने उस समय के शाहंशाहों की कुछ न चली। औरंगजेब गुरु तेगबहादुर पर अपना जोर आज़मा चुका। परन्तु शहीद गुरु के शिष्य गुरुगोविन्द सिंह के सामने उस बलशाली औरंगजेब की तलवार भी रुक गयी। लाचार होकर उसे रुख़ बदलना पड़ा। परन्तु समय की लहर सब जगह एक सी थी। उत्तर भारतवर्ष में जो आंदोलन प्रकट हो रहा था वही दक्षिणी भारत में भी ज़ोर पकड़ रहा था। उत्तर भारतवर्ष में गुरुओं की शिक्षा-दीक्षा में दीक्षित जनता ऊंच-नीच के भेद भावों को छोड़कर समानता और स्वाधीनता के लिए प्राणों पर खेल रही थी। गुरुगोविन्दसिंह के खालसे 'वाहे गुरु जी का खालसा, का जयकारा करके ऊंच नीच के भावों को दूर कर रहे थे। औरंगज़ेब ने इस लहर को आंख मून्द कर टालना चाहा; और दक्षिण की ओर यात्रा की।

मध्य-भारत में भी बालवीर छत्रसाल ने मुग़ल बादशाही के अन्यायों तथा अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह का शंखनाद बजाया और घोषित किया कि

यहां भी स्वाधीनता की लहर चल रही है। दक्षिणी भारत में भी वही हवा बह रही थी। साधारण स्थिति के लोग अपने अधिकारों की रक्षा के लिये समर्थ रामदास के भगवे झंडे के नीचे इकट्ठे हो रहे थे। उस समय दिल्ली के जन्मसिद्ध सम्राट् के मुकाबले में वे लोग अपने हृदय-सम्राटों को सिंहासन पर बिठाने की कोशिश कर रहे थे। यह युद्ध मज़हबी युद्ध न था। यह जनता की अधिकार-रक्षा का युद्ध था। उत्तर भारत में लोगों ने जन्मसिद्ध सम्राट के मुकाबले में हृदय-सम्राट् को राजसिंहासन पर बैठाने के लिए क्या क्या किया, इसकी कहानी मनोरंजक और सुनने लायक है। इसे फिर कभी के लिये छोड़ कर अब हम दक्षिण देश की कथा का ही पारायण करते हैं। इन लोगों ने अपने हृदय-सम्राट् को राजगद्दी पर बिठाने के लिये, किस प्रकार अपने प्राणों को तुच्छ समझ कर इस महायज्ञ में अपने आप को स्वाहा किया? इस यज्ञ की पवित्र राख से किस शक्ति का विकास हुआ, उसका कहां तक विस्तार हुआ? उस शक्ति ने अन्तरीय तथा बाह्य राक्षसों का संहार कैसे किया? उस शक्ति की बढ़ती गति को किसने रोका और वह क्यों रुकी? इन्हीं बातों का वर्णन करना है। अब हम इस स्वतन्त्रता की कहानी का श्रीगणेश करते हैं। कथा के मुख्य पात्र ही इस कथा को सुनाने वाले हैं, हम तो साधनमात्र हैं। सचाई अपने आप बोलती है। सोने पर मुलम्मा चढ़ाने की ज़रूरत नहीं होती। अधिक क्या कहें, हमारे पुरखा, और हम सब की माता भारतमाता इस वीर कथा के सुनाने वालों के द्वारा अपने पुत्रों से किसी भेंट की आशा लगाये बैठी है। वह क्या है? इस कथा के सुनाने वाले सांसारिक ऐश्वर्य के भूखे नहीं हैं। उन्होंने बड़े२ साम्राज्यों को पैरों से ठुकरा कर नये साम्राज्य स्थापित किये थे। सदियों से उठती हुई समय की इस लहर का दक्षिण भारत में स्रोतस्थान कहां है? आइये! उसके दर्शन करें!

: २ :

स्वाधीनता के अभेद्य दुर्ग

स्वतन्त्र देशों में जन्म लेना सौभाग्य की बात है। परमात्मा मनुष्यमात्र को स्वतन्त्र दशा में ही सृजता है। प्रकृति और पुरुष जब इस संसार में प्रकट

होते हैं, तब वे सर्वथा स्वतन्त्र होते हैं। मानवीय क्रूर हाथ के छूते ही पराधीनता की बीमारी फैलने लगती है। सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक पराधीनताओं का प्रारम्भ तभी होता है जब मनुष्य परमात्मा के दिये हुए स्वतन्त्र प्रकृति के प्रसाद को अपने संकुचित प्रमादयुक्त व्यवहार से कलंकित करता है—तभी अनर्थ और उत्पात होते हैं। परन्तु सब बन्धनों से स्वतन्त्र परमात्मा ने मनुष्य की पैशाचिक वृत्तियों को रोकने के लिये, स्वतन्त्रता देवी के लिये कई एक ऐसे अभेद्य दुर्ग बना दिये हैं जहाँ पर पराधीनता के भावों का प्रवेश हो ही नहीं सकता, जहाँ का वातावरण प्रकृति देवी की स्वतन्त्रता भरी तानों से गुञ्जित रहता है, जहाँ पर्वतमालाओं की उच्च चोटियाँ स्वतन्त्र, अनन्त, विस्तृत आकाश को स्पर्श करती हुई दिन रात मानव-समाज को स्वाधीनता की विद्युत् से संचारित करती हैं। जहाँ की नदियाँ और बहते जल, उत्तुङ्ग-शिखर पर्वतों के बहते निर्झर-प्रपातों की स्वच्छन्दतामयी शीतलता से, तटवर्ती नगरों और ग्रामों में रहने वाले लोगों के हृदयों को अत्याचारियों की कोपाग्नि से पैदा होने वाले सन्ताप से बचाते हैं। जहां समुद्र अपनी अनन्त उच्छृङ्खल तरंगों द्वारा तट पर विहार करने वाली जनता को सच्ची स्वतन्त्रता का क्षण २ में पाठ पढ़ाता है। जहां समुद्र के वक्षःस्थल पर क्रीड़ा करते हुए बड़े २ जहाज़ अपने गगन-मण्डल में फहराती हुई पताकाओं से स्वतन्त्रता के गीत गाते हैं। ऐसे स्थानों पर, प्रकृति माता स्वतन्त्रता देवी की पूजा का समान सजाती है। ऐसे पवित्र स्थानों में प्रकृति देवी स्वतन्त्रता देवी की—(अपनी आराध्य देवी की) स्थापना कर चारों ओर दिव्य-अंगुलियों द्वारा रेखा खैंच देती हैं। इस रेखा को रावण जैसे उच्छृङ्खल मर्यादाहीन लोग लांघ कर मन्दिर में प्रवेश नहीं कर सकते। यदि बलात् करते हैं तो या तो उनका नाश होगा या उन्हें अपना स्वभाव बदलना पड़ेगा।

योरुप में स्वतन्त्रता के अभेद्य दुर्ग हालैंड, इटली और फ्रांस हैं। जब २ योरुप में सम्राटों ने अपनी अहम्मन्यता चलानी चाही तब २ इन अभेद्य दुर्गों के रहने वालों ने क्रांतियों द्वारा उन्हें चैन नहीं लेने दिया। हालैंड का विलियम-दि साइलेन्ट, इटली का मेज़िनी, फ्रांस की स्वतन्त्र जनता आज स्वतन्त्रता के उपासकों में अग्रगण्य है।

भारत में स्वतन्त्रता के अनेक अभेद्य दुर्ग हैं। उत्तरीय भारत के हिमालय की उच्च शिखाओं से घिरे हुए पांच नदियों से सिञ्चित पञ्चनद प्रदेश ने चिरकाल तक भारत की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये क्या नहीं किया? इस समय के विदेशी अंग्रेज़ी शासन का यदि किसी ने अन्त तक मुकाबला किया तो वह पंजाब ही था। मध्यकाल में किसी ने अत्याचारी विदेशियों का विरोध यदि किया था तो इसी पञ्जाब के सिंहों ने। आज भी यदि सुनहले भविष्य की आशा लगी है तो पंजाब की जनता की सिंह गर्जना से।

पञ्जाब-केसरी के जागृत रहते स्थलीय युद्धों में भारत की विजय निश्चित है। भारत की स्वतन्त्रता पर होने वाले स्थलीय आक्रमणों का प्रकृति की ओर से किया हुआ प्रतिकार यदि कोई है तो वह पञ्जाब ही है।

जलीय सेनाओं द्वारा समुद्र की ओर से भारतीय स्वतन्त्रता पर होने वाले आक्रमणों का मुकाबला करने के लिए भी प्रकृति देवी ने भारत में एक अभेद्य दुर्ग बनाया है। इस अभेद्य दुर्ग का नाम महाराष्ट्र है। इसे पहले दक्षिणापथ भी कहते थे। ताप्ती और तुगभद्रा के नीचे के प्रदेश को महाराष्ट्र कहते हैं। यहीं पर कोंकण के पहाड़ पश्चिमीय समुद्र से सिंचित होकर स्वतन्त्रता देवी की पूजा करते हैं। इसी पवित्र स्थान में गोदावरी, भीमा और कृष्णा नदियें पश्चिमीय पर्वत श्रेणियों से निकल कर पूर्वीय समुद्र में समाकर अपने जलकणों से स्वतन्त्रता को शीतल बयार बहा रही हैं। इसी जगह के देवगिर, पंढरपुर और कल्याण नाम के पवित्र तीर्थ-स्थान आज यादव, चालुक्य और शालिवाहन के स्वातन्त्र्य-प्रेम को प्रकट कर रहे हैं। पंढरपुर से सामाजिक और धार्मिक स्वतन्त्रता की गंगा बह निकली थी। इस गंगा में नामदेवादि ने स्नान कर लोगों को सदियों की दासता से स्वतन्त्र किया था। दिल्ली के अफ़गान—वंश की गति यदि कहीं रुकी थी तो इन्हीं कोंकण के मैदानों में। अफ़गान वंश को तहस-नहस करने वाले राज्य की यदि कहीं स्थापना हुई थी तो इसी देवगिरि के चरणों में। मुसलमानों के कट्टरपन को यदि किसी ने कुन्द किया तो यहां के रहने वालों ने। जिस समय बहमनी रियासत राज्यमद से मतवाली होकर

स्वतन्त्रतादेवी का चीरहरण करने को उतारु थी, उस समय उसके मुकाबले में यदि कोई उठा था तो इसी दक्षिण का विजयनगर। मुगलवंश के बढ़ते प्रभाव को रोकने वाली दक्षिण की पांच (आदिलशाही, निज़ामशाही, बरीदशाही, कुतुबशाही, इमामशाही) रियासतें ही थीं। अकबर जैसे सम्राट् की गति को रोकने वाली, दक्षिण की वीरांगना चांदबीबी ही थी।

दक्षिण भारत में औरंगज़ेब की तलवार को यदि किसी ने थामा तो महाराष्ट्र के वीरों ने। कहीं भी देखो, प्राचीन काल से लेकर—रावण के समुद्री आक्रमणों से लेकर दिल्ली के बादशाहों के आक्रमणों तक—स्वतन्त्रता देवी की यदि किसी ने रक्षा की तो इसी महाराष्ट्र अभेद्यदुर्ग के रहने वालों ने। अर्वाचीन काल में भी भारत को पुर्तगीज़ और सीदियों के आक्रमणों से यदि किसी ने बचाया तो इसी अभेद्यदुर्ग के रक्षकों ने। स्वतन्त्रता की भूमि में खेलकूद करने वाली, विजयमद से मत्त होने वाली, इंगलिश जाति के जहाज़ों को यदि किसी ने रोकने का साहस किया तो इन्हीं मराठों ने। यदि अंगरेज़ों ने बंगाल की खाड़ी की जगह, महाराष्ट्र की ओर से अपना राजनैतिक जाल फैलाने का यत्न किया होता तो भारत का इतिहास दूसरी ही तरह लिखा जाता। मराठों से वास्ता पड़ने पर उन्हें मालूम होता कि वे वीर हालैंड वालों से किसी तरह कम नहीं हैं। दक्षिण भारत में आखिर तक यदि किसी ने उन्हें रोका तो वह महाराष्ट्र के वीर नानाफड़नवीस ने। वेलज़ली की नीति का यदि किसी ने मुकाबला किया तो नीतिकुशल नानाफड़नवीस ने। १७८६ई० में चारों ओर से आक्रमण कर, यदि किसी ने अंगरेज़ों की स्थिति को संदिग्ध बना दिया था, तो इसी मराठा वीर ने। दिल्ली की बादशाहत को अंगरेजों के मुकाबले में हथियाने का यदि किसी ने साहस किया था तो भगवा झंडा फहराने वाले महादजी सेंधियों ने।

अधिक क्या कहें! १७ वीं सदी में भारत में यदि कहीं प्राचीन राजवंशों की जगह नए राजवंशों की स्थापना हुई थी तो इसी महाराष्ट्र में। शिवाजी जैसे साधारण जमींदार को उसके स्वतन्त्र्य-प्रेम के उपलक्ष में यदि राजमुकुट दिया गया था, तो इसी स्वाधीनता के मन्दिर में। अधिक क्या, यदि

भारत में स्वतन्त्रता स्थापित करनी है और फिर से हृदय-सम्राट् शिवाजी का राज्याभिषेक करना है, तो आइये भारत तिलक की तरह स्वतन्त्रता देवी के सामने आत्मबलिदान करें। आइये; राजतिलक करने की तैयारी के लिए समुद्रों से सिञ्चित महाराष्ट्र तीर्थ की यात्रा करें।

: ३ :

सन्तों का तेज

ब्रह्मतेजो बलं बलम्

पुराणों में कथा आती है कि एक बार राजर्षि विश्वामित्र अपने राजतेज के अभिमान में चूर हुए वसिष्ठ के आश्रम में पहुँचे। राजतेज और ब्रह्मतेज में कौन अधिक प्रभावशाली है, इस पर विचार होने लगा। अन्त में विश्वामित्र को मानना पड़ा कि ब्रह्मतेज के सामने राजतेज की कुछ नहीं चल सकती। उन्हें स्वीकार करना पड़ा था, ब्रह्मतेज ही असली बल है। इस कथा की सचाई हमें भिन्न २ देशों के इतिहास में दिखाई देती है। योरुप और इंगलैंड का इतिहास इस बात का साखी है कि धार्मिक सुधार और धार्मिक जागृति के बिना कोई देश व राष्ट्र स्वतन्त्र नहीं हो सकता। योरोप के प्रोटैसटैण्टों ने धार्मिक क्षेत्र में पापों की एकाधिकारिता को नष्ट करके ही राजनैतिक आज़ादी की आवाज़ को ऊँचा किया था। इंगलैण्ड में प्युरिटन्स ने कैल्विनिस्ट के साथ मिलकर रोमन कैथोलिक महन्तों से देश को मुक्त कराने के बाद ही राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त की थी। भारत में भी यही हुआ था। उत्तर भारत में नानकदेव ने कबीर आदि की शिक्षाओं के साथ २ सच्चे धर्म का उपदेश सुना कर उस समय के ब्राह्मणों के एकाधिकार को तोड़ा था। दक्षिण भारत में १५वीं सदी में पंढरपुर स्थान पर ज्ञानदेव, नामदेव आदि सन्तों ने इस जागृति का प्रारम्भ किया था। उस समय के दाक्षिणात्य ब्राह्मण धर्मकार्य में एकाधिकारी बने हुए थे। कोई भी अब्राह्मण कर्मकाण्ड या देवतार्चन करने का अधिकारी नहीं समझा जाता था। इस प्रकार की परिस्थति में आर्यधर्म सर्वथा

निस्तेज हो गया था। ब्राह्मणों के सिवाय अन्यों को विद्यादान देना पाप समझा जाता था। धार्मिक ग्रन्थ संस्कृत में लिखे गये थे। साधारण लोग अपने धर्म के स्वरूप को न समझते थे। जो लोग अपने धर्म को, अपने कर्तव्य को नहीं समझते, उन्हें जो चाहे पथभ्रष्ट कर सकता है। राख से आच्छन्न आग पर कोई भी आदमी चल सकता है। परन्तु जब वही आग अपने दाहरूप धर्म से प्रचण्ड तेजवाली हो तो कोई उसके पास फटकने तक का साहस नहीं करता। यही बात समाज की है अपने धर्म पर दृढ़ लोगों को कोई नहीं दबा सकता। भारत में कई सदियों से, कूपमण्डूकता और जन्माभिमान के कारण आर्य हिन्दू लोग अपना धर्म खो बैठे थे। इसीलिए ग़ज़नी के विदेशी शासक यहां पर अधिकार कर सके। इन सब आक्रमणों से देश के बचाने के लिए आवश्यक था कि असली धर्म का प्रचार किया जाय। इसका श्रीगणेश १५वीं सदी में हुआ। इस समय के ज्ञानदेव आदि सन्तों ने अपने अखण्ड तपस्या-बल द्वारा अदमनीय तेज धारण किया। हज़ारों ब्राह्मण दीक्षा लेने के लिये उनकी शरण में आने लगे। इन सन्तों ने धार्मिक शिक्षाओं को व्यवहारिक भाषा मराठी में प्रचारित किया। नामदेव, चोखामल, नरहरि सुनार आदि छोटी जाति के लोगों को इस सन्त मंडली ने अपनाकर धर्म के क्षेत्र में जन्म के बन्धन को दूर किया। पंढरपुर के मन्दिर में सन्तों ने इस की घोषणा की कि ऊंची जाति में जन्म लेने से क्या लाभ है? यदि हृदय में, परमात्मा के लिए दृढ़ विश्वास और भक्ति नहीं है, तो संस्कारों से और धार्मिक पारायणों से कोई फ़ायदा नहीं। इस संतमंडली की शिक्षाओं के कारण लोगों का नैतिक आचार सुधरने लगा। साधारण लोग इनसे न्तों के उपदेश सुनकर अपने जीवनों को सुधारने लगे। जाति में नया रक्त संचारित होने लगा। छोटी जाति के लोग भी सदाचारी और परमात्मा के भक्त बनकर राष्ट्र के अनेक विभागों में काम करने लगे। इनकी विकसित शक्तियों से राजा लोग लाभ उठाने लगे। उन राजदरबारों में संतों के शिष्य ऊंची जगहों पर नियुक्त हुए। इस प्रकार १५ वीं और १६ वीं सदी में इस संतमंडली ने तत्कालिक शासकों के साथ किसी प्रकार का मुकाबिला न करते हुए, अपनी शिक्षाओं का प्रचार किया था, इसलिए इनकी शिक्षाओं में राजनैतिक झलक दिखाई नहीं देती। सन्तों की शिक्षाओं से जाग्रत हिन्दुओं के लिए स्वराज्य स्थापना की कोशिश करना स्वभाविक था। राजनैतिक दशा

ऐसी थी कि उस समय के शासक इन जागृत मराठों की सहायता के बिना अपना राज्य कार्य नहीं चला सकते थे। कम्बरसेन, मुरारजगदेव, मदनपंत, एकनाथपन्त तथा लखूजी जाधवराव आदि मराठे उस समय के प्रभावशाली नेता थे। इनकी राजनैतिक योग्यता को उस समय के विदेशी शासक भी मानते थे। आवश्यकता थी कि कोई महाकल्पक उन्हें स्वतन्त्र स्वराज्य स्थापित करने के लिए प्रेरित करे जिसके नेतृत्व में वे विदेशी शासकों से सम्बन्ध तोड़कर अपने पैरों पर खड़े हों। समय अपनी आवश्यकता स्वयं पूरी करता है।

१७ वीं सदी के प्रभात काल में समर्थ गुरु रामदासने शिवाजी को इस स्वन्त्रता महायज्ञ के लिए दीक्षित किया। महाराष्ट्र के इतिहास में यह सन्त मण्डली विशेष स्थान रखती है।

रामदास की सन्त मण्डली ने धार्मिक सुधारों के साथ २ राजनैतिक सुधारों के लिये भी लोगों को तैयार किया। महाराष्ट्र की स्वतन्त्रता का मर्म समझने के लिये इस सन्त मण्डली की शिक्षाओं का विशेष अनुशीलन करना चाहिए। पाठक गण! इतिहास अपने आपको दोहराता है। १५ वीं और १७ वीं सदी में जो लहरें भारत के एक भाग में चलीं थीं, आज भी वही ज़ोर पकड़ रही हैं। १६ वीं सदीके उत्तरार्ध में स्वामी दयानन्द, राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द आदि सन्तों ने भारत में धर्मिक जागृति का सूत्रपात किया। व्यवहारिक भाषा में धार्मिक शिक्षाओं का प्रचार किया। लोगों में नया जीवन प्रकट होने लगा। योग्य भारतीयों ने विदेशियों पर अपनी राजनैतिक योग्यता की छाप बैठाई थी। भारतीयों की सहायता के बिना अंग्रेज़ों के लिए यहाँ शासन करना मुश्किल था। यह सचाई है जिसे प्रत्येक विचारशील अंग्रेज़ स्वीकृत करता है। माननीय दादा भाई नौरोजी, श्रीरमेशचन्द्रदत्त और गोखले की राजनैतिक योग्यता से कौन परिचित नहीं? इस सचाईको समझकर ही महात्मा गांधी जी, ने समर्थ रामदास की तरह लोगों को प्रेरित किया और सफल हुए। यह ऐतिहासिक सचाई है कि रामदास अपने कार्य में सफल हुए। इसलिये आइए १७ वीं सदी के स्वाधीनता के उपासक के जीवन-चरित का अनुशीलन करें और देखे कि सफलता प्राप्त

करने के लिए हमें क्या करना चाहिए। वह कौनसा रहस्य था जिसके कारण शिवाजी विपरीत अवस्थाओं में भी, विशाल स्वराज्य स्थापित कर सका।

: ४ :

सावधान

१० वीं सदी में उत्तर गोदावरी के किनारे बीड़ प्रान्त के हिवरा गांव में कृष्णपन्त नाम के देशस्थ ब्राह्मण रहते थे। उनके चार सन्तान थीं। ज्येष्ठ पुत्र दशरथ-पन्त ने हिवरा गांव से कुछ दूर जांवगांव में ठिकाना किया। इन्हीं के वंश की उन्नीसवीं पीढ़ी में सूर्याजीपन्त नाम के पुरुष हुए। इनकी स्त्री का नाम राणुबाई था। सूर्याजीपन्त बाल्यकाल से ही भगवद्भक्त थे। पटवारी का सरकारी काम करते थे, शेष समय सूर्य भगवान् की पूजा में व्यतीत करते थे। इनके दो सन्तान हुईं। प्रथम का जन्म १६०५ ईस्वी में हुआ। इसका नाम पहले गंगाधर था पीछे श्रेष्ठ नाम से प्रसिद्ध हुए। १६०८ ई० में द्वितीय पुत्र का जन्म हुआ। इनका नाम नारायण रक्खा गया। यही आगे चलकर रामदास के नाम से हुए। यही शिवाजी के गुरु महाराष्ट्र में स्वतन्त्रता के प्रवर्तक थे। नारायण बाल्य-काल में ही अपने गुणों की विशेषता के कारण प्रसिद्ध होने लगे। वृक्षों पर चढ़ना, मकानों पर हनुमान की तरह कूद-फांद मचाना, खेल कूद, गंगा में तैरना आदि बातों के शौकीन थे। उनकी स्वभाविक वीरतामयी चंचलता के कारण सब लोग उन्हें बहुत चाहते थे।

इस बाल-सुलभ चपलता के साथ भक्ति-भाव की गंभीरता भी इनके चेहरे पर झलकती थी। पैतृक संस्कारों के कारण यह बाल्यकाल से ही विरक्त थे, परन्तु पिता के देहान्त के बाद वैराग्य और भी प्रबल हो गया। उन्होंने अपने बड़े भाई से मन्त्र की दीक्षा लेनी चाही। बड़े भाई ने कहा तुम अभी छोटे हो। यह सुनकर समर्थ गांव के बाहर गोदावरी के किनारे हनुमान के मन्दिर में प्रार्थना करने लगे। वहां उनके हृदय में निम्नलिखित भावना जागृत हुई। कोई उनसे कह रहा है और उन्हें राम मन्त्र का उपदेश दे रहा है—'सारी पृथ्वी में यवन छाए हुए हैं; अनीति का राज्य है। दुष्ट लोग अधिकार के मद से मतवाले

होकर साधुओं को सता रहे हैं। धर्म का ह्रास हो रहा है, इसलिए आप वैराग्य वृत्ति से कृष्णा तीर पर रह कर उपासना और ज्ञान की वृद्धि कर के लोकोद्धार करें।" जब घर वालों को मालूम हुआ कि समर्थ के दिल में ऐसे भाव पैदा हुए हैं तब उनके आनन्द का पारावार नहीं रहा। माता और बन्धु यह सुनकर आनन्द से गद् गद् हो गये। कुछ समय बाद रामदास के विवाह की बात चली। माता रेणुबाई नारायण को विवाह के लिये कहने लगी। विवाह का नाम सुनते ही रामदास चिढ़ते और विरक्ति प्रकट करते थे। कई बार तो इस आफ़त से बचने के लिये जंगल में चले जाते थे। एक बार उनकी माता ने एकान्त में नारायण से कहा--पुत्र! तू मेरी बात मानता है कि नहीं? विवाह की बात छिड़ते ही तू पागलपन क्यों करता है, तुझे मेरी शपथ है "अन्तरपट" पकड़ने तक तू विवाह के लिये इनकार मत करना।

नारायण ने कहा—अच्छा, अन्तरपट पकड़ने तक मैं इनकार न करूँगा। भोली भाली माता यह सुनकर प्रसन्न हुई। विवाह का निश्चित समय आया। विवाह आरम्भ हुआ। सीमान्त-पूजन आदि लग्न विधि होती रही नारायण भी मुसराते रहे। अन्तरपट पकड़ने का समय आया। मंगलाष्टक पढ़ा जाने लगा, सबब्राह्मण एक स्वर से बोलेः—

'सावधान!"

यह शब्द सुनते ही नारायण सोचने लगे कि इस "सावधान" शब्द का क्या मतलब है? मैं तो पहले ही सावधान हूं, माता की आज्ञा थी कि मैं अन्तरपट पकड़ने तक इनकार न करूँ। यह आज्ञा भी मैंने शिरोधार्य की है। अब यहाँ खड़े रहने की क्या आवश्यकता? यह कह कर वे एक दम विवाह मंडप से भाग निकले। लोगों ने उनका पीछा किया। कुछ पता नहीं लगा। रामदास जंगल में रहे। टाकली में भयंकर तपस्या शुरू की। दो चार दिन जांबगांव में रहकर वे पैदल ही नासिक पञ्चवटी की ओर चले। १२ वर्ष का बालक अपनी लग्न में मस्त सब प्रकार के दुखों को झेलता हुआ १६२० ई० में नासिक पञ्चवटी से दो तीन मील पूर्व की ओर टाकली गॉव के बाहर विस्तृत

पुराने वृक्ष की छाया में कुटी बनाकर रहने लगा। वहीं रहकर तप करना शुरू किया। प्रातः गोदावरी स्नान करने जाते और दुपहर तक वहीं कटि तक पानी में खड़े होकर जप करते। इसके अनन्तर मधुकरी भिक्षा करते और भोजन के बाद सायंकाल फिर ध्यान में लीन रहते। दृढ़ मौन व्रत धारण किया। पानी में खड़े रहने से उनका शरीर भी गलने लगा। उन्होंने आध्यात्मिक आनन्द की धुन में शारीरिक सुख-दुख की चिन्ता नहीं की। इस प्रकार निरन्तर बारह वर्ष तक तपस्या करके मनोजय सिद्ध किया। आत्मसन्तोष होने के बाद पैरों में पादुका, हाथ में माला, कांख में कूबड़ी और तुम्बा, सिर पर टोपी, देह में कफनी पहन कर तीर्थयात्रा के लिये निकले। तपस्या द्वारा मनोजय तो सिद्ध हो गया था। सच्चाईयां प्रत्यक्ष भासमान होने लगीं। जीवन सच्चाइयों की सार्वभौमिकता को अनुभव करने के लिये अकेले निकल पड़े। हमारा इष्टदेव समर्थ है। वह हर जगह है, इस सचाई को ध्यान द्वारा देखकर भी अनुभव करने की आवश्यकता होती है। इसलिये हम देखते हैं कि प्रत्येक धर्माचार्य ने अपने जीवन का बड़ा भाग पैदल तीर्थयात्रा में लगाया है। तीर्थयात्रा से एक बड़ा लाभ यह है कि देश की और जनता की असली स्थिति मालूम हो जाती है। जनता की स्थिति मालूम किए बिना असली काम नहीं हो सकता। जो लोग देश के लिए काम करना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि वे रेलगाड़ियों की यात्रा में अपना समय गवांने की अपेक्षा, गाँवों की स्थिति जानने के लिये यथासम्भव कुछ पैदल यात्रा करें। जातियों की जीवनी-शक्ति के स्रोत गांव हैं, शहर नहीं। महाराष्ट्र के उद्धारक हमें कह रहे हैं कि यदि देश में जाग्रति पैदा करनी है, तो गांवों में काम करो। समर्थ ने सारे भारत की यात्रा की और मधुकरी-वृत्ति से निर्वाह किया। परन्तु समर्थ की भिक्षा में और आजकल के साधुओं की भिक्षा में बड़ा फर्क है। आजकल के भिखारी अपाहिज, निकम्मे केवल पेट भरने के लिये भिक्षा मांगते हैं, परन्तु समर्थ भिक्षा का उद्देश्य उन्हीं शब्दों में स्पष्ट है। वे कहते हैं:—

'कुग्रामें अथवा नगरें। पहावी घरांची घरें। भिक्षा मिसें लहान थोरें। परीसूनसोंडावीं।' ग्राम हो या नगर, सब जगह भिक्षा के निमित्त भ्रमण कर छोटों और बड़ों की स्थिति को जानने के लिये घर २ छान डाला। आज भारत के ५२ लाख साधुओं में से कितने हैं जो इस

राजनैतिक या अन्य उच्च उद्देश्य से भिक्षा मांगते हैं। एक ही ऐसा सच्चा भिखारी है जिसने चम्पारन के किसानों और दुःखितों की अवस्था जानने की कोशिश की। वही देश की बीमारी की असली दवा ढूंढ सका है।

इस प्रकार १२ साल पैदल यात्रा से लौट करके अपने ज्ञान को अनुभवद्वारा परिपक्व किया। इसकी झलक उनके दास बोध में पद २ पर दिखाई देती है। यात्रा से लौट कर पञ्चवटी पहुंचे। पञ्चवटी से चलकर गोदावरी की प्रदक्षिणा करते हुए अपनी जन्मभूमि में पहुँचे। यहाँ उन्हें अपने बन्धुओं का स्मरण हो आया। माता पुत्र-वियोग से व्याकुल थी। इसी शोक में निरन्तर अश्रुधारा के कारण दीखना भी बन्द हो गया था। समर्थ स्नानादि करने के उपरान्त भिक्षा के लिये निकले। अपने घर के सामने जाकर भिक्षा की पुकार की। वृद्ध माता ने अपनी पुत्रवधू को वैरागी को भिक्षा देने के लिये कहा। भिक्षुकने कहा, माता! आज का भिक्षुक भिक्षा लेकर ही जाने वाला नहीं है। पुत्र की आवाज सुनते ही माता का हृदय भर आया, गद्‌गद् होकर कहने लगी—"तू नारायण है"। एकदम आलिंगन किया। यही अलौकिक आलिंगन था। यह अलौकिक आलिंगन ही संसार का सार है। माता और पुत्र का स्नेह ही स्नेह का सार है। माता के उद्धार के लिये विरक्तव्रतधारी ने मोह और त्याग का अपूर्व सम्मेलन कराया। कहा करते हैं जो मोही है वह त्यागी नहीं बन सकता, जो त्यागी है वह मोही नहीं बन सकता। परन्तु रामदास ने बतला दिया कि किस प्रकार त्याग और मोह का भी मेल हो सकता है। आज भारतमाता को भी ऐसे ही समर्थों की आवश्कता है जो त्यागी होते हुए भी इतने त्यागी न बनें कि माता को भुला दें। माता तथा बड़े भाई की आज्ञा प्राप्त कर समर्थ प्रचार कार्य के लिये स्थान २ पर भ्रमण कर लोगों को धर्म और कर्तव्य का उपदेश देने के लिए प्रस्थित हुए। उस समय के अत्याचारी राजा लोग प्रजाओं पर अनेक तरह के अत्याचार कर रहे थे। रामदास ने स्थान २ पर अपनी शिष्य मंडलियों द्वारा प्रजाओं को इन अत्याचारों से बचाने का प्रबन्ध किया। शिवाजी को अपना साधन बनाया। अत्याचारियों का दमन किया। इसी बीच में १६५५ ई० में माता का देहान्त हुआ। १६७७ में ज्येष्ठ बन्धु इस संसार को छोड़ गए। आखिर १६८० ई० को प्रिय शिष्य शिवाजी अपना

काम पूरा कर परलोक सिधारे। इसके बाद १६८१ ई० को रामनवमी के दिन समर्थ ने भी देह का संवरण किया। पाठकगण! समर्थ आज के भारतीयों को सन्देश दे रहे हैं। सावधान होकर काम करो। हममें से जिस किसी ने जनोद्धार के लिए विरक्त का व्रत धारण किया है उसे चाहिये कि वह समर्थ की तरह संसार में प्रवेश करते समय सावधान रहे। सन्देश यही है कि "जिसने स्वयं स्वतन्त्र होना है तथा अन्यों को स्वतन्त्र कराना है, उसे विवाह-बन्धन में फंसते समय सावधान होना चाहिए"। जिसने स्वतन्त्रता की अर्चना का व्रत लिया है और इस व्रत को निभाने के लिये त्यागव्रत धारण किया है, 'उसे अपना प्रेम एक ही ओर लगाना चाहिए।' माता के पराधीन होते, पुत्रों का कोई अधिकार नहीं कि वे विवाह-समारोह करें। इस समय तो माता से प्रेम करने वाले त्यागी पुत्रों और त्यागिनी पुत्रियों की ज़रूरत है।

आज भी माता की यही मांग है। स्वतन्त्रता के उपासकों की यह भिक्षा व्यर्थ न जायगी। जब हम चरितनायक की इस मांग को पूरा करने का सङ्कल्प करेंगे तभी उस गीता के मन्त्र का—जिसका उपदेश समर्थ ने शिवाजी को किया था, जिसके प्रभाव से शिवाजी मातृ भूमि की दुःखभरी उसासों को दूर कर सका था—मर्म समझ सकेंगे और फिर से भारत में स्वतन्त्रता देवी के मन्दिर की आधार शिला रख सकेंगे। शुभ मुहूर्त में, शुभ कला में इस संकल्प को कार्यरूप में परिणत कीजिए।

: ५ :

भगवा झण्डा

शिवाजी ने तुकाराम से दीक्षा लेनी चाही। तुकाराम ने कहा रामदास से दीक्षा लो। शिवाजी ने सद्गुरु की ढूंढ में जंगल छान डाले। लाचार होकर दर्शन करने की अभिलाषा से रामदास को पत्र लिख भेजा और राजधानी में निमन्त्रित किया। रामदास शिवाजी की योग्यता को समझते थे। शिवाजी का मन सांसारिक कलहों से उद्विग्न हो उठा था, वह वैराग्य लेना चाहते थे। रामदास ने ऐसे समय में शिवाजी को जो उपदेश दिया, वह स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाना चाहिये। वह यह है:—

"इस समय भूमण्डल में ऐसा कोई नहीं जो धर्म की रक्षा करे। महाराष्ट्र धर्म तुम्हारे ही कारण बचा है। जितने मराठे हैं उन्हें मिलाओ। जो थोड़ी-बहुत गौ ब्राह्मणों की रक्षा हो रही है वह तुम्हारी ही महिमा है। अनेक जन तुम्हारे सहारे रहते हैं। सब की रक्षा करनी है। सचमुच राज्य का काम बड़े जोखिम का है। राजा मन्त्री को मिलकर काम करना चाहिए। राजनीति और धर्मनीति एक ही बात है। सब लोगों को राज़ी रखना, भले बुरे की खूब जांच करना। नीति का त्याग न करना। लालच में कभी न फंसना, सदा सावधान, रहना। ऐसा करोगे तो सफल होगे।"

यह पत्र पढ़ कर शिवाजी की गुरु-दर्शन की इच्छा और भी प्रबल हो गई। आखिर चाकल के जंगल में खड़ोक बाग में रामदास के दर्शन किए। १५७१ शाके गुरुवार के दिन शिवाजी को रामदास ने उपदेश दिया और मन्त्र की दीक्षा दी। दासबोध के तेरहवें दशक अनुबन्ध में यही उपदेश है। इस मन्त्र-दीक्षा के बाद रामदास ने अपने शिष्य को अद्वैतरस का साक्षात्कार करने के लिए घरबार छोड़ने की सलाह नहीं दी, अपितु उन्हों ने कहाः—

"तुम्हारा मुख्य धर्म राजसम्पादन करके धर्म स्थापना करना है। देव और ब्राह्मणों की सेवा करना, प्रजा की पीड़ा को दूर कर, पालन तथा रक्षण करना है"।

गुरु की आज्ञा पाकर, अशीर्वाद से उत्साहित हो कर शिवाजी ने विदेशी और स्वदेशी सब प्रकार के अत्याचारियों का दमन किया। बीजापुर दरबार से लेकर दिल्ली की बादशाही तक सब ने शिवाजी का लोहा माना। युद्ध के मैदानों में, रणचण्डी के प्रचण्ड कोपानल में भवानी का सहारा लेकर, चिरतृषित स्वतन्त्रता देवी को रिझाने में शिवाजी ने कोई कमी नहीं की। शिवाजी ने सब काम जिस वीरता और चतुरता से किए इसकी सराहना उसके शत्रु भी करते हुए नहीं थकते। औरंगजेब को भी यह मानना पड़ा था किः—

"शिवाजी बड़ा भारी लड़ाका था। मैंने भारत के प्राचीन राज्यों को नष्ट करने के लिए बड़ा यत्न किया। मेरे मुकाबले में सिवाय शिवाजी के और कोई राज्य स्थापना के कार्य में सफल नहीं हो सका। १९ वर्षों तक मेरी सेना उससे लड़ती ही रही परन्तु वह रुका नहीं। उसका राज्य निरन्तर बढ़ता ही गया"।

जिसके पिता ने बड़ी २ बादशाहियों को पलटने में जीवन का बड़ा

भाग लगाया—जिसने राज्यकर्ता का पद पाया उसके पुत्र के लिए नई राज्य-स्थापना की बात कठिन न थी। शिवाजी ने जिस राज्य की स्थापना की उसकी विशेषता इस बात में नहीं कि उसने बड़ा भारी कोष एकत्रित किया या अभिमानी राजाओंको नतमस्तक किया। शिवाजी के स्वराज्य की विशेषता उसके शानदार महलों के उच्च गगनस्पर्शी मीनारों पर फहराने वाले भगवे झण्डे की थी। इस भगवे झण्डे की छाया में महाराष्ट्र के लोग एकत्रित हुए थे। इसकी छत्र-छाया में पुराने घरानों ने शिवाजी की आज्ञा में काम करना स्वीकृत किया था। भगवे झंडे को हाथ में लेकर रामदास और उसकी शिष्य मंडली ने भारत में एक ऐसा जाल बिछाया था जिस से शत्रु का बच निकलना मुश्किल था।

जब तक प्रजा में जागृति नहीं होगी, तब तक नई राज्य-स्थापना नहीं हो सकती। इसलिए रामदास ने निश्चय किया था कि अपनी शिष्य मण्डली द्वारा देश में 'नीति, धर्म-नीति और राजनीति' का प्रचार किया जाय। रामदास समझते थे कि नीति-शिक्षा तथा धर्म-प्रचार तब तक अपना अच्छा फल नहीं ला सकते जब तक दोनों की रक्षा करने वाली शासक संस्था अपने हाथ में न हो। इस सचाई को समझ कर ही समर्थ रामदास ने शिवाजी द्वारा राजशक्ति सङ्गठित करने का यत्न किया। भारतवर्ष में अनेक धार्मिक समाजें "राजसंस्था अच्छी है या बुरी" "पाप को बढ़ाने वाली है या घटाने वाली"—आदि बातों की उपेक्षा करके केवल मात्र शिक्षणालयों और धर्म मन्दिर की सहायता से संसार का उद्धार करना चाहते हैं। इन सभाओं के संचालकों को याद रखना चाहिए कि अरक्षित शिक्षणालय और धर्म मन्दिर तात्कालिक अत्याचारी शासकों के अन्याय के साधन बन जाते हैं। शासक लोग अनेक उपायों से कईयों को अपने यहां नौकरी देकर, कईयों पर कृपा करके अपनी अस्वभाविक स्थिति को स्थिर रखने के लिए भरसक कोशिश करते हैं। बड़े २ महन्त आज विदेशी शक्ति के सहायक बने हुए हैं। पुरानी राजशक्तियां नई शक्तियों को उठने नहीं देतीं। रामदास इस सचाई को समझते थे। उन्होंने अनेक स्थानों पर नए मठ मन्दिर स्थापित किए और वहां योग्य व्यक्तियों को नियुक्त किया। इनकी रक्षा के लिये शिवाजी की तलवार का सहारा लिया। १९ वीं सदी में स्वामी दयानन्द ने भी जनता में जागृति पैदा करने के लिये 'जनोद्धार' करने के

लिये स्थान २ पर 'आर्य समाज' नाम के संघ, शिक्षा और धर्म प्रचार के लिये स्थापित किये। इनकी सहायता से अथवा इनकी, रक्षा के लिये—तात्कालिक उदयपुर के महाराणा वीर तलवार को भवानी का रूप देना चाहा। उन्हें आशा थी कि यदि मैं अपने काम में सफल न हो सका तो कोई बात नहीं, ये आर्यसमाजें देश भर में फिर से नैतिक, धार्मिक और राजनैतिक जागृति पैदा कर, सुधार करेंगी। परन्तु क्रांतिकारी गुरु को शिवाजी और उनकी मंडली जैसे स्वतन्त्र प्रकृति वाले आत्म-बलिदान करने वाले, व्यक्ति पर्याप्त संख्या में न मिल सके। धर्म प्रचार शिक्षाप्रचार हुआ परन्तु आर्यसमाज विदेशी शासन के अङ्ग सङ्ग बने हुए व्यक्तियों (सरकारी नौकरों और वकीलों) के हाथ में आ जाने से तेजस्वी न बन सका। रामदास का आदेश है कि यदि लोक में जागृति पैदा करना है तो जागृति सर्वतोमुखी होनी चाहिये। इस समय रामदास ने भारत में अपने शिष्यों का जो जाल फैलाया था वह कितना था इस के विषय में समर्थ स्वयं 'दासबोध' में लिखते हैं:—"कितने लोग हैं सो मालूम नहीं, कितना समुदाय है—इस समुदाय की गणना नहीं हो सकती"। रामदास ने समय२ पर अपनी इस शिष्यमन्डली द्वारा शिवाजी को, जो सहायता पहुँचाई वह मध्यकालीन भारत के इतिहास में अपूर्व स्थान रखती है। इस शिष्यमन्डली ने ही मारुति मन्दिर के पुजारियों द्वारा शिवाजी को सूचना पहुँचाई थी कि अफ़जलखाँ आ रहा है रामदास के शिष्य कई रूपों में भ्रमण करते थे और शत्रु पक्ष के रहस्य शिवाजी तक पहुँचते थे। आगरा के बादशाही कारागार से जब शिवजी निकल भागा था तब इन्हीं साधु फकीरों की सहायता से पूना तक पहुँच सका था। रामदास शिष्य मण्डली, शिवाजी की दूतमंडली थी।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि शिवाजी ने जिस राज्य स्थापना के लिये यत्न किया उनका असली उद्देश्य क्या था? क्या शिवाजी स्वयं छत्रधारी राजा बनना चाहता था? यदि ऐसा ही था तो शिवाजी में तथा अन्य तात्कालिक बादशाहों में फ़र्क ही क्या था? इस बात को स्पष्ट करने के लिए हम शिवाजी के जीवन की एक घटना का उल्लेख करते हैं।

एक बार समर्थ भिक्षा मांगते हुए सितारे में शिवाजी के महल पर पहुँचे। शिवाजी ने भिक्षु की पुकार सुनकर एक दानपात्र पर सारा राज्य उनकी भेंट

किया। रामदास ने कागज़ देखकर कहा, हम वैरागियों को राज्य की क्या ज़रूरत? तूही प्रधान बनकर राज सम्भाल। शिवाजी ने राम की पादुका को स्थापित कर प्रधान बनकर राज करना शुरू किया। उसी समय से शिवाजी ने भगवे रङ्ग के झंडे को अपनी राजपताका बनाया। यह झंडा इस बात को बता रहा है कि शिवाजी ने जो राज्य स्थापित किया था वह भोग या आनन्द के लिये नहीं, अपितु त्याग के लिए, साधु सन्तों की रक्षा तथा सेवा के लिये था। रामदास कहा करते थे कि अपने लिए कुछ न करो। यही 'राम' असली महाराष्ट्र धर्म है। यदि सच्चे राम की पूजा करनी है तो जनता के दुःखों को शांत करो, उन्हें अत्याचारों से बचाओ। जनता में रमने वाला रामही असली राष्ट्र है। रामदास का शिवाजी को उपदेश था कि "राज्य तुम्हारे लिये नहीं है, जनता के लिये है। तुम निष्काम काम करो।" यही भगवे झण्डे का सन्देश था।

: ७ :

रामदास के शिवाजी को उपदेश

दासबोध से

पत्र, पुष्प, फल, बीज, पाषाण और कौड़ियों की मालाएँ सूत से गुंथी जाती हैं ॥१॥ स्फटिक, 'जहर-मुहरा', काष्ट, चन्दन, धातु, रत्न आदि की मालाएं जालियां, चन्दोवे आदि सूत से ही गुंथे जाते हैं ॥२॥ सूत यदि न हो तो काम नहीं चल सकता। (इसी प्रकार आत्मा से सम्पूर्ण जगत् गुँथा हुआ है) परंतु यहां, आत्मा के लिये सूत का दृष्टान्त पूरा पूरा नहीं लगता ॥३॥ क्योंकि सूत तो गुरिया के बीच में ही रहता है और आत्मा सर्वाङ्ग में समानरूप से व्याप्त रहता है ॥४॥ इसके सिवाय आत्मा स्वाभाविक चपल है, और सूत जड़ एवं निश्चल है। अतएव यह उपमा नहीं लगती ॥५॥ अस्तु अनेक वेलियों में जल का भाग भरा रहता है, ईखों में भी रस भरा होता है, परन्तु रस और उसका बकला कुछ एक नहीं है ॥६॥ इसी प्रकार देही (आत्मा) और देह (अनात्मा) दोनों भिन्न भिन्न हैं और इन दोनों से भिन्न निरञ्जन और निरूपम परमात्मा है ॥७॥ राजा से लेकर रंक तक सब मनुष्य ही हैं, पर सब को एक ही समान

कैसे कह सकते हैं ? ॥८॥ देव, दानव, मानवनीचयोनि, हीनजीव, पापी, सुकृति आदि बहुत से हैं ॥९॥ एक ही अंश से जगत् चलता है, पर सामर्थ्य सब की अलग २ है ! ॥१०॥ एक साथ ही मुक्ति मिलती है, एक के साथ से रौरव नरक मिलता है। शक्कर और मिट्टी दोनों पृथ्वी के अंश है, पर मिट्टी नहीं खाई जा सकती, विष क्या जल नहीं ? पर वह बुरी चीज है ॥११॥ 'पुण्यात्मा' और 'पापात्मा' दोनों में "आत्मा" लगी है इसी तरह कोई साधु है, कोई भोंदू है, पर सबकी मर्यादा अलग अलग है; वह छूट नहीं सकती है ॥१२॥ यह बात सच है कि सबका अंतरात्मा एक ही है, पर डोम को साथ में नहीं लिया जा सकता, पंडित और लौंडे' एक कैसे हो सकते हैं ? ॥१३॥ मनुष्य और गधे, राजहंस और मुर्गे, राजा लोग और बन्दर एक कैसेहो सकते हैं ? ॥१४॥ भागीरथी का जल भी आप है मोरी और गड्ढे का पानी भी आप है, परन्तु मैला पानी थोड़ा भी नहीं पिया जा सकता ॥१५॥ इस कारण पहले तो आचार शुद्ध, फिर विचार-शुद्ध वीतरागी और सुबुद्ध होना चाहिए ॥१६॥ शूरों को छोड़ कर यदि डरपोकों की भरती की जाय तो युद्ध के अवसर पर अवश्य हार होगी। श्रीमान् को छोड़ कर दरिद्री की सेवा करने से क्या हाल होगा ? ॥१७॥ यह सच है, कि एक ही पानी से सब हुआ है; पर देख कर सेवन करना चाहिए, एक तरफ से सभी सेवन करना मूर्खता है ॥१८॥ पानी से ही अन्न हुआ है और अन्न का वमन होता है। पर वमन का भोजन नहीं किया जा सकता ॥१९॥ इसी प्रकार निंदनीय बात को छोड़ देना चाहिए और प्रशंसनीय बात को हृदय में रखना चाहिए, तथा सत्कीर्ति से भूमंडल को भर देना चाहिए ॥२०॥ उत्तम को उत्तम अच्छा लगता है, निकृष्ट को वह अच्छा नहीं लगता इसलिए ईश्वर ने उसको अभागी बना रखा है ॥२१॥ सारा अभागीपन छोड़ देना चाहिए: उत्तम लक्षण ग्रहण करना चाहिए हरि कथा पुराण-श्रवण, नीति, न्याय आदि का स्वीकार करना चाहिए ॥२२॥ विवेक पूर्वक चलना चाहिए, सब लोगों को राजी रखना चाहिए और धीरे धीरे सबको पुण्यात्मा बनाते रहना चाहिए ॥२३॥ जैसे बालक के साथ उसकी ही चाल से चलना पड़ता है और जैसा उसको रुचता है वैसा ही बोलना पड़ता है वैसे ही धीरे धीरे लोगोंको सिखला कर चतुर बनाना चाहिए ॥२४॥ सच तो यह है, कि सब का मान रखना

चाहिए। यही सब चतुरता के लक्षण हैं। जो चतुर है वह चतुरों के अन्य अंग जानता है, अन्य लोग पागल हैं ॥२५॥ परन्तु पागल को 'पागल' भी न कहना चाहिए मर्म की बात भी न बोलनी चाहिए, तभी निस्पृह पुरुष दिग्विजय कर सकता है ॥२६॥ अनेक स्थलों में, अनेक अवसरों को जान कर यथोचित बर्ताव करना चाहिए और प्राणिमात्र का अंतरंग (अभिन्नहृदय-मित्र) हो जाना चाहिए ॥२७॥ एक दूसरे को राजी न रखने से सभी को तकलीफ़ होती है। एक दूसरे का मन तोड़ने से कुशल नहीं होती ॥२८॥ अतएव जो सब का मन प्रसन्न रखता है वही सच्चा महन्त है और उसी की ओर सब लोग आकर्षित होते हैं। ॥२६॥ १३ वां शतक, दसवां समास।

जो ज्ञानी और उदास है तथा जिसे समुदाय एकत्र करने का उत्साह है, उसे अखण्ड रीति से एकांत सेवन करना चाहिए। क्योंकि एकांत में तजवीज़ें मालूम होती हैं, अखण्ड चेष्टाएं सूझती हैं और प्राणिमात्र की स्थिति तथा गति मालूम हो जाती है ॥२॥ यदि चेष्टा ही न करेगा तो कुछ भी न मालूम होगा। हां, जो दिवालिया होता है वह जमा-खर्च अवश्य नहीं देखता ॥३॥ कोई धन दौलत कमाते हैं और कोई अपने पास का माल भी गवाँ बैठते हैं। ये सब उद्योग की बातें हैं ॥४॥ मन की बात पहले ही समझ लेने से अनिष्ट होने की सम्भावना नहीं रहती ॥५॥ एक स्थान में बहुत रहने से लोग ढिठाई करने लगते हैं, अति परिचय से अवज्ञा होती है अतएव एक जगह रहकर विश्रान्ति न लेते रहना चाहिये ॥६॥ आलस से सारा 'कारबार' डूब जाता है, और समुदाय का उद्देश्य पूरा नहीं होता ॥७॥ अतएव उपासना के अनेक कार्य, नित्यनियम के साथ, लोगों के पीछे लगा देने चाहिए ॥८॥ ऐसा करने से उन्हें अन्य कृत्रिम कामों के करने का मौका ही न मिलेगा ॥८॥ जान बूझकर चोर को भण्डारी बनाना चाहिए, परन्तु दोष देखते ही उसे सम्भालना चाहिये और धीरे धीरे उस की मूर्खता दूर करनी चाहिये ॥६॥ ये सारी अनुभव की बातें हैं। किसी प्राणी को दुःख न होने पावे, परन्तु राजनीति से सारे लोगों को फाँस लेना चाहिये ॥१०॥ नष्ट पुरुष केलिए नष्ट की योजना कर देनी चाहिए और वाचाल से वाचाल को भिड़ा देना चाहिये; पर अपने ऊपर विकल्प का जाल न आने देना चाहिये ॥११॥ कांटे से कांटा निकालना चाहिए—पर मालूम न होने देना चाहिये। कलहकर्ता की पदवी न आने देनी

चाहिये ॥१२॥ गुप्त रीति से, किसी को मालूम न होते हुए जो काम किया जाता है वह तात्काल सिद्धि को प्राप्त होता है, बचपन में पड़ने से वही काम विशेष खूबी के साथ नहीं होता ॥१३॥ (किसी का यश) सुन कर (उसके विषय में) प्रीति होनी चाहिये; उसे देख कर वह प्रीति और भी दृढ़ होनी चाहिये, तथा अति परिचय होने पर उसकी सेवा करनी चाहिये ॥१४॥ कोई भी काम हो, वह करने मे होता है, न करने से पिछल जाता है। इसलिये ढीलेपन से न रहना चाहिए ॥१५॥ जो दूसरे पर विश्वास करता है, उसका कारोबार डूब जाता है, अतएव वास्तव में योग्य पुरुष वही है, जो स्वयं कष्ट उठाते हुए, आत्मविश्वास रख अपना काम सम्भालता है ॥१६॥ सब की सब बातें न मालूम होने देना चाहिए क्योंकि ऐसा होने से उन बातों का महत्त्व नहीं रहता ॥१७॥ मुख्य सूत्र हाथ में लेना चाहिए, जो कुछ करना हो वह सब जनसमुदाय के द्वारा करवाना चाहिए। अनेक राजनैतिक गूढ़ प्रश्नों को हल करना चाहिए ॥१८॥ वाचाल, पहलवान कलहकर्ताओं को भी अपने हाथ में रखना चाहिए। परन्तु ऐसा न हो जाय, कि सारे दुर्जन ही दुर्जन 'राजकारण' में भर जाएं ॥१९॥ विरोधियों को भेद से पकड़ में लाना चाहिये और उनको रगड़ कर पीस डालना चाहिये; पर फिर पीछे से उन्हें संभाल लेना चाहिए, बिल्कुल नष्ट न कर देना चाहिए ॥२०॥ दुष्ट दुर्जनों से डर जाने पर 'राजकारण' (राजनीति) का महत्त्व नहीं रहता; किंतु बुरी भली सब बातें खुल जाती हैं ॥२१॥ मनुष्य-समुदाय तो बहुत बड़ा चाहिए ही; परन्तु आक्रमणशक्ति भी दृढ़ चाहिए, परन्तु ध्यान में रहे कि मठ बनाकर समुदाय एकत्र करके फिर अड़बाजी न करनी चाहिए ॥२२॥ दुर्जन प्राणी अपने मन ही मन में जान लेना चाहिए, पर उनके विषय में कुछ प्रकट न करना चाहिये इसके विरुद्ध, उन्हें महत्व देकर सज्जन की तरह उनकी विनती करनी चाहिए और मौका देखकर अपना बदला लेना चाहिए ॥२३॥ लोगों में दुर्जन के प्रगट हो जाने पर बहुत सी खटखटें मचती हैं। इसलिये उस मार्ग ही को नष्ट कर देना चाहिये ॥२४॥ ऐसा परमार्थ का पक्षपाती धर्मात्मा-राजा चाहिए, कि शत्रुसेना को देखते ही रणशूरों की भुजाएं फड़कने लगें ॥२५॥ उसको देखते ही दुर्जनों की छाती दहल उठती है। वह अनुभव के हथकंडे चलाता है और उसके द्वारा उपद्रव तथा पाखंड सहज ही नाश हो जाते हैं ॥२६॥ ये सब धूर्तपन-चाणक्षता के काम हैं। राजनैतिक विषयों में दृढ़ता चाहिये। ढीलेपन के भ्रम में न पड़ना

चाहिये ॥२७॥ (जो चतुर राजनैतिक होता है वह) कहीं भी दीख पड़ता है, पर ठौर ठौर में उसी की बातें होती रहती हैं और अपने वाग्विलास से वह सारी सृष्टि को मोहित कर लेता है ॥२८॥ भोंदू के साथ भोंदू को लगा देना चाहिए, हूस के साथ हूस को भिड़ाना चाहिये और मूढ़ के साथ मूढ़ खड़ा करना चाहिये ॥२६॥ लट्ठ का सामना लट्ठ से ही करा देना चाहिये, उद्धत के लिए उद्धत चाहिये और नटखट के सामने नटखट की ही आवश्यकता है ॥३०॥ जैसे को तैसा जब मिलता है तभी किसी संस्था की तेज़ी देख पड़ती है। इतना सब हो रहा है, तथापि यह पता न लगना चाहिये कि धनी-इन सब बातों का कर्ता कहां है ! ॥३१॥ [११ वां दशक, नवां समास

: ६ :

शिवनेरी किले में शिवावतार

दक्षिण के क्षत्रियों में भोंसले क्षत्रियों का पराक्रम विशेष आकर्षण रखता है। राजपूताना के सूर्यवंशी क्षत्रियों में से कुछ एक वीर दक्षिण में अपना राज्यविस्तार करने के लिये आए थे। दौलताबाद के ही नकट धीरे २ इन लोगों ने स्थानीय शासन में अधिकार प्राप्त करना शुरू किया। इसी वंश में सम्भाजी भोंसले ने अपने पराक्रम से विशेष गौरव प्राप्त किया था। इसी वंश के मालोजी और विठोजी ने निज़ामशाही के लखूजी जादव के पास नौकरी की। यह सरदार वीरता और कुलीनता के कारण तात्कालिक मराठा वंश में विशेष प्रतिष्ठा रखता था। मुसलमान बादशाह भी इस वंश को अपनाने में गौरव समझते थे। मालोजी और विठोजी ने निष्कलंक स्वामिभक्ति के कारण निज़ाम-शाही के बादशाह के हृदय में घर कर लिया। बादशाह इन सरदारों को विशेष रूप से चाहने लगा। राजकृपा मिलने के साथ २ इनके दिल में अपनी स्थिति को अधिकाधिक उन्नत करने की भावना पैदा होने लगी। किम्वदन्ती है कि एक बार जंगल में अकेले जाते हुए मालोजी को देवी ने दर्शन देकर गुप्तकोष दिखाया और कहा कि तुम्हारे वंश में एक अवतारी पुरुष जन्म लेगा। राजकृपा

तो प्राप्त थी ही-अब दैवकृपा भी हो गई। साधारण जनता में इन कथाओं ने जादू का सा असर किया। अप्रसिद्ध भोंसला वंश को साधारण लोग श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखने लगे। रंग पञ्चमी के उत्सव ने इस गुप्त भाव को नया रंग दे दिया। अपने परिश्रम से उन्नत स्थिति को प्राप्त हुए मालोजी ने प्रतिष्ठित वंश के मराठे सरदारों के साथ सम्बन्ध करने का संकल्प किया। पञ्चमी का उत्सव था। छोटे २ सरदार बड़े सरदार के यहाँ उत्सव मनाने के लिये एकत्रित हो रहे थे। मालोजी भी अपने पुत्र शाहजी (जन्म सन् १५९४ई०) के साथ जाधवराव के घर, रंगपञ्चमी का त्योहार मनाने के लिए पहुँचे। शाहजी देखने में प्रतिभाशाली और होनहार था। आमन्त्रित सरदारों की दृष्टि शाहजी पर थी। इधर जाधवराव जीजाबाई नाम की कन्या के साथ उत्सव में पधारे थे। रंग गुलाल, हंसी मज़ाक होने लगा। वृद्ध वृद्धों के साथ अपनी पुरानी बातें सुनाकर उत्सुक नवयुवकों को चकित कर रहे थे। महत्वकाक्षी, स्वच्छन्द नवयुवक अपने हमजोलियों के साथ खेल कूद में लग गए। बालक बालकों से हिल मिल गए। बूढ़े और जवान, कभी २ ऊंच नीच के किरकिरे भावों से आमोद-प्रमोद की स्वाभाविक सरसता को किरकिरा करने में संकोच न करते थे। बड़े सरदार छोटे सरदारों से हंसी मखौल करते हुए बीच २ में अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिये कभी कभी मुख मुद्रा पर गम्भीरता की त्यौरी चढ़ा लेते थे। दूसरी ओर छोटे सरदार बीच २ में मौन व्रत धारण कर बड़े सरदारों को कई बार निराश कर देते थे, उनके मखौल का जवाब न देते थे। इसी प्रकार नवयुवक भी खेल कूद में एक दूसरे से रूठ बैठते थे। परन्तु बच्चों की हंसी खुशी में इस कृत्रिम रुठाई की झलक न थी। खेल कूद में मस्त बालक अमीरी गरीबी ऊंच नीच के भावों की परवाह नहीं करते। बालक बालक को देख कर हंसी खुशी की उमंग में अपने आप को तथा वंश आदि के कृत्रिम बन्धनों को भूल जाते हैं। परमात्मा की इस सृष्टि में बच्चों का ही संसार है जहां विषमता, कुटिलता और पाप का प्रवेश नहीं है। ये बालक निर्दोषता और पवित्रता की मूर्ति हैं! पापी से पापी जन भी इनकी पवित्र मूर्ति को देख कर पापमयी वृत्तियों को छोड़ देता है। पलभर के लिये वह भी अपने आप को स्वर्ग में पहुंचा समझता है। शाहजी और जीजाबाई परस्पर बालसुलभ स्वभाव से प्रेरित होकर रङ्ग

गुलाल उड़ाकर होली खेलने लगे। राम और कृष्ण की बाल लीलाओं को देख कर योगी और सिद्ध कवियों तक के चित्त साम्यावस्था को छोड़ कर क्षणिक आनन्द तरङ्ग में चञ्चलित हो उठे—विरक्त निर्मोही कवियों ने भी इस बाल-लीला का वर्णन करते हुए प्रेम-रस का आस्वादन करने में संकोच नहीं किया, तो फिर सांसारिक आदमियों का तो कहना ही क्या? जीजाबाई और शाहजी को खेलते देखकर कुलाभिमानी जाधवराव भी इस स्वाभाविक वात्सल्य रसप्रवाह में बिना बहे न रह सके और सहसा बोल उठे—

"यह 'युगल जोड़ी' कैसी अच्छी सोभती है" इस पवित्र आकाशवाणी को सुनते ही मालोजी ने एकत्रित मण्डली में उठकर निवेदन किया कि "जाधव राव आज से हमारे समधी हुए"।

यह सुनते ही जाधवराव चकित हुए और आनाकानी करने लगे। कई बार मनुष्य अनजाने धर्म कर बैठता है, परन्तु पीछे से मिथ्या लोकलज्जा के कारण परवश हुआ। अच्छे काम के लिये भी पछताता है। यही हाल जाधवराव का हुआ। मालोजी ने सब के सामने की गई प्रतिज्ञा को पालने के लिये ज़ोर दिया। यह बात निज़ाम दरबार तक पहुंची। बादशाह मालोजी को चाहता था। उसने बड़ी जागीर देकर मालोजी को भी जाधवराव का समकक्ष, धनी सरदार बना दिया। बादशाह की मध्यस्थता से १६०४ ई० में समारोह के साथ शाहजी और जीजाबाई का विवाह हुआ। बड़ा होने पर शाहजी भी अपने पिता की तरह दरबार के नवरत्नों में गिना जाने लगा। इसने मालिक अम्बर के साथ मिलकर मुग़ल बादशाही के मुकाबले में निज़ामशाही की रक्षा की। अहमदनगर की चढ़ाई के बाद जाधवराव आदि सरदार शाहजी को नीचा दिखाने के लिये मुग़ल बादशाह से जा मिले। १६३७ ई० में मुग़लों ने अहमदनगर को अपने आधीन कर लिया। शाहजी इसके बाद बीजापुर दरबार में चला गया। जाधवराव ने निज़ामशाही के अन्तिम दिनों में शाहजी को चैन नहीं लेने दिया। शाहजी अपनी गर्भवती धर्मपत्नी के साथ आत्मरक्षा के लिये इधर उधर भटकता रहा। इस आपत्ति के समय अभिमानिनी जीजाबाई ने भटकना स्वीकृत किया, परन्तु अपने पिता के घर नहीं गई। शाहजी ने शिवनेरी किले में जीजाबाई के रहने का प्रबन्ध किया। इसी स्थान पर राजनैतिक चहल पहल में,

राजनैतिक क्रांति की प्रचण्ड उथल-पुथल में, १६२७ ई० १० अप्रैल के दिन शिवाजी ने जन्म लिया।

बड़े पुरुषों का जन्म विपरीत परिस्थितियों में ही हुआ करता है। मुहम्मद साहब ने मूर्त्तिपूजकों के गढ़ में जन्म लिया था। स्वामी दयानन्द का जन्म भी मूर्त्तिपूजकों के नगर में हुआ था—अधिक क्या, भारत तिलक लोकमान्य का का जन्म भी १८५७ ई० के विद्रोह के समय में ही हुआ था। क्रांतिकारी नेता उसी जगह जन्म लेते हैं जहां उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र बनाना होता है। शिवाजी के बड़े भाई सम्भाजी का जन्म १६२३ ई० में हुआ। परिस्थिति-भेद के कारण शिवाजी 'शिव' और महाराष्ट्र का उद्धारक बन गया। जीजाबाई—उन वीरांगनाओं में से थी; जिन्होंने रणांगन की चित्रपटी पर नैपोलियन जैसे वीरों को जन्म दिया था—रामायण और महाभारत की रसमयी कथाएं सुनाकर बाल्यकाल से ही शिवाजी के दिल में वीरता और आत्माभिमान के भाव सञ्चारित किये। वंश के प्राचीन गौरव की कहानियां सुना सुनाकर शिवाजी को वंशोद्धार के लिये उत्साहित किया। माता के स्तन्यपान के समय वीररस का पान करने वाले शिवाजी ने भी यदि स्वतन्त्र राज्य की स्थापना न की होती तो और कौन करता?

पूना की जागीर में दादाजी कोंडदेव ने शिवाजी को प्रबन्ध आदि करने की शिक्षा दी। नियंत्रण का रहस्य शिवाजी ने यहीं सीखा। दादाजी कोंडदेव ने आजन्म अपने चोले की बांह काटकर शिवाजी को यह बात सिखाई कि यदि तुम दूसरों पर शासन करना चाहते हो तो स्वयं नियमों के अनुसार चलो। रोम वालों ने इसी गुण के कारण संसार में अपनी धाक बैठाई। आज भारतीय जनता में इसी नियंत्रण की कमी है। भारतीय जनता अपनी राष्ट्र-सभाओं की आज्ञा को उस तत्परता से नहीं मानती जितनी कि विदेशी सरकार की। शिवाजी दादाजी कोंडदेव के यहां स्वच्छन्दतापूर्वक मावलियों में खेलते कूदते, शिकार खेलते, योग्य होनहार बालवीरों को इकट्ठा कर पहाड़ों घाटियों में सिंहगढ़ और तोरण-दुर्ग की लड़ाइयों का अभ्यास करते थे। दादाजी कोंडदेव के साथ रह कर शिवाजी ने जहां प्रबन्ध करना सीखा वहां मावलियों की टोलियों में चन्द्रगुप्त की तरह अभिषेक कराकर भावी में प्रकट होनेवाले तेज को धारण किया।

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात"। शिवाजी ने जंगली मावलियों को को अपना बालसखा बनाया। इसी बालवीर सेना की सहायता से दिल्ली की शाही सेना को स्तम्भित किया। शिवाजी की इन उच्छृङ्खलताओं से कहीं शाहजी पर आपत्ति न आये इसलिए दादा जी शिवाजी को इन बातों से रोकते थे। आखिर १६४७ ई० में दादाजी ने अपना काम पूरा कर शिवाजी को उसकी थाती देते हुए कहा—बेटा ! तुम अपने काम में लगे रहो, तुम्हें सफलता होगी। इन ग्रामीण विश्वासी मावलियों को मत छोड़ना। शिवाजी की आँखें विदाई के समय डबडबा गई। नतमस्तक हो, दादाजी के निर्मल आशीर्वाद को स्वीकृत किया। इसी आशीर्वाद की कृपा से शिवाजी ने बादशाही दरबारों के सुखमय सरल राजपथ को छोड़कर स्वतन्त्रता के कंटीले मार्ग को चुना। इस रास्ते पर आराम तो नहीं मिलता परन्तु हृदय सन्तुष्ट रहता है। सांसारिक प्रलोभनों को छोड़ कर इस रास्ते पर चलने वाले वीरों को जन्म देने वाले देश कभी भी पराधीनता की बेड़ी में नहीं जकड़े जाते, प्राणों की बलि कर देंगे परन्तु स्वतन्त्रता के प्रण को न छोड़ेंगे। शिवाजी ने बीजापुर दरबार की चमक दमक के बीच में इस कर्तव्य पथ को आँखों से ओझल नहीं होने दिया। शिवाजी को स्वतन्त्रता की झलक दिख गई थी। इस पर मस्त हुए वीरों की नज़र में सांसारिक चमक दमक फीकी पड़ जाती है। आज भी भारत की स्वतन्त्रता की भावना से ओत-प्रोत, इसके लिए सब कुछ न्योछावर करने वाले वीरों की आवश्यकता है। तभी बृटिश की चमक दमक से चकित हुए नवयुवकों को स्वाधीनता के पवित्र मन्दिर का पुजारी बना सकेंगे।

: ७ :

बीजापुर का दरबार

ब्राह्मणी रियासत के पतन के बाद दक्षिण देश पाँच रियासतों में बंट गया। इन पाँच रियासतों में अहमदनगर की निज़ामशाही और बीजापुर की आदिलशाही विशेष शक्तिशाली रियासतें थीं। अकबर बादशाह ने अहमदनगर की निज़ामशाही को जीतने के लिए भरसक यत्न किया। सुलताना चाँदबीबी ने गृहकलह और विद्रोह के होते हुए भी स्वयं घोड़े पर सवार होकर किले की रखवाली की, और मुग़ल बादशाह को बतला दिया कि दक्खिन की

वीरांगनाओं का मुकाबला करना लोहे के चने चबाना है। दिल्ली की साधन-सम्पन्न सेना के सामने अकेली सुलताना चांदबीबी का देर तक सामना करनां मुश्किल था। किसी द्रोही सरदार ने उसका खून कर दिया। मुग़लों ने शहर पर कब्जा कर लिया। परन्तु वीरों ने अन्तिम दम तक निज़ामशाही को मुग़लों से बचाने की कोशिश की। मलिक अम्बर की मृत्यु के बाद शाहजी ने निज़ामशाही की रक्षा के लिए कई युद्ध लड़े। आखिर यह भी शाहजहाँ के जाल में फंस गए। अहमदनगर दिल्ली के बादशाहों के आधीन हो गया। इसके बाद बीजापुर के सुलतान ने शाहजी को योग्यता और रणकुशलता को देखकर उन्हें अपने दरबार में बुला लिया। दिल्ली के बादशाह और बीजापुर दरबार में सन्धि हो गई। शाहजी बीजापुर दरबार के इने गिने रत्नों में से एक था। दरबार में कठिन से कठिन युद्ध प्रसङ्गों के लिए यदि किसी ओर अंगुली उठती थी तो शाहजी की ओर। बादशाह शाहजी को बहुत मानता था। बीजापुर का यही प्रसिद्ध शाहजी शिवाजी का पिता था। इनका पहला विवाह जाधवराव की की लड़की जीजाबाई के साथ हुआ था। शाहजी अपने परिश्रम और उत्साह से ही इस ऊचे पद पर पहुंचा। शिवाजी भी चाहता तो अपने पिता के साथ बादशाहों के दरबारों में जाकर प्रतिष्ठा लाभ करता, और बड़े २ सरदारों में गिना जाता, मनसबदारियाँ और पाँचहजारियाँ हासिल कर आनन्द और ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करता। परन्तु हम देखते हैं कि शिवाजी दरबारों में जाता है पर सन्मान या प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए नहीं, अपितु स्वदेश और धर्म को चिन्ता के लिये।

शाहजी अपने समय के प्रसिद्ध पुरुषों में से एक था। शाहजी ने अपनी चतुरता और नीति-कुशलता से उस समय के राजनीतिज्ञों को विस्मित कर दिया था। सुलतान मुहम्मद आदिलशाह ने प्रसन्न होकर शाहजी को पूना और सूपे की जागीरदारी दी।

अपने पिता की इस बढ़ती को सुनकर शिवाजी अपनी माता जीजाबाई के साथ बीजापुर में आया। शाहजी की जीजाबाई से बनती न थी। उन्हों ने टीकाबाई नाम की महिला से दूसरा विवाह कर लिया था। शाहजी ने जीजाबाई

से कहा तुम यहाँ क्यों आई हो ? वहीं पूना में रहो ! शिवाजी की आयु इस समय १३, १४ वर्ष की थी। यह बात उसके दिल में गहरा असर कर गई। यह निरन्तर चिन्ताग्रस्त रहने लगा। इस समय बीजापुर में बादशाह के पुत्र का जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। मुसलमान लोग तथा बादशाह के अन्य कृपा-पात्र आनन्द पूर्वक मौजें उड़ा रहे थे। एक ओर दरबार की शान शौकत साज सजावट और रंगीली चहल पहल को देखकर,—दूसरी ओर कोंकण देश के दीन दुःखित लोगों के कष्टों को यादकर शिवाजी का दिल क्षुब्ध हो उठा। उसके दिल में अनेक तरह के क्रांतिकारी भाव पैदा होने लगे। उनकी माता उनको सान्त्वना देती थी, परन्तु उन्हें सन्तोष न होता था। आज भी भारत में एक ओर नई दिल्ली की शानदार इमारतों और शहरों के धनियों के ऐश आरामों को, और दूसरी ओर उसी शहर की सड़ी गलियों में खुले बाजारों में भूखे नंगे भारतीयों या गाँवों के अनपढ़ पीड़ित किसानों को देखकर कइयों के दिलों में उद्विग्नता के भाव पैदा होने लगते हैं। परन्तु हमारी इस खिन्नता में एक भेद है। शिवाजी के दिल में जो चोट लगी थी वह वज्र की रेखा हो गई थी। दिन-रात माता जीजाबाई शिवाजी को मातृभूमि की इस कलंक-रेखा को मिटाने के लिए तैयार करती थी। आज शिवाजी जैसे बालक तो हैं परन्तु जीजाबाई जैसी माता दिखाई नहीं देती। आज भारत की अधिकाँश माताएं बालक को किसी सरकारी नौकरी में काम करता देखकर खुश होतीं हैं अपने को धन्य समझती हैं। जीजाबाई बीजापुर के दरबार की चमक दमक को छोड़ कर पूना सूपा की उजाड़ जागीरदारी में अपने पुत्र के साथ रहने लगी। मातृ शक्ति के जागृत हुए बिना, मातृ भूमि का उद्धार नहीं हो सकता।

शाहजी ने जीजाबाई तथा शिवाजी को कुछ समय तक बीजापुर में रहने के लिए कहा। उनका इरादा था कि वे दरबार में जाकर पूना और सूपा की जागीर शिवा जी के नाम करादें। इस विचार से प्रेरित हो कर शाहजी शिवाजी को दरबार में लेगया। पिता और पुत्र के स्वभाव में ज़मीन और आसमान का अन्तर था। शाहजी आदिलशाही के सुलतान मुहम्मद के भक्त थे। दूसरी ओर शिवाजी के दिल में अत्याचारी बादशाह के प्रति ग्लानि और घृणा के भाव प्रबल हो रहे थे।

बीजापुर के अत्याचार तथा अन्याय शिवाजी को दरबारी प्रलोभनों और कृपाओं से सचेत कर रहे थे। शिवाजी राज-दरबार में उपस्थित हुआ परन्तु बादशाह के सामने "मुजरा" आदि कुछ नहीं किया। बादशाह को उसका यह व्यवहार बहुत बुरा लगा। शाहजी ने "लड़का नाबालिग है, बीमार है" कह कर बादशाह के क्रोध को शान्त किया। शिवाजी ने मुजरा क्यों नहीं किया; यह बात किसी से छिपी नहीं थी। १३, १४, वर्ष का लड़का इतना नाबालिग न था कि वह आचारोपचार करना भी न जाने—न उसे कोई शारीरिक बीमारी ही थी। उसके दिल में तो आत्मग्लानि और क्रोध की ज्वाला धधक रही थी। वह तो यही सोच रहा था कि किस प्रकार इस अत्याचारी का अन्त हो। शाह जी ने अपने प्रभाव से पूना और सूपा की जागीर शिवाजी के नाम करा दी। कुछ दिनों में राजधानी में जो समारोह हो रहा था वह भी समाप्त हो गया। दूर देशों से निमन्त्रित लोग अपने अपने स्थानों पर जाने की तैयारियाँ करने लगे। शिवाजी भी अपना काम पूरा करके लौटा। लौटते हुए अन्य यात्री राजदरबार की दमक के गीत गाते हुए मस्त हो कर घरों की ओर जा रहे थे, परन्तु शिवा जी लौटने समय गुप्त रास्तों तथा दुर्गों के निरीक्षण में लीन था।

: ८ :

बालसूर्य का तेज

बालसूर्य इन भयंकर चमक दमक वाली मेघमालाओं को छिन्न भिन्न करने के लिए अनेक उपायों को सोच रहा था। रास्ते में ही कोंकण प्रान्त का बीजापुर सरदार मुल्लमुहम्मद मिला। यह सरदार बीजापुर रियासत में उपस्थित होने के लिए जा रहा था। उसने शिवाजी का स्वागत किया, क्योंकि शिवाजी बीजापुर दरबार से पूना और सूपा की जागीरदारी लेकर आ रहा था। मुल्लमुहम्मद ने शिवाजी से कहा, जबतक मैं लौट कर आता हूं तब तक कोंकण का प्रबन्ध आप ही करें। शिवाजी ने इसे स्वीकार किया। मौके से पूरा २ लाभ उठाया। कोंकण के ४१ किले सम्भाल कर रायगढ़ पर अपना अधिकार कर लिया। महत्वपूर्ण गुप्त स्थानों पर अपने आदमियों को नियुक्त कर कोंकण प्रान्त पर पूर्ण अधिकार कर लिया। मुल्लमुहम्मद नाममात्र का सूबेदार रह गया।

१६४८ ई० में सुलतान मुहम्मद की मृत्यु हो गई। बीजापुर दरबार के मुख्य वजीर खाँमुहम्मद ने अलि आदिलशाह को गद्दी पर बैठाया। १६४६ ई० में बीजापुर दरबार की अन्दरूनी गड़बड़ को देखकर, औरंगजेब ने अपने सरदारों को भेजकर, कल्याण देश के कई किले अपने हस्तगत कर लिए। दिल्ली दरबार और बीजापुर दरबार में वैमनस्य हो गया। औरंगजेब स्वयं सेना लेकर दक्षिण में आया। बीजापुर की ओर से खाँ मुहम्मद मुकाबला करने के लिए आगे बढ़ा शिवाजी ने भी दूसरी ओर से बीजापुर वालों का साथ देकर औरंगज़ेब को घेरा। औरंगजेब हताश होकर, सेनाओं के घेरे में से निकलने का उपाय सोचने लगा। औरंगजेब ने शिवाजी को रास्ता देने को कहा। शिवाजी ने औरंगजेब को बताया कि यह वज़ीरखाँ मुहम्मद धर्मात्मा आदमी है। इसका नियम है कि परमात्मा की प्रार्थना के समय यदि कोई आदमी किसी प्रकार की याचना करे तो यह उसे दैवी प्रेरणा समझ कर पूरा करना अपना कर्तव्य समझता है। औरंगजेब ने वैसा ही किया। उसकी प्रार्थना स्वीकृत हुई। औरंगजेब बच कर निकल गया। खाँ मुहम्मद के इस व्यवहार से बीजापुर दरबार बहुत नाराज हो गया।

अफ़जलखां ने बादशाह को खाँ मुहम्मद के विरुद्ध भड़काया। जब खाँ मुहम्मद बीजापुर लौटा तब दरबार में प्रवेश करते समय किसीने उसकी हत्या कर दी। इस प्रकार बीजापुरका अनुभवी वज़ीर १६५० ई० में मारा गया। बीजापुर दरबार की कमर टूट गई। शत्रु प्रबल होने लगे। अब्दुल मुहम्मद बीजापुर का वजीर बना। परन्तु उसमें वह ताकत और अक्ल न थी। शिवाजी ने औरंगजेब को बचाया था, औरंगजेब ने वचन दिया कि वह शिवाजी के रास्ते में रुकावट न डालेगा, इधर बीजापुर दरबार में न था। दरबारियों के पारस्परिक झगड़ों के कारण किसी की न चलती थी। शाहजी कर्नाटक के प्रबन्ध के लिए गया हुआ था। उधर शिवाजी ने मौका देखकर बीजापुर दरबार के कई प्रदेश अपने आधीन कर लिए। बीजापुर के कई करद राजाओं को अपने प्रभाव में करलिया। इतना ही नहीं, १६४६ ई० के लग भग इसी प्रकार अपनी जागीर के समीपस्थ प्रदेशों को अपने आधीन कर लिया। लगते हाथ शिवाजी ने आबाजी सोनदेव आदि सरदारों की सहायता से तोरण, चाकण, कोंडाणा, पुरन्दर, कल्याण और समुद्र तट के कई क़िले जीत लिए। रायगढ़ को अपनी

राजधानी बनाया। राजपुर के बन्दरगाहों को जीता। तोरण और कल्याण के किलों को जीतने से शिवाजी को अनन्त सम्पत्ति मिली। इसकी सहायता से शिवाजी ने बड़े २ क़िले बनवाए। राज्य-विस्तार को स्थिर नींव पर खड़ा किया। उत्तर दिशा में कल्याण से लेकर, दक्षिण में कोंकण तक शिवाजी का बोलबाला हो गया। मराठे लोग सदा जीतने वाले शिवाजी के भगवे झण्डे को अपना राष्ट्रीय झण्डा मानकर उसके नीचे एकत्रित होने लगे। विश्वासी सीधे साधे मावलियों की सेना के साथ शिवाजी को चालाक मराठे मिल गये। शत्रुओं में खलबली मच गई। बीजापुर दरबार में शाहजी का प्रभाव बढ़ रहा था। कर्नाटक में उसे सफलता हो रही थी। शाहजी से अन्य सरदार ईर्षा करने लगे। मौका देखकर उन्होंने बादशाह के कान भरने शुरू किये कि शिवाजी के उत्पातों में शाहजी का हाथ है। उसकी बातों में आकर बादशाह ने बाजी घोरपड़े को कर्नाटक में शाहजी को पकड़ लाने के लिए भेजा। बाजी घोरपड़े ने शाहजी को भोजन के लिए निमन्त्रण देकर—जबकि वह सर्वथा निःशस्त्र थे—पकड़ कर बीजापुर में कैद कर लिया। शाहजी से कहा कि वह अपने पुत्र को उत्पात करने से रोके, अन्यथा उसकी खैर नहीं।

शाहजी लाचार था,पर क्या करता ? शिवाजी को जब यह पता लगा तो उसने एकदम औरंगजेब के साथ सन्धि की और अपने आपको औरंगजेब 'का सामन्त बनाकर बीजापुर पर चढ़ाई करने के लिए तैयार किया। जब यह खबर बीजापुर दरबार में पहुंची तो उन्होंने एकदम औरंगजेब से सन्धि की बातचीत शुरू की। शिवाजी का मतलब पूरा हो गया। १६५६ ई० में शाहजी छूट गया। योग्यपुत्र ने नीतिकुशलता से पिता को स्वतन्त्र करा दिया।

इसके बाद शिवाजी ने बीजापुर के जागीरदार चन्द्ररावमोरे को छलबल से जीतकर उसके छोटे भाई को अपने साथ मिलाकर जावली के प्रदेश को अपने आधीन कर लिया। प्रबन्ध करने के लिए प्रतापगढ़ नाम का नया क़िला बनवाया। शिवाजी की इस गति-विधि को देखकर बीजापुर दरबार अधिकाधिक चिन्तातुर होने लगा। बादशाह ने एक दिन दरबार में कहा है, कोई सरदार जो शिवाजी को पकड़कर दरबार में लाए ? अनुभवी सरदार अफजलखाँ ने अभिमान के साथ अपने आप को पेश किया और सेना लेकर प्रस्थित हुआ।

कांटे से कांटा निकालो

प्रत्यक्ष मुकाबिला करने की हैसियत नहीं है। प्रत्यक्ष मुकाबिले में पराजय निश्चित है। सब बातों पर विचार करके निश्चित किया गया कि नीति द्वारा ही शत्रु का दमन किया जाय। किसी भी प्रकार शत्रु का दमन करना चाहिये। शत्रु मायावी है यदि शस्त्र बल नहीं चल सकता तो उसको छल बल द्वारा मारना अधर्म नहीं है। उद्देश्य, शत्रु-विजय और पापियों का दमन करना है। राजा रामचन्द्र ने भी इसी धर्म-रक्षा के भाव से प्रेरित होकर बालि को छलपूर्वक मारने में पाप नहीं समझा। कृष्ण भगवान ने इसी नीति का सहारा लेकर जरासंध का घात किया। जब दोनों पक्षों ने युद्ध-घोषणा करदी है, दोनों एक दूसरे के प्राण लेने की घोषणा कर चुके हैं, उस हालत में दोनों स्वतंत्र हैं कि किसी प्रकार से शत्रु का दमन करें। हां, युद्ध घोषणा किये बिना अचानक आक्रमण करना पाप है। हाँ प्रत्यक्षतः रक्षा का वचन देकर छुपे हाथ छुरी चलाना महा पाप है। भारतीयों को दिलासा देकर कि हम तुम्हारी मान-मर्यादा, धन-सम्पत्ति की रक्षा करेंगे, गुप्त उपायों से सम्पत्ति को लूट ले जाना पाप है। अभी कल ही संसार के सभ्य राष्ट्रों ने न्याय और आत्म-निर्णय के नाम पर जो लूटमार की है वह संसार में सदा याद रहेगी। योरुप के राजनैतिक क्रांतिकर्ता मेज़नी का भी यही सिद्धांत था। एकबार प्रत्यक्ष युद्ध घोषणा करके, दोनों पक्ष किसी भी उपाय का प्रयोग करने में स्वतंत्र हैं। समय और परिस्थिति से पूरा २ लाभ उठाना चाहिये। क्षत्रिय का परमधर्म शत्रु को जीतना है। इस सदी के सब से बड़े धर्मसुधारक ऋषि दयानन्द भी राजधर्म प्रकरण में लिख गये हैं कि धोखे से भी आगे पीछे छिपकर शत्रु को मारना चाहिये। शत्रु पर विजय पाना मुख्य धर्म है। आदर्शवाद का उपदेश देना उसके आधार पर सम्मत्तियां बनाना सुगम काम है। उपस्थित कठिनाइयों को हल करना टेढ़ी खीर है। धर्म और राजनीति का उद्देश सच्चाई की रक्षा करना और अत्याचारियों को दबाना है। जो लोग धर्म के मर्म को न समझ कर बाहर की बातों में ही फंस जाते हैं वे देश और अपना, दोनों का नुकसान करते हैं। जिस प्रकार सोमनाथ

के मन्दिर पर महमूदगज़नवी ने आक्रमण किये थे उस समय के "गौरक्षक" ब्राह्मणों ने गोरक्षा करते हुए, शत्रु द्वारा सामने खड़ी की गई गऊओं की जीवन रक्षा की चिंता करते हुए, अपने देश को शत्रु के हाथ बेच दिया। राजपूतों ने भी इसी तरह अनेक बार हाथ आये हुए शत्रु को झूठी उदारता और धर्मभीरुता के नाम पर छोड़ कर देश को गुलाम बनाया। हमें दुनियाँ में रहना है। यहाँ संसार स्वर्गलोक नहीं है। यहाँ राक्षस भी रहते हैं। सब बीमारियों की एक ही दवा नहीं होती, कई बार बीमारी को दूर करने के लिए विषप्रयोग भी करना पड़ता है। इसी प्रकार सामाजिक संशोधन के लिए, समाज व राष्ट्र की रक्षा के लिए, पैने औज़ारों का भी प्रयोग करना चाहिये। हां, इनका प्रयोग करते हुए एक बात का ख्याल रखना चाहिये। वह यह कि स्वीकृत उपाय द्वारा बुराई का दमन करके, उससे निजी कमाई नहीं करनी चाहिये। उससे अपना व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध नहीं करना चाहिये। इस प्रकार सब दृष्टियों से विचारकर, एकांत में निष्काम प्रेम की मूर्ति, माता जीजाबाई के सामने ध्यानावस्थित होकर शिवाजी ने अन्तिम निश्चय किया। अन्तरात्मा ने यही प्रेरणा की कि इस मौके पर फौलादी तलवार की अपेक्षा बुद्धि की तलवार का उपयोग करो। दूत भेजकर अफज़लखां को कहला भेजा कि मैं तो आपका ही नौकर हूँ। आइये खुशी से अपना प्रदेश देखिये, मैं तो सुलह करने के लिए तय्यार हूँ। भेंट एकांत में हो। प्रतापगढ़ के पास तम्बू तय्यार हो गया। दूर दूर तक पहाड़ी घाटियाँ साफ कर दी गईं। अफ़ज़लखां तीन आदमियों के साथ निश्चित स्थान पर मिलने के लिए प्रस्थित हुआ। इधर शिवाजी भी तीन मराठे सरदारों के साथ सावधान होकर आए।

दोनों चालाक थे, अनुभवी लड़ाके थे। दोनों षड्यन्त्रों के दाँवपेच को समझते थे। ऊपर सफेद पोश, मुसकराते हुए दिल में विजय की खुशी में, अचूक दाँव पेच की चमत्कारिता में मस्त, दोनों वीर आगे बढ़ते आए। मिलने के लिए आलिंगन करने लगे, पर क्या यह कभी हो सकता है! एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। फौलाद फौलाद से नहीं कट सकता। आलिंगन करने के लिए दोनों बढ़े, गलबाहियों की भूमिका थी अफ़ज़लखाँ बीजापुर दर-

बार में हर्षनाद के साथ शिवाजी का सिर हाज़िर करने के लिए तैयारी करने लगा। गला दबोचा। शिवाजी भी सावधान था। अंगरखे के नीचे ज़िरह-बख्तर था। आस्तीन में बाघनखा था। सिर पर लोहे-की टोपी थी। अफ़ज़लखाँ ने गला पकड़ना चाहा—शिवाजी ने ठीक मौके पर पेट में बाघनखा झोंक दिया। छिपे हुए मराठे सरदार बाहर निकल आए। अफ़जलखां के शरीर-रक्षकों को कतल कर दिया गया। प्रतापगढ़ दुर्ग पर विजयसूचक अग्नि-ज्वाला प्रदीप्त कर दी गई। इस ज्वाला की चमक देखते ही दूर २ घाटियों में छिपे हुए मावले वीर अपनी टोलियां लेकर मैदान में उतर आए। सेनापति के बिना, अनाथ मुसलमान सेना चारों तरफ से घेरी गई। कुछ बचबचाकर निकल सके। चारों ओर शिवाजी की विजय का डंका बजने लगा। लोग उसे असाधारण चमत्कारी पुरुष समझने लगे। सब पर उसकी धाक बैठ गई। १६६० ई० में दूसरे वर्ष अफजलखां के लड़के फजलखां ने शिवाजी को पन्हाले के किले में घेरा। शिवाजी रातों रात निकल गया। अपने पीछे सरदार बाजी देशपाटे को छोड़ गया।

: १० :

बाजी प्रभु का बलिदान

अफ़ज़लखां की मृत्यु के बाद, बीजापुर दरबार में कोई वीर सेनापति नहीं रहा, जो शिवाजी का मुकाबिला करता। शिवाजी ने बेरोकटोक बीजापुर के राज्य पर अधिकार करना शुरू किया। बीजापुर के बादशाह आदिल-शाह ने जब यह समाचार सुना, उसने कर्नाटक से विद्रोही सरदार सीदी जौहर को दरबार में बुला भेजा और कहा कि यदि तुम शिवाजी पर आक्रमण कर उसका मानमर्दन करोगे तो हम तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर देंगे।

बादशाह ने सीदी जौहर को सलावत-जंग की उपाधि देकर १० हज़ार घुड़सवार और १४ हज़ार पैदल सेना के साथ विजय-यात्रा के लिये विदा किया। अफ़ज़लखां का बेटा फाज़ल मुहम्मद भी पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए साथ हो लिया।

बीजापुर की इस तय्यारी को देखकर, शिवाजी के अन्य शत्रु भी सिर

उठाने लगे। ज़ंजीरा के सीदियों, तथा बाड़ी के सांवत सरदार भी अपनी २ सेनाओं को सजाने लगे। शिवाजी की साधनहीन मुट्ठीभर मराठी सेना को कुचल देने के लिए चारों ओर से आंधियों और तूफ़ानों के चिन्ह प्रकट होने लगे। इनको देखकर, वीर शिवाजी बिल्कुल नहीं घबराया। उत्साह तथा तत्परता से आत्मरक्षा की तैयारी करने लगा। शिवाजी अपने तथा शत्रु के बलाबल को भली प्रकार जानता था। अपने विश्वसनीय सरदारों को शत्रु के आसपास महत्वपूर्ण स्थानों पर प्रबन्ध करने के लिए नियुक्त किया। १६६० ई० के जून मास में सीदी जौहर सीधा पन्हाला के किले की ओर बढ़ा। वर्षाकाल में ही चारों ओर मोर्चाबन्दी करके किले को घेर लिया। पन्हाला किला अन्य किलों की तरह मजबूत तथा अभेद्य नहीं था। सीदी जौहर तत्परता के साथ मोर्चाबन्दी के काम पर लग गया। इस पेचीदा नाजुक परिस्थिति को देखकर, शिवाजी ने सीदी जौहर के पास कहला भेजा कि मैं स्वयं क़िला तुम्हारे आधीन करता हूँ, तुम मुझे अभय वचन दो। मैं स्वयं तुम्हारे पास पहुंचूंगा। विश्वास हो जाने पर शिवाजी ने शत्रु के एक मोर्चे के पास सीदी जौहर से भेंट की, और तय हुआ कि दूसरे दिन शिवाजी क़िला खाली करदे।

शिवाजी क़िले में लौट गया। बीजापुर की सेनाएं, यह समझकर कि सन्धि हो गई है, उस रात बेसुध सो गईं। इधर शिवाजी ने शत्रु को असावधान देखा और आधी रात होते २ मावला वीरों की एक टोली ले कर शत्रु के पहरेदारों से आँख बचाकर क़िले में से निकल भागा और विशालगढ़ की ओर चल दिया।

प्रातः बीजापुर की सेनाओं को यह समाचार मिला। एकदम मुहम्मद फ़ाज़िल और सीदी जौहर के बेटे सीदी अज़ीज़ को घुड़सवार सेनाओं के साथ शिवाजी का पीछा करने के लिये रवाना किया। प्रातः काल बहुत देर तक शिवाजी शत्रु को दिखाई नहीं दिया। शिवाजी क़िले की घाटी पर चढ़ रहा था कि इसी समय शत्रु की उमड़ती हुई सेना पीछे दिखाई दी। शिवाजी ने एकदम अपने विश्वसनीय सेनापति बाजीप्रभु को कुछेक मावले वीरों के साथ खिड़ी स्थान पर तैनात होने के लिए हुक्म दिया और कहा कि जब तक मैं सुरक्षित दशा में विशालगढ़ न पहुँच जाऊँ तुम इस स्थान से आगे शत्रु को मत बढ़ने

देना। मैं क़िले में "तोप की आवाज़" से वहा पहुंचने की सूचना दूंगा।

बाजीप्रभु प्रभु की आज्ञा को सिर माथे कर इने गिने वीरों के साथ वहीं डट गया। शिवाजी क़िले की ओर चल दिया। रोमांचकारी दृश्य था। एक ओर विशाल समुद्र की लहरों की तरह दूर तक फैली हुई बीजापुर दरबार की अनगिनत शत्रु सेना उमड़ रही थी, दूसरी ओर इने-गिने वीर बाजीप्रभु के साथ समुद्र की प्रबल तरङ्गों को रोकने के लिये, प्राणों को हथेली पर रखकर, प्रण को पूरा करने के लिये डटे हुए थे। भीरु तथा सांसारिक धन-दौलत से प्रेम करने वाले साधारण लोग, इन मुट्ठीभर वीरों को पागल कहेंगे। परन्तु ये वीर इने गिने वीर नहीं थे, एक २ वीर अपने आपको सैकड़ों के बराबर समझता था। वह समझते थे कि जब तक उनके ऊपर शिवाजी की भवानी तलवार का साया है, तब तक उन्हें मैदान से कोई नहीं हटा सकता। बाजी-प्रभु दृढ़ चट्टान की तरह डटा रहा। शत्रु ने कई बार आक्रमण किए परन्तु वीर मावलों ने आगे बढ़ बढ़ कर ऐसे वार किए कि शत्रु को खिड़ी के मैदान में कई बार पीछे हटना पड़ा। शिलाओं से टकराई हुई लहरें, जिस प्रकार लौट लौट कर, आगे बढ़ती हैं और फिर पीछे लौट जाती हैं, उसी प्रकार मुसल-मानों की सेना ने पीछे हटकर कई बार हमले किए परन्तु उन्हें पीछे ही हटना पड़ता था। बाजीप्रभु ने बीजापुर की सेनाओं के छक्के छुड़ा दिये, बाजीप्रभु के कई वीर खेत रहे, परन्तु इससे उनकी विरोध करने की शक्ति और उत्साह में कमी नहीं आई। वह और भी अधिक जोश से लड़ने लगा, दुपहर तक इसी प्रकार की लड़ाई होती रही। बाजीप्रभु ने मैदान नहीं छोड़ा। उसके शरीर पर २५ घाव लगे परन्तु वह ज़रा भी डाँवाडोल नहीं हुआ। बाजीप्रभु का ध्यान एकमात्र विशालगढ़ किले की तोप की ओर था। आधी से ज़्यादा सेना कट गई। स्वयं भी गोली का शिकार हुआ परन्तु प्राण-विसर्जन करने से पूर्व उसे तोप की आवाज़ सुनाई पड़ी। इस आवाज़ को सुनकर बाजी प्रभु ने शान्ति के साथ प्राण छोड़े और निम्न उद्गार कहे:—

"मैंने अपना काम पूरा कर लिया"। ऐसे स्वामिभक्त सेवक धन्य हैं। अपने स्वामी का जीवन बचा लिया, स्वयं अमर हो गया। धन्य हैं ऐसे वीर जो अपने कृपालु स्वामी के लिए इस नश्वर देह को कुछ नहीं समझते।

प्राणों पर न्योछावर होने वाले ऐसे वीरों की सहायता से ही शिवाजी छत्रपति बन सका। वह महाराष्ट्र-भूमि धन्य है जिसने ऐसे निष्काम स्वामिभक्त देशपांडों को जन्म दिया है। निष्काम बाजीपांडे! आज का भारत तेरे जैसे मातृभक्तों और स्वामिभक्तों को चाहता है। भारत-जननि! तू बाजी देशपांडों को फिर से जन्म दे। तेरे आशीर्वाद कभी विफल नहीं जाते। इस भयंकर पराजय से बीजापुर दरबार का दम टूट गया।

: ११ :

शिवाजी और दिल्ली दरबार

इस प्रकार बीजापुर दरबार को कम्पित कर शिवाजी दिल्ली दरबार की ओर बढ़ा। इस समय दिल्ली दरबार के बादशाही तख्तेताऊस पर अपने समय का चाणाक्ष बादशाह औरंगज़ेब बैठा था। उसकी कूटनीति का पार पाना किसी २ का ही काम था। इसने अपने पिता शाहजहाँ जैसे चलते दिमाग़ को जाल में फंसा कर किले में बन्द किया। दारा को गली-गली में भटकाया। मुराद को काठ का उल्लू बनाया। शुजा को जंगलों में मार भगाया। मीर जुमला से काम निकाल कर उसे आसाम की ओर रवाना किया। यह मक्के का फ़कीर अपने समय के "मक्कारों का मक्कार" था। किसी ने इसको रोका तो श्रीकृष्ण के चेलों ने। राजपूताना में राजसिंह और दुर्गादास ने, उत्तर भारत पञ्जाब में गुरुगोविंद के पांच प्यारोंने औरंगजेब की तेग़ को कुन्द किया। लाचार होकर, उत्तर भारत में सिर पर आई हुई दिक्कतों को टालने के लिये दक्षिण में बढ़ती हुई, उठती हुई, मराठा शक्ति का दमन करने के लिये इसने सेनाओं को इधर भेजा।

शिवाजी स्थिति को खूब समझता था। वह जानता था कि मुग़ल बादशाहों में यदि कोई पानीदार आदमी है तो वह औरंगजेब है। शिवाजी को मालूम था कि इसका मुकाबिला करने के लिए आवश्यक है कि राजपूतों को अपने साथ मिलाया जाय। इसी नीति को ध्यान में रखकर शिवाजी ने किसी भी राजपूत राजा के दिल को नहीं दुखाया। यशवन्तसिंह आदि को अपने साथ मिलाने में कमी नहीं की। परन्तु जयपुर के राजा पर उसकी कुछ नहीं चली।

शिवाजी और औरंगज़ेब दोनों एक दूसरे को समझते थे। दोनों अपना मतलब पूरा करने के लिये ही एक दूसरे की सहायता करते थे। प्रत्यक्ष मित्र होते हुए भी दोनों एक दूसरे पर घात लगाये बैठे थे। शिवाजी ने औरंगजेब की सहायता से अपने पिता को बीजापुर दरबार से मुक्त कराया, औरंगजेब ने शिवाजी की सहायता से दक्षिण की मुसलमानी रियासतों का सिर कुचला। दोनों वीर छल-बल में तुले हुए थे। कभी न कभी दोनों का मुकाबिला होना ही था। बीजापुर दरबार कमजोर हो गया था। उसने शिवाजी को दबाने के लिये कोशिश करनी छोड़ दी थी। इधर से निश्चिन्त होकर मराठा वीरों ने दिल्ली की ओर कदम बढ़ाया। नेताजी पालकर और मोरोपन्त पिंगले ने मुग़ल-बादशाही के इलाक़ों पर आक्रमण करने और छापे डालने शुरू कर दिए। इस सिलसिले में मराठे लोग औरंगाबाद तक पहुँचे। शत्रु की इस उमड़ती बाढ़ को रोकने के लिए औरंगजेब ने अपने मामा शायस्ताखाँ को, यशवन्तसिंह के साथ बड़ी भारी सेना के साथ भेजा। शायस्ताखाँ ने चाकण नाम का क़िला सर किया और पूना के महल में रहने लगा। शायस्ताखाँ विजय से निश्चित था। शिवाजी ने पूना शहर को जाने वाली बरात में वीर मराठों के साथ बरातियों के वेश में शहर में प्रवेश किया। मध्यरात को जब सब लोग निद्रादेवी की गोद में बेसुध पड़े थे, शिवाजी ने अपने चुने हुए सरदारों के साथ महलों में प्रवेश किया। इस अचानक आक्रमण से शत्रु चकरा गया। शत्रु की सेना के पैर उखड़ गये। शायस्ताखाँ का पुत्र मारा गया। शायस्ताखाँ भी भगा जाता था, शिवाजी ने तलवार का वार कर उसको यमलोक भेजा। औरंगजेब इस पराजय को सुन कर क्रोधाग्नि में राख हो गया। १६६४ ई० में नयी सेना के साथ अपने बेटे मुअज़्ज़म को भेजा। शिवाजी इस सेना से ज़रा भी न घबराया। उसने ठीक इसी समय मुग़लों के समृद्ध शहर सूरत को लूटा। औरंगजेब ने शत्रु की गति को दिन प्रतिदिन बढ़ता देखकर यशवन्तसिंह को दिल्ली बुला भेजा और जयसिंह और दिलेरखान को अन्तिम फैसला करने के लिए भेजा। दोनों सरदारों की शक्ति और अनुभव पर औरंगजेब को पूरा भरोसा था। इधर औरंगजेब की तलवार चल रही थी, उधर बीजापुर दरबार ने मराठों के विद्रोह का दमन कर, एक बार फिर, अपने भाग्य को आजमाना चाहा। बीजापुर के सेनापति

ने कोंकण पर आक्रमण किया। शिवाजी ने उन्हें हराकर वारसिलोर के दक्षिणी किनारे की ओर से आक्रमण कर बीजापुर के इलाके में लूट मचा दी। इसके बाद शिवाजी जल-मार्ग से पूना की ओर लौटा। यह पहला मौक़ा था जब कि शिवाजी ने समुद्र-यात्रा की। शिवाजी की इस सफलता को देखकर दक्षिण कर्नाटक में शाहजी के नीचे काम करने वाले मराठे सरदार शिवाजी के चारों ओर एकत्रित होने लगे।

इन योग्य कार्यकर्ताओं की सहायता से शिवाजी ने विजित प्रदेशों का उत्तम प्रबन्ध किया। इसी साल १६६६ ई० में शाहजी घोड़े से गिर कर मर गया। अब शिवाजी ने अपने आप को स्वतन्त्र राजा घोषित किया और अपने सिक्के भी चालू किये। औरंगजेब शिवाजी की स्वतन्त्र गति को देखकर आपे से बाहर हो गया। औरंगजेब ने वकील भेज कर बीजापुर वालों को शिवाजी की सेना पर आक्रमण करने के लिये प्रेरित किया। बीजापुर दरबार में ख़वास-खान सरदार को इस काम के लिए भेजा। दोनों ओर से मराठी सेना पर आक्रमण किए गए। बीजापुर और दिल्ली की सेनाओं से घिरी हुई मराठी सेना पराजित हुई। शिवाजी स्वयं इस युद्ध में उपस्थित न था। इस पराजय से शिवाजी ज़रा भी नहीं डगमगाया, उसने एकदम मुसलमानों के मक्का जाने वाले जहाज़ को लूटा। शिवाजी को भली प्रकार मालूम था कि दिल्ली दरबार और बीजापुर के दरबार एक नहीं हो सकते। दोनों दरबार एक दूसरे के जानी दुश्मन हैं। इस बात को समझते हुए शिवाजी समय की नब्ज़ को पहिचानने में कच्चा न था। उसने सोचा कि इस समय जयसिंह और दिलेरखान की सेनाओं का मुक़ाबिला करना कठिन है। साथ ही साथ बीजापुर की सेनाओं को रोकना तो और भी कठिन है। एक समय पर एक का मुक़ाबिला करना चाहिये। इधर दिलेरखां ने पुरन्दर पर कब्ज़ा कर लिया। जयसिंह सिंहगढ़ में ही रहा। पुरन्दर में शिवाजी का वीर सरदार मुरारबाजी था।

इस सरदार ने क़िले की छोटी सेना के साथ, दिलेरखान का दिल खोल कर मुकाबिला किया। आख़िर दिलेरखां के तीर से मारा गया। कहते हैं कि इस वीर मुरार बाजी के (सिर कटने के पीछे) धड़ ने ज़मीन पर गिरने से पूर्व तीन सौ मुसलमानों को यमलोक का यात्री बनाया।

इस वीर की मृत्यु का हाल सुनकर शिवाजी ने सन्धि करना ही उचित समझा। शिवाजी ने सन्धि करने के लिये रघुनाथ पण्डित को जयसिंह के पास भेजा। संधि की शर्तें निश्चित की गईं। यही सन्धि पुरन्दर की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है।

सन्धि की शर्तें इस प्रकार तय हुईं :—

१. मुग़लाई मुल्क के जो क़िले शिवाजी ने जीते हैं, उनमें से पुरन्दर सिंहगढ़ आदि २० क़िलों तथा आस-पास के टापुओं को शिवाजी लौटा दे।

२. शिवाजी १२ किले और १० लाख का मुल्क जागीर के तौर पर रखे।

३. संभाजी दिल्ली दरबार में ५ हज़ारी पद पर रहे।

४. घाट-माथा के बीजापुर के इलाके में शिवाजी को चौथ वसूल करने का हक दे दिया गया।

५. इसी समय शिवाजी ने सोनपन्त और रघुनाथ बल्लाल को भेज कर बादशाही दरबार में जाने की इच्छा प्रकट की। जयसिंह भी यही चाहता था। मित्र मण्डली की सलाह लेकर माता की आज्ञा से ही शिवाजी ने यह सब बातें मान लीं। शिवाजी केवल युद्ध लड़ना ही नहीं जानता था, सन्धि करने में, शत्रु को फंसाने में भी उसका पार कोई २ ही पा सकता था। औरङ्गजेब ने यह सब कुछ इसलिए स्वीकार किया था कि शिवाजी स्वतन्त्र राजा न बने। राजपूत राजाओं की तरह वह भी मुगलाई दिल्ली दरबार में नौकरी करे। पुरन्दर की सन्धि को स्वीकृत करने के बाद शिवाजी ने जयसिंह को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वह अपनी सेनाओं का रुख बीजापुर की ओर मोड़े; और कहा कि थोड़े दिनों में ही हम बीजापुर को भी आपके आधीन करके दिल्ली-सम्राट् की सेवा में उपस्थित होंगे। बादशाह की भेंट में यही उपहार असली मूल्य का होगा। शिवाजी को अपना दोस्त बना कर, निश्चिन्त होकर जयसिंह बीजापुर वालों के साथ जूझ पड़ा। शिवाजी इधर दिल्ली जाने के बहाने युद्ध में तटस्थ रहा। गुप्त रूप से बीजापुर वालों को सहायता देने में भी कमी नहीं की। जयसिंह आगे बढ़ता गया परन्तु पीछे से सेना में रसद की कमी पड़ी।

नयी सेना और रसद भेजने के लिए दिल्ली लिखा गया। अभी तक

शिवाजी आगरा नहीं पहुंचा था। औरंगजेब इसके लिए उतावला था। उसने कहला भेजा था—तुमने यह नया झगड़ा क्या खड़ा कर दिया इसे स्वयं सुलझाओ। यहां से किसी तरह सहायता नहीं मिलेगी, जल्दी लौटो। दिल्ली दरबार से इस उत्तर के आने पर जयसिंह हैरान हुआ। तब उसे शिवाजी की चाल समझ में आई। आखिर उसने शिवाजी से एकान्त में भेंट कर मित्र के नाते कहाः—भाई, तुम आगरा ही जाओ। जीवन खतरे में है। वहां मेरा लड़का रामसिंह है। तुम्हें किसी प्रकार की तकलीफ़ नहीं होगी। यदि तुम वहां नहीं जाते हो तो मेरा अन्त निश्चित है। दोस्ती के नाम पर तुम वहां ज़रूर जाओ। बहुत कहने सुनने पर जयसिंह की—नहीं नहीं विश्वस्त मित्र—की रक्षा के लिये शिवाजी ने बादशाही दरबार में जाना स्वीकृत किया। बड़े आदमियों के दिलों की थाह नहीं पाई जा सकती। किसी कवि ने ठीक ही कहा है :—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति॥

युद्ध के मैदानों की रक्त-नदियां, जिन दिलों पर कुछ असर नहीं करतीं, वही दिल विश्वस्त मित्र के सामने द्रवित हो जाते हैं। मित्र की रक्षा के लिए अपने जीवन को जोखिम में डालने वाले कोई २ ही माता के लाल होते हैं। राजपूतों के साथ शिवाजी का व्यवहार कैसा था, यह इसी घटना से स्पष्ट हो जाता है। वचन देकर उसे पूरा करने के इरादे से शिवाजी ने दिल्ली जाने की तैयारी की। रायगढ़ में सारे कार्य का निरीक्षण किया। अपने पीछे, प्रबन्ध में गड़बड़ न हो इस लिए स्थान २ पर विश्वस्त आदमियों को नियुक्त किया। मोरोपंत पिंगले को पेशवा नियत किया। अणाजीदत्तो तथा सोनदेव आदि सरदारों को कहा कि जीजाबाई के निरीक्षण में काम करो। मैं शीघ्र ही अपना वचन पूरा करके लौटूंगा। यदि किसी प्रकार की भयंकर आपत्ति आये तो राजाराम को मेरा प्रतिनिधि समझ कर उसके साथ मिल कर मराठा-मण्डल की रक्षा करना। शिवाजी स्वयं अपने पुत्र के साथ बालसखा तानाजी मालुसरे और प्रतापराव गुर्जर को साथ लेकर दिल्ली की ओर रवाना हुआ। शिवाजी के प्रबन्ध की विशेषता इसी से स्पष्ट हो जाती है कि उसकी अनुपस्थिति में मराठा-मण्डल में किसी प्रकार की अशांति नहीं हुई। किसी सरदार

ने बग़ावत नहीं की। किसी ने विद्रोह नहीं किया। सबने अपने आपको मराठा-मण्डल का सेवक समझा। यही भाव था जिसके कारण मराठा लोग थोड़ी संख्या में होते हुए भी औरंगज़ेब का मुकाबिला कर सके। शिवाजी आगरा पहुँचा। आत्माभिमान के साथ दरबार में उपस्थित हुआ। औरंगज़ेब ने उपेक्षा करके उसका अपमान करना चाहा। क्षत्रिय सब कुछ सह सकता है, परन्तु अपमान नहीं सह सकता। आंखें लाल हो गईं, खून खौल उठा। औरंगज़ेब ने जाल में फँसे शेर को पिंजरे में बन्द करके, खुशी मनाई। समय की बात होती है उस समय शिवाजी ने सब कुछ सहा। चुपचाप दरबार से बाहर आया। औरंगजेब ने कड़ा पहरा लगाया। परन्तु हवा को कौन पकड़ सकता है? आग को कपड़े में कौन बन्द कर सकता है? यही हुआ, आग ने अपना रास्ता बना लिया।

बादशाही महलों की एक कोठरी पर कड़ी निगरानी में पहरेदार दम साधे शस्त्र बांधे खड़े हैं। कोई भी सन्तरी निश्चित स्थान से इधर उधर नहीं हिल सकता। इस कड़े पहरे में हवा भी सन्तरियों की इजाजत के बिना नहीं निकल सकती, आदमी का तो कहना ही क्या!

यह सब क्यों? औरंगज़ेब की सालों की इच्छा आज पूरी हुई है। महाराष्ट्र का वीर शिवाजी आज उसके हाथ में आगया है। शायस्ताखां की स्त्री ने पति की ओर से बदला लेने के लिये औरंगज़ेब को इस बात के लिये तैयार किया कि शिवाजी का प्राणान्त करे। शिवाजी अपने पुत्र के साथ कैद में बेबस बैठा है। प्रश्न यह है कि इस कारागार से छुटकारा कैसे हो। कुछ दिनों में शिवाजी ने पहरेदारों को अपने मिलनसार स्वभाव से मोह लिया। शिवाजी की बीमारी की हालत में पहरियों ने हकीम को जेल में आने से नहीं रोका।

दूसरे के हकीमों ने भी इसमें कुछ उज्र नहीं किया। शिवाजी वेष बदलने में बहुत चतुर था। ठीक अनुकूल महूर्त में हिरोजी फर्जन्द को अपने कपड़े पहना कर उसे अपने बिस्तर पर सुलाया और स्वयं पुत्र के साथ निकल गया। यमुना पर पहुंचते ही उन्होंने बैरागी का वेष धारण किया। यमुना के किनारे साधु मंडलियों में मिल-जुल कर शिवाजी निश्चित क्रम के अनुसार महाराष्ट्र में सुरक्षित पहुँच गए। पीछे से हिरोजी फर्जन्द हकीम के वेष में 'दवाई लेने

जाता हूँ' का बहाना कर बाहर निकल गया। पहरेदार दुपहर को शिवाजी के स्थान पर पहुँचे तो क्या देखते हैं कि बिस्तर खाली पड़ा है। उसी समय बादशाह को यह बात मालूम हुई, सुनकर बहुत क्रोध आया। एकदम खोज करने का सख्त हुक्म दिया गया। आदमी दौड़ाये गये, यमुना के साधुओं का पीछा किया गया। परन्तु अब कुछ नहीं हो सकता था। शत्रु हाथ से निकल गया था

कुपित औरङ्गज़ेब

बन्दूक से निकली हुई गोली का फिर से लौटना असम्भव होता है। जिस प्रकार एक बार शिकारी के जाल से निकला हुआ शेर फिर हाथ नहीं आ सकता, उसी प्रकार शत्रु के बंधन से निकले हुए, शत्रु का गोल फोड़ कर बाहर आये हुए शिवाजी का पता पाना मुश्किल ही नहीं, असम्भव था। औरंगजेब देखता ही रह गया। लोहे की जंज़ीरें, पहरेदारों की संगीनें, दिल्ली के गुप्तचर, सब बेकार साबित हुए। बिना रक्तपात किए औरंगजेब जैसे चाणाक्ष की आँखों में धूल झोंक कर निकल आना शिवाजी का ही काम था। युद्ध के मैदान में यद्यपि शिवाजी की सेना कई बार पराजित हुई होगी, परन्तु नीति के दाव-पेच में शिवाजी बाजी जीत ले गया। औरंगज़ेब अपने आपको उस समय का बेजोड़ राजनीतिज्ञ समझता था। शिवाजी ने उसे अनुभव कराया कि महाराष्ट्र के वीरों के जागते हुए किसी की क्या मज़ाल जो आराम की नींद सो सके। औरंगज़ेब ने एकदम जयसिंह को बीजापुर की लड़ाई समाप्त कर आने का हुक्म दिया। रामसिंह का दरबार में प्रवेश बन्द कर दिया गया। उसे यह भ्रम हो गया कि शिवाजी के निकल जाने में जयसिंह का हाथ था। अविश्वासी को और सूझता भी क्या! परमात्मा ने जयसिंह को औरंगज़ेब के कुटिल नीति-चक्र से बचाना था। रास्ते में ही उसका देहान्त हो गया। पापियों के अत्याचारों को सहने की अपेक्षा परमात्मा के कठोर दण्ड का सहना अच्छा है, औरंगज़ेब दाँत पीसता रह गया। शिवाजी और जयसिंह दोनों ही उसके हाथ से निकल गये। मराठा मंडल पर आया हुआ विकट संकट टल गया।

यदि इस समय शिवाजी बादशाही दरबार से सुरक्षित लौट कर न आता तो स्वराज्य स्थापना का कार्य अधूरा ही रह जाता। परमात्मा को यह अभीष्ट

न था। उठती हुई आर्य जाति पर परमात्मा का हाथ था। शिवाजी ने लौट कर नये नियम बनाये। जिन लोगों ने अनुपस्थिति में योग्यता से काम किया था उन्हें इनाम दिये। आश्चर्य की बात है कि इस समय में किसी भी मराठा सरदार ने शत्रुओं के साथ मिलने की कोशिश नहीं की। क्योंकि ये लोग केवल आर्थिक लाभ की दृष्टि से नौकरी नहीं कर रहे थे। उन्होंने एक उच्च-भाव के लिये आत्म-निर्णय तथा स्वराज्य के दिव्य सिद्धान्तों के लिये, अपने जीवनों को शिवाजी की सेवा में समर्पित किया था। सांसारिक प्रलोभन उन्हें इस उच्च आदर्श से गिरा न सके।

किसी भी देश के नवयुवक जब तक सिद्धान्तों के लिये मर-मिटने को तैयार रहते हैं तब तक उनकी गति को बड़ी २ सेनाएँ भी नहीं रोक सकतीं। ये चमत्कारी सिद्धान्त युवकों के जीवन में बिजली संचार कर देते हैं। संसार में भावों का राज्य है। गुरुगोविंदसिंह ने इसी बिजली को युवकों के जीवन में संचारित कर अपने वीरों में यह शक्ति पैदा कर दी थी जिसे बड़े से बड़े बादशाह भी नहीं रोक सके। अहमदशाह दुर्रानी जैसे क्रांतिकारी आक्रांता देखते रह गये। आज भारत में भी आत्म-समर्पण करने वाले देशभक्तों ने नवयुवकों में वैसी ही बिजली का संचार किया है। लोग अब निर्भय होगये हैं। हँसते २ सिद्धान्तों के लिये मर मिटने वालों की संख्या बढ़ रही है। महाराष्ट्र में जब तक मराठा वीरों ने सांसारिक महत्वाकांक्षाओं को दूर रख कर स्वराज्य और स्वराष्ट्र की सेवा करना अपना कर्तव्य समझा, तब तक देश में किसी प्रकार की अशांति और पारस्परिक ईर्षा पैदा नहीं हुई। जब तक राष्ट्र-भक्ति की लगन युवकों के दिल में जाग्रत रही तब तक किसी ने ऊंचे ओहदों या बड़ी २ जागीरों की फ़िकर नहीं की। शिवाजी की आत्मा सब पर अदृश्य असर डाल रही थी। आज भी यदि हम देश को आन्तरिक कलहों से बचा कर स्वराज्य और शान्ति स्थापना की ओर ले जाना चाहते हैं तो हमें चाहिये कि लोगों के दिलों को देश-भक्ति के भावों से भरपूर कर दें। सच्ची लगन वाले देश-भक्तों को इतनी फ़ुरसत ही नहीं मिलेगी कि वे स्वार्थमय पारस्परिक कलहों में अपना समय लगा सकें। औरंगज़ेब ने यशवन्तसिंह को भेज कर दक्षिण के झगड़े को निपटाया। निम्नलिखित शर्तें निश्चित हुईं।

(१) औरंगज़ेब ने शिवाजी को स्वतन्त्र राजा स्वीकार किया।

(२) शिवाजी को औरंगाबाद में नई जागीर मिली। पुरंदर का क़िला लौटा दिया गया। सम्भाजी दिल्ली दरबार में मनसबदार निश्चित हुआ। इसके बाद कुछ समय तक बीजापुर दरबार के साथ छोटी मोटी लड़ाई होती रही। आख़िर उन्होंने भी १६६८ ई० में शिवाजी से सन्धि की। बीजापुर तथा गोलकुंडा के दरबारों ने शिवाजी को ५ लाख रुपया देना स्वीकृत किया। इस प्रकार शत्रुओं से अपनी बात मनवा कर १६६९ ई० में राज्य स्थापना का काम पूरा किया। औरंगज़ेब को जब यह मालूम हुआ तो उसने क्रुद्ध होकर मुअज़्ज़म को फिर से युद्ध करने को लिखा। प्रतापराव गुर्जर मारवाड़ छोड़ कर इधर आ गया। न चाहते हुये भी मुअज़्ज़म और यशवन्त सिंह ने बादशाह की इच्छा को पूरा करने के लिये १६७० ई० में फिर से मराठों के साथ युद्ध घोषित किया। शिवाजी की मुग़ल बादशाह से यह अन्तिम लड़ाई थी। इस अन्तिम लड़ाई पर ही महाराष्ट्र का भाग्य निर्भर था। अन्य मुसलमान शक्तियों ने भी, इस समय १५६४ ई०की तलीकोट की लड़ाई की तरह मिलकर, आर्य-जाति को कुचलने का निश्चय किया। जिस प्रकार मुसलमान रियास्तों ने १६ वीं सदी में विजयनगर की आर्य रियासत पर, चारों ओर से आक्रमण कर उसको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था; उसी प्रकार १६७० ई० में औरंगज़ेब के नेतृत्व में मुसलमानों ने मराठा-मंडल को कुचलने की कोशिश की। शिवाजी इस संकट से बिल्कुल नहीं घबराया। शिवाजी ने भी अपने पिता शाहजी के संकल्पानुसार विजयनगर के पुराने आर्य-साम्राज्य को स्थापित करने का निश्चय किया। वह एक समय में अनेक शत्रुओं से सफलता पूर्वक लड़ने में सिद्धहस्त था। यह अन्तिम युद्ध मराठा-इतिहास में अपूर्व स्थान रखता है। यही युद्ध "गढ़ आया पर सिंह गया" के नाम से प्रसिद्ध है। अनेकों कवियों ने इस वीर-कथा का गान कर अपनी प्रतिभा को पवित्र किया। अनेक उपन्यास-लेखकों ने इस पवित्र कथा के सम्पर्क से अपनी मन्द लेखन-शक्ति में जादू को पैदा किया।

गढ़ आया, पर सिंह गया !!!

औरंगज़ेब ने दक्षिण के सूबेदाररों को फिर से लड़ाई जारी करने का हुक्म दिया। वह अपने जीते जी शिवाजी को अमन चैन से बैठने नहीं दे सकता था। मुग़लों के इस आक्रमण का मुक़ाबिला करने के लिये शिवाजी ने सब सरदारों को बुलाया। पुरंदर की संधि के अनुसार पुरंदर तथा कोंडाणा का क़िला मुग़लों के हाथ चला गया था। रामदास ने अपने शिष्य से यही दक्षिणा माँगी कि कोंडाणा के क़िले पर भगवे झंडे को लहराओ। गुरु-आज्ञा पाते ही शिष्य ने सिर झुकाया। सरदारों ने भी, शिवाजी की हाँ में हाँ मिलाई। निश्चय हुआ कि मुग़लों के मुक़ाबले में शत्रुपक्ष के बढ़े हुए प्रभाव को कम करने के लिये शत्रु पर अपनी शक्ति का दबाव बैठाने, और अपनी धाक जमाने के लिये आवश्यक है कि पुरंदर की सन्धि के कारण हाथ से निकले हुए पुरन्दर और कोंडाणा को हस्तगत किया जाय।

औरङ्गज़ेब की आज्ञा पाते ही मुग़ल सरदारों ने क्षणिक सन्धि की शर्तों की उपेक्षा कर प्रतापराव गुर्जर को औरंगाबाद की जागीर छोड़ने के लिये बाधित किया। और एकदम-अभी जब कि मराठे सावधान हो रहे थे कोंडाणा क़िले पर राजपूतों की सेना के साथ मिलकर मोर्चाबन्दी का उपक्रम किया। औरङ्गज़ेब की आज्ञा टालने का किसी में दम न था—सर पर लटकती तलवार के नीचे आदमी निश्चिन्त सो सकता था, परन्तु क्रुद्ध औरङ्गजेब की आज्ञारूपी तलवार के सामने कोई नहीं खड़ा हो सकता था। जी-जान से सब सरदारों ने बादशाह को प्रसन्न करने के लिये कोंडाणा क़िले में ज़ोर-शोर की तय्यारियां शुरू कर दीं। नई सेनाएं और रसद जमा कर, क़िले को अधिकाधिक दृढ़ किया गया। उदयभानु राजपूत ने क़िले की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया।

औरङ्गजेब जानता था—औरङ्गजेब ही क्या प्रत्येक अत्याचारी भेद-नीति का आश्रय लेकर ही अपनी स्थिति को कायम रखता है। उस समय औरङ्गजेब की भी यही भेद-नीति थी। औरङ्गजेब अपनी प्रजा को, अपने सरदारों को,

अपने मुक़ाबले की शक्तियों को इसी भेद-नीति के सहारे निर्बल करना चाहता था। अपनी सत्ता को सुरक्षित रखने में उसने हिंदू मुसलमान का फ़र्क नहीं किया। स्वेच्छाचारी अत्याचारी शासकों का कोई धर्म नहीं होता। यदि उन्हें वास्तव में किसी धर्म की सच्ची लगन हो तो वे कभी अत्याचार ही न करें; और उनके नीचे रहने में किसी को उज़र भी न हो। औरङ्गजेब का उद्देश्य केवल हिन्दुओं को ही दबाना नहीं था, उसका उद्देश्य प्रतिद्वन्दी उठती शक्तियों को, चाहे वे मुसलमान हों या हिन्दू—कुचलना था। बीजापुर निज़ामशाही और कुतुबशाही के मुसलमान बादशाहों को हैरान करने में, उन्हें परस्पर लड़ाने और दबाने में, औरंगजेब ने कमी तो क्या करनी थी, उनको दमन करने के लिए शिवाजी तक से भी सहायतालेने में संकोच नहीं किया था। इतना ही क्यों! मीरजुमला और अकबर की नीति को मानने वाले मुसलमानों को भी जीता नहीं छोड़ा। इसी भाँति राजपूत और मराठों को परस्पर लड़ाने में औरंग-जेब सदा तैयार रहता था। इसीलिये मराठों के मुक़ाबले में कोंडाणा के किले पर उदयभानु राजपूत को नियुक्त किया गया। आज हमें बताया जा रहा है कि औरंगजेब के समय से हिन्दू मुसलमान झगड़ते आ रहे हैं। औरंगजेब ने हिन्दुओं को ही लूटा, उन्हें ही तंग किया। किन्तु इतिहास की यह सम्मति नहीं है। इतिहास बताता है कि स्वेच्छाचारी महत्वाकांक्षी औरंगजेब ने राज-नीति के क्षेत्र में हिंदू या मुसलमान सब को एक दृष्टि से, अपनी शक्ति की रक्षा के लिए परस्पर लड़ाने में कभी कमी नहीं की। विदेशी शासक अंगरेज भी औरङ्गजेब की तरह मुकाबले की शक्तियों को परस्पर लड़ाकर साधारण जनता में फूट के बीज बोकर, अपनी शक्ति को स्थिर करने की फ़िकर में रहते थे। अंग्रेजी शिक्षणालयों में 'इतिहास' की कथाओं में यही पढ़ाया जाता था कि हिन्दु-मुसलमान कभी एक नहीं हुए, देशी नरेश परस्पर मिल नहीं सकते, मिलना भी हो तो वायसराय या रेज़िडेन्ट के निरीक्षण में। अत्याचारियों के ढंग ऐसे ही होते हैं औरङ्गजेब ने जिन उपायों का अवलम्बन किया था उन्हीं का अंग्रेज "कृपालु" शासक उसी (भेदनीति) नीति का अवलम्बन करते रहे। आज भारतीय जनता अपने हित को समझ रही है। पार-स्परिक एकता के महत्व को समझ रही है। समझ कर जाग उठी है। परन्तु

अफ़सोस ! मुकुटधारी राजा आज भी अपने असली रूप को नहीं समझ सके। जिस प्रकार मुग़ल शासन-काल में राजा के पवित्र नाम को कलंकित करने वाले नामधारी राजपूत राजाओं ने उस समय के अत्याचारियों, स्वेच्छाचारी प्रजा के अधिकारियों की उपेक्षा करने वालों के साथ हाथ बटाकर कलंक का टीका अपने माथे पर लगाया था, उसी प्रकार अंग्रेजों के शासनकाल में देशी नरेश शानदार गुलामों के रूप में भारत-माता को कलंकित करने का यत्न करते रहे। शिवाजी ने अक़लमन्दी से इन शक्तियों को अपनाने की कोशिश की थी। कुछ सफलता भी प्राप्त हुई थी। रास्ते में अटकने वालों को उखाड़ने में भी संकोच नहीं किया था। उसी प्रकार आज के भारतीय स्वतन्त्र राष्ट्र के कर्णधारों को चाहिये कि यथा सम्भव नरेशों को अपनाने की कोशिश करें। देशी रियासतों की प्रजाओं को प्रेरित करना चाहिए कि वे आन्दोलन करके अपने अधिकारों को प्राप्त करें। यह भी ख्याल रखना चाहिये कि भयंकर कंटक को उखाड़ फेंकने में संकोच भी नहीं करना चाहिए। अस्तु।

शिवाजी ने अवस्थाएं देखकर निश्चय किया कि क़िले का रक्षक कोई भी हो, अब तो कोंडाणा को सर किये बिना दम नहीं लेना। अब प्रश्न था कि इसके लिये कौन सरदार आगे बढ़े। कोंडाणा क़िले की भयंकर स्थिति को देखते हुए किसी सरदार ने आगे बढ़ने का साहस न किया। शिवाजी की माँग का कोई उत्तर न मिला। इस संदिग्ध विकट विजय-यात्रा के लिये किसी सरदार को उठता न देख कर महाराष्ट्र-मंडल की आराध्यदेवी जीजाबाई ने कहा, अच्छा ! यदि कोई वीर मैदान में नहीं निकलता तो कोई बात नहीं, मेरा पुत्र मेरी बात को नहीं टाल सकता।

जीजाबाई ने पत्रवाहक के हाथ तानाजी मालसरे के पास चिट्ठी भेजी। चिट्ठी क्या थी, भवानी देवी ने अपने भक्त के प्राणों की दक्षिणा माँगी थी। साधारण अवस्थाओं में भक्त लोग देवता को प्रसन्न करने में सफल हो जाते हैं। परन्तु आज ताना जी के सामने विकट परीक्षा का समय था। एक ओर माघ वदी ६ को जीजाबाई के सामने पहुँचना था, दूसरी ओर उसी दिन तानाजी के लड़के रायबा का विवाह होना था। घर में विवाह-समारोह की तयारियाँ थीं। मातायें, परिवार की स्त्रियें मंगल-गीत गा रही थीं—बंदनवार

सजा रही थीं। कोई छोटा विवाह नहीं था। शिवाजी महाराज के बालसखा सरदारों के सिरमौर तानाजी के लड़के का विवाह था। एक ओर पुत्र-मोह था; दूसरी ओर माता भवानी की माँग। साधारण लोग ऐसे समयों में घबरा कर विचार सागर में डूबने लगते हैं। परन्तु वीर लोग संकोच करना या फ़िकर करना जानते ही नहीं। जो भावना दिल में आई उसे एकदम कार्यरूप में परिणत कर देते हैं। इन लोगों के दिलों में पहेलियों की सूझ एकदम स्वयं फुरती है।

तानाजी ने देर नहीं लगाई। राष्ट्र के कार्य के सामने वैयक्तिक काम को तुच्छ समझ कर अपने पुत्र को शिवाजी की रक्षा में सौंप कर स्वयं रायगढ़ की ओर प्रस्थान किया। बड़ों का आशीर्वाद लेकर तानाजी मालसरे अपने छोटे भाई सूर्याजी के साथ १००० निर्भय मावले सरदारों को लेकर माघ वदी ६ को रायगढ़ से निकल पड़ा। तानाजी मालसरे की टुकड़ी संख्या में थोड़ी थी। परन्तु उनमें एक एक सरदार शत्रुओं के २०० सरदारों का मुक़ाबला करने का संकल्प करके मैदान में उतरा था। कोंडाणा के इस बड़े क़िले को इस छोटी सी सेना के सहारे सर करना मुश्कल ही नहीं, अपितु असम्भव था। परन्तु वीर पुरुषों के शब्दकोष में असम्भव शब्द ही नहीं। वे तो यह समझते हैं कि जब तक उनके हाथ में तलवार है तब तक उनके लिये दुनिया में कोई बात असम्भव नहीं है।

किलों को सर करना तो क्या, वे अपनी तलवार के भरोसे आकाश में भी लड़ाई लड़ने को तैयार रहते हैं। बड़े २ समुद्र उनकी गति को नहीं रोक सकते। तानाजी मालसरे ने अपनी सेना को दो भागों में विभक्त किया। ५०० सेनानियों को अपने भाई सूर्याजी के साथ छोड़कर स्वयं गुप्त मार्ग से क़िले की तलहटी में पहुंचा। किसी न किसी प्रकार किले में प्रवेश करना था। एक मावला सरदार घोरपड़ी (पालतू गोह) की सहायता से किले की दीवार पर चढ़ गया। किलेदार बेसुध सो रहे थे; उन्हें स्वप्न में भी ख्याल न था कि मराठे रात को किले में आ पहुंचेंगे। वीर मावले ने रस्सी की सहायता से ३०० मराठों को किले की दीवार पर चढ़ा लिया। तानाजी मालसरे भी क़िले में पहुँच गया। राजपूत हैरान हो शस्त्र सम्भाल कर लड़ने लगे। दोनों में घमासान युद्ध हुआ।

: १४ :

शिवाजी का अभिषेक

१६७४ ई० के वर्षाकाल का प्रारम्भ है। विजयी महत्वाकांक्षी सेनापति आगामी युद्धों के लिये अपनी सेनाओं को तय्यार करने के लिये, सरदी और गरमी की प्रचण्ड विजय यात्राओं से थके हुए सैनिकों को आराम देने के लिये—वर्षाकाल की चारों ओर छाई हुई प्राकृतिक शोभा को देखकर प्रसन्न हो रहे हैं। युद्धों में पराजित वीर सचिन्त हैं। प्राकृतिक शोभा उनके लिये कष्टदायिनी हो रही है। वर्षा के जलकण उनको विषकण प्रतीत हो रहे हैं। बिजली की चमक-दमक को देखकर पराजित सैनिकों को विजेता शत्रु की तेज़ तलवार दिखाई देती है। बादलों की गर्जना सुनकर विपक्षी के तोपखाने उसे चिंतित करने लगते हैं। उमड़ते हुए नदी-प्रवाह उसके सामने अलंघनीय समुद्र बन रहे हैं। वर्षा ऋतु में वनदेवी ने अनूठा शृङ्गार सजाया है। कुंज और उपवनों की शोभा, पर्वत-मालाओं के पेचीदे चक्करदार मार्गों पर हरी चादर बिछा रही है। पराजित शत्रु इन कुंज और उपवनों को शत्रु के गुप्त स्थान समझ चिन्तित हो रहा है।

आज बीजापुर के आराम पसन्द दरबारियों के मनों की यही दशा है। शिवाजी की घुड़सवार सेना की टापों और मुग़लई सेना के प्रचण्ड तोपखानों की गड़गड़ाहट से कम्पित बीजापुर दरबार को, पावस की शोभा के रमणीय दृश्य चिन्तित कर रहे हैं। चारों ओर उन्हें चिन्ता पराजय और भय के भूत दिखाई दे रहे हैं।

× × ×

परन्तु आइये ज़रा रायगढ़ की चहल-पहल देखें। वहां निराली ही शोभा छिटक रही है। बड़े बड़े शास्त्री, ब्राह्मण, राजदूत, वकील अपने अपने शानदार पहरावों में उत्सुकता और आशाभरी नजरों के साथ आगे बढ़े जा रहे हैं। पहाड़ी लोग निश्चिन्त होकर, घाटियों के कुञ्जों में आंखमिचौनी की खेल खेल कर आनन्द और मस्ती के गीत गा रहे हैं। रात दिन आठों पहर घोड़ों की ंगी पीठ पर सवार रहने वाले मावलिये भी आज आनन्द मना रहे हैं।

ओह !!! यह आनन्द की तैयारियां कैसी ! आइये जरा देखें शिव के गणों की विजय-दुन्दुभि कहाँ बज रही है। काशी के प्रसिद्ध पण्डित गागाभट्ट अपनी शिष्य-मण्डली के साथ रायगढ़ पहुँच गये। उत्तर और दक्षिण सब ओर गागाभट्ट की विद्वत्ता की धाक जमी हुई है। विजय नगर के प्रसिद्ध पं० विद्या-रण्य ने आर्य-साहित्य का पुनरुज्जीवन कर आर्य-धम में क्षात्र तेज़ का संचार किया था। आज भी गागाभट्ट ने चिरकाल से मन्द तेज, प्रभाहीन क्षात्र तेज को दक्षिण में फिर चमकाने के लिये अभिषेक यज्ञ द्वारा तीर्थ जलों के सिंचन से शिवाजी को स्नान कराने का शुभ संकल्प किया है। एक ओर प्रकृति देवी वीर पुत्र का अभिषेक कर रही है, दूसरी ओर रायगढ़ के ऊँचे मंच पर ब्रह्म-तेज के प्रतिनिधि गागाभट्ट तीर्थोदकों तथा पवित्र चरुओं से शिवाजी को स्नान कराने के लिये दीक्षित हुए हैं। आर्य राजा का अभिषेक आर्य अनुमोदित पद्धति के अनुसार ही होना चाहिये। गागाभट्ट ने प्राचीन साहित्य का पठन कर अभिषेक पद्धति का निर्माण किया। यह राज्याभिषेकोत्सव किसी महत्वाकाँक्षी की इच्छा को पूरा करने के लिये नहीं सजाया गया था—अपितु इस राज्या-भिषेक द्वारा आर्य-जाति के क्षात्र तेज को प्रकाशित करना अभीष्ट था। शिवाजी तो निमित्त मात्र था। उस समय के रामदास आदि धार्मिक गुरुओं ने शिवाजी को इस शुभ कार्य के लिये योग्य उत्तम साधन समझा था। यद्यपि प्रत्यक्षतः शिवाजी का किसी पुराने राजघराने से सम्बन्ध न था—नाहीं उसका व्रत-बंध-संस्कार हुआ था—परन्तु ये बाहर की बाधायें उसके रास्ते में बाधक नहीं हुईं। गागाभट्ट कर्म सिद्धान्त को मानने वाले थे। शिवाजी ने सच्चे क्षत्रिय धर्म का पालन किया था। अतः आवश्यक व्रतबन्ध आदि कराकर उन्हें अभिषिक्त राजा बनाने में संकोच नहीं किया गया। इस युगमें भी हम देखते हैं कि बड़े बड़े ब्राह्मण ब्रह्मतेज के ज्वलन्त स्वरूप महात्मा गांधी के सामने सिर झुकाने में अहोभाग्य समझते थे। क्रान्तिकारी पुरुषों की यही विशेषता होती है। जन्म तथा लौकिक बाधाएं इनकी गति तथा तेजी को नहीं रोक सकतीं। कृष्ण भग-वान् के सामने द्रोण जैसे ब्राह्मण भी सिर झुकाते थे। नेपोलियन यद्यपि राज-घराने का नहीं था परन्तु उसके तेजस्वी चेहरे के सामने मुकुटधारी युरोपीय राजाओं ने अपने सिर नवाये। शक्तिशाली तेजस्वी व्यक्ति ही, राजा है। अंग्रेजी

किया। इस संस्कार को राष्ट्रीय रूप देने के लिये राज्याभिषेक शक का ही प्रारंभ किया गया।

शिवाजी ने "क्षत्रियकुलावतंस शिवछत्रपति महाराज सिंहासनाधीश्वर" का पद धारण किया।

३—रायगढ़ किले को राजधानी बनाया।

४—राज्य के सब विभागों का स्थिर प्रबन्ध किया।

इस अभिषेक समारोहके समय अनेक विदेशी दूतोंने उपस्थित होकर स्वतन्त्र रूप से सन्धियां कीं। महाराष्ट्र के पुराने राजघरानों ने शिवाजी की श्रेष्ठता को माना। यह अभिषेक-संस्कार इस बात का साक्षी था कि शिवाजी ने जो विजय यात्रायें की हैं वे स्वार्थ के लिये नहीं कीं, अपितु राष्ट्र के लिये ही की थीं। इस महाभिषेकोत्सव की साज सजावट को देखकर साधारण जनता भी शिवाजी को अपना रक्षक और त्राता समझने लगी। दिल्ली और बीजापुर के बादशाहों को भी इसकी स्वतन्त्रता स्वीकार करनी पड़ी। इस प्रकार चारों ओर अपनी स्वतन्त्र सत्ता का प्रभाव जमा कर शिवाजी ने इस नव राष्ट्र को स्थिर पाओं पर खड़ा करने के लिये नये उपायों की योजना की। शिवाजी की ही दूरदर्शिता का परिणाम था कि भविष्य में मराठा-मंडल पर भयंकर संकट आने पर भी शत्रु उसे छिन्न भिन्न नहीं कर सके। अभिषेक-संस्कार की विशेषता इस बात में है कि शिवाजी ने राज्यपदों को पैतृक नहीं बनाया। योग्य व्यक्ति ही योग्य व्यक्ति को पहचान सकता है। वह योग्य व्यक्ति चाहे कोई हो। शिवाजी ने अपने जीवन काल में जन्म-जनित योग्यता की अपेक्षा, कर्म-जनित योग्यता को ही महत्व दिया था। यही कारण था कि योग्य व्यक्ति बिना बुलाए अपने परखैया की ओर खिंचे आते थे।

रामदास का शुभ संकल्प पूरा हुआ। शिवाजी ने विजय में प्राप्त किए धन को दान दक्षिणा और प्रजा-रक्षण में लगाकर स्वयं त्यागमय जीवन व्यतीत किया है। किसी कवि ने ऐसे आदर्श राजाओं के विषय में ठीक ही कहा है—'आदानं हि विसर्गाय महतां वारिमुचामिव।' (रघुवंश)

प्रतापशाली लोग जो कुछ संचय करते हैं, वह दूसरों को देने के लिए ही, अपने लिये नहीं। सूर्य जलपान करता है, परन्तु मेघों द्वारा वह उसे दूसरे को

दे देता है। ब्राह्मण ज्ञानार्जन करता है दूसरों को देने के लिये। सच्चा क्षत्रिय विजय-लक्ष्मी को प्राप्त करेगा, दूसरों के लिये। सच्चा वैश्य दान देने के लिए ही कमाता है। बड़े पुरुषों की यही विशेषता है—जिनमें यह निष्काम परोपकार भाव समाए हुए हैं, वही महात्मा हैं, योगी हैं। सब का द्रष्टा परमात्मा भी बिना किसी कामना के संसार को शीतल जल तथा पवित्र पवन से अनुकम्पित कर रहा है। हमारे नायक ने भी अपने आपको दूसरों के लिये न्योंछावर कर दिया। ऐसे अलौकिक पुरुष के सामने किसका सिर नहीं झुकेगा। ऐसे पुरुष रत्न को जन्म देने वाली जीजाबाई धन्य है। दोनों को नमस्कार हो। आज के दिन बड़े २ दिक्पाल क्षत्रिय महाराजे कृपा-कटाक्ष की प्रतीक्षा में सिंहासनासीन शिव के सामने सिर झुका रहे हैं—परन्तु यह देखिए—वह शिव भी नतमस्तक हो किसी की ओर टकटकी लगाए देख रहा है—यह शिव-वन्दित, शिव पूजित जीजाबाई मूर्तिमती भारत माता भी सच्चे पुत्र के नमस्कार को गद्‌गद्‌ हो स्वीकार कर रही है। आइए; हम भी दुःखित भारतमाता को प्रसन्न करने के लिये वीर शिवाजी के पग-चिह्नों पर चलें। बोलो शिवाजी महाराज की जय! जीजाबाई की जय!! भारतमाता की जय!!!

संविधान

बड़े २ युद्धों में शत्रुओं को रोमांचकारी दिग्‌-यात्राओं द्वारा पराजित करके नए-साम्राज्य खड़े करना करना कोई नई बात नहीं। सिकन्दर नैपोलियन, मुहम्मदगौरी और तैमूरलंग की विजय यात्राएं इतिहास में अपनी प्रचण्डता और तीव्रता के लिये प्रसिद्ध हैं। दूसरी ओर चाणक्य और डूप्ले जैसे नीतिकुशल भी इतिहास में अपूर्व स्थान रखते हैं। इन वीरों ने तलवार को हिलाए बिना संधि समितियों में लेखनी की नोक से साम्राज्यों को पलट दिया। परन्तु इन वीरों में इतना साहस या पराक्रम न था कि युद्ध के मैदान में रणचंडी की पूजा कर सकें। इनके कारनामे मनोरञ्जक ऐतिहासिक उपन्यासों तथा नाटकों के संविधान बन चुके हैं। तीसरी तरह के व्यक्ति हमें दिखाई देते हैं जिन्होंने न तो रण में कभी पराक्रम दिखाया, नहीं सन्धि चक्रों में अपनी तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय दिया। परन्तु इन दिमागों ने युद्ध समाप्ति के बाद विजित प्रदेशों का शासन किस ढंग से हो, किस मशीनरी का प्रयोग किया जाय—इस योजना

को बनाने में ही अपनी योग्यता प्रकट की है। आज कल के सभ्य देशों में अग्रगण्य अमेरिका की राज व्यवस्था बनाने वाले दिमाग इसी ढंग के थे।

शिवाजी की तलवार और लेखनी के कारनामे प्रतापगढ़ की लड़ाइयों और पुरन्दर की संधियों में देख चुके हैं। बीजापुर और दिल्ली दरबार ने कई बार कोशिशें कीं कि शिवाजी को किसी भी तरह नीचा दिखायें, शत्रुराज्यों के सेनापति और राजदूत शिवाजी के सेनापतियों और राजदूतों को नहीं हरा सके। इन सब विजयों का श्रेय शिवाजी तथा उसकी मित्र मंडली को है। शिवाजी के सामने अभी एक प्रबल शत्रु और था। यह शत्रु था आत्माभिमान। सिकन्दर जैसे विजेता, नैपोलियन जैसे रणधीर, इस आत्माभिमान और महत्वाकांक्षा-रूपी शत्रु को न जीत सके। साम्राज्य स्थापित किए, सेनाओं का संगठन किया, परन्तु ऐसे किसी उपाय का अवलम्बन नहीं किया जिससे आत्माभिमान और महत्वाकांक्षा का दमन हो सके। शिवाजी नीचे से ऊपर उठा था। गद्दी पर बैठकर भी उसने रामदास के चरणों में सिर झुकाया था। इसलिये शिवाजी इस महत्वाकांक्षारूपिणी राक्षसी का दमन करने में सफल हो सका। इस उद्योग में शिवाजी ने जिस मन्त्र का प्रयोग किया उसका नाम अष्ट-प्रधान मंडल है। मराठा-इतिहास में अष्ट प्रधान नाम की संस्था का वही महत्व है जो इस समय अमेरिका के मन्त्रिमण्डल का है। भारत के उत्तर कालीन इतिहास में यह संस्था अपने ढङ्ग की एक है। कौटिल्य अर्थशास्त्र शुक्रनीति, कामन्दकी नीति वाक्यामृत आदि ग्रन्थों में जिन संविधानों का वर्णन मिलता है, उनका जीवित जाग्रत चित्र मराठा इतिहास के अष्ट प्रधान मण्डल में दिखाई देता है।*

राज्य को स्थिर बनाने के लिए आवश्यक है कि सेना निरीक्षण तथा प्रजा-पालन के काम के लिए देश के योग्य २ व्यक्तियों को एकत्रित किया जाय। उनके निरीक्षण में काम किया जाय। शिवाजी ने यही किया। माता जीजाबाई और कोंडदेव से महाभारत में जो बातें सुनी थीं, उन्हें ही कार्य रूप

---

* कोई भी आदमी अकेला अपने सब कामों को नहीं करता, उसे अन्यों की सहायता की आवश्यकता होती है। फिर राज्य जैसे बड़े काम के विषय में तो कहना ही क्या। भारतीय राजनीति शास्त्र में इसी सिद्धान्त के आधार पर राजाओं के मन्त्रिमंडल का निर्माण किया जाता है।

में परिणत किया। मराठा-मंडल को स्थिर नींव पर खड़ा करने के लिए शिवाजी ने अष्ट-प्रधान मंडल का निर्माण किया। इस प्रकरण में हम इस बात का दिग्दर्शन कराएँगे कि शिवाजी ने स्वराज्य संरक्षण करने के लिए क्या प्रबन्ध किया था।

इस प्रबन्ध के तीन मुख्य भाग हैं:—

प्रथम—शासन संचालन
द्वितीय—फौजदारी प्रबन्ध
तृतीय—दिवानी प्रबंध

शासन-संचालन—स्वराज्य में पर राष्ट्रों के कारण होने वाली आपत्तियों पर साधारण निरीक्षण करने के लिये अष्ट-प्रधान मण्डल बनाया गया। यह संस्था एकदम राज्याभिषेकोत्सव के समय नहीं बनी। क्रमशः आवश्यकतानुसार इसका विकास हुआ। जब तक शिवाजी की जागीर के मुख्य प्रबन्धकर्ता कोंडदेव थे तब तक इस अष्ट-प्रधान मण्डल में ४ ही व्यक्ति थे। १६४७ ई० में जब शिवाजी ने सारा काम अपने हाथों में ले लिया तब सेनापति का नया पद बढ़ाया गया। कोंडदेव के समय तक इस पद की आवश्यकता न थी। शिवाजी ने इधर उधर आक्रमण करने शुरू किए अतः सेनापति की आवश्यकता हुई। १६६७ ई० में न्याय-विभाग का मन्त्री नियुक्त किया गया इस समय स्वाधीन प्रदेशों में लोगों के पारस्परिक झगड़ों को निपटाने के लिए इसकी आवश्यकता थी।

१६७४ ई० में राज्याभिषेक के समय मन्त्रियों की संख्या ८ हो गई। इसी समय इन मन्त्रियों के नाम—जो उस समय दफ़्तरों में फ़ारसी भाषा में प्रयुक्त किये जाते थे, पंडितों के परामर्श से संस्कृत भाषा में कर दिए गए। शिवाजी के समय अष्ट-प्रधान का संगठन इस प्रकार से था:—

१. पेशवा प्रधान मन्त्री। मोरोपन्त शिवाजी का दायां हाथ था। दान-पत्रों पर मुहर आदि यही लगाता था। जब शिवाजी देहली गया था तब मोरोपन्त ने ही सारा काम, सेना-संचालन तथा राज्यसंचालनादि का किया था।

२. मजुमदारपंत अमात्यः—राज्य का जमा खर्च का सारा लेखा इसके

निरीक्षण में होता था। इस पद पर पहले बालकृष्ण पन्त था। १६४७ई० से निलो सोनदेव को यह काम दिया।

३. सुरनीस अथवा सचिवः—सरकारी दफ़्तर का निरीक्षण, लेखा ठीक रखना छाप तथा दस्तखत आदि का प्रबन्ध।

४. चौथा प्रधान मन्त्री—इसका काम सरकारी कारखानों, राजा के महल में तथा राजा के अभ्यागत आदि के लिए ठीक भोजनादि का प्रबन्ध करना था। १६४७ ई० में मंगूमल जी इस पद पर था। १६६४ ई० में दत्ताजी त्रिमल को यह पद दिया।

५. सेनापति व सरनोवतः—पैदल सेना और अश्वारोहियों की सेना के ऊपर सरनोवत व सेनापति नाम के अधिकारी थे। इनमें से अश्वारोहियों के सेनापति को ही मुख्य सेनापति के काम पर नियुक्त किया जाता था। शिवाजी के जीवनकाल में इस पद पर क्रमशः चार चार व्यक्ति नियुक्त किये गए। १६४१ ई० में सेनापति नियत किया। ५, ६ साल में उसका देहान्त होने पर नेताजी पालकर को सेनापति बनाया। १६६२ ई० में नेताजी पालकर को राजगढ़ भेजकर प्रतापराव गुर्जर को इस पद पर नियुक्त किया। १६७२ ई० में बीजापुर वालों के साथ लड़ाई में प्रतापराव गुर्जर मारा गया। इसके बाद वीरराव मोहिते को इस पद पर नियुक्त किया।

६. उर्वीर-सुमन्त-परराष्ट्र सचिव। १६४१ ई० तक सोनोपन्त इस पद पर रहा। इसके मरने पर सोमनाथ पन्त और उसके पुत्र रावजी सोमनाथ के पास यह पद रहा। परन्तु राज्याभिषेक के समय जनार्दन नारायणदत्त मन्त्री को सुमन्त बनाया गया।

७. न्यायाधीश—न्यायाधीश मुहर द्वारा पत्रों को अंकित करता था। प्रथम निराजी इस पद पर रहा। अभिषेक के समय बालरजी पंडित को इस पद पर स्थिर किया।

८. पंडित राव इसे पहले न्याय शास्त्री कहते थे। इसका काम देवस्थान, तीर्थस्थान तथा दान धर्म आदि का निरीक्षण करना था। राज्याभिषेक के समय से इसका नाम पंडितराव हो गया। १६६१ ई० से रघुनाथ पन्त कोरडेकर को दानाध्यक्ष बनाया। राज्याभिषेक के समय इसी को पण्डितराव

का पद दिया। इसी रघुनाथ पंत की सहायता से मराठा दरबार में फारसी भाषा का बहिष्कार कर, संस्कृत भाषा का काम चालू किया गया। राजव्यवहार-कोष का निर्माण भी इसी पण्डित ने किया। इसी के पुत्र ईश्वर ने संभाजी के समय इस पद पर रहकर कई सुधार किये।

इन आठ मंत्रियों की सहायता से सारे मराठा-मंडल का शासन होता था। ये मन्त्री शिवाजी के निरीक्षण में अपने २ विभागों का काम करते थे। शिवाजी ने यह पद्धति कहां से ली? कइयों का कहना है कि यह दिल्ली-दरबार की नकल है, कइयों का कहना है कि महाभारत के आधार पर बनाई गई थी।

ऊपर हमने जिस ऐतिहासिक विकास का उल्लेख किया है उससे पता लगता है कि सचाई बीच में है। समय की आवश्यकता के अनुसार शिवाजी अपने सहायकों को बढ़ाता गया। शुरू २ में उनके नाम वहीं थे जो दिल्ली दरबार में प्रचलित थे। परन्तु राज्याभिषेक के समय सब नामों को शास्त्रोक्त कर दिया गया। यह ठीक है कि यह प्रधान मंडल आजकल के प्रजासत्तावाद के सिद्धान्त के अनुसार प्रजा का प्रतिनिधि नहीं था। परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि वह मंडल किसी श्रेणी विशेष का जायदादी हक न था। शिवाजी का मुख्य उद्देश्य प्रजा रक्षण था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने इस का संगठन किया था। जिन लोगों ने युद्धों में, आपत्तियों में भी शिवाजी का साथ नहीं छोड़ा था, जिनके विषय में शिवाजी को विश्वास था कि ये लोग रामदास के पूरे शिष्य हैं और महाराष्ट्र धर्म पर सब कुछ भेंट देने को तैयार हैं; उन्हें ही इन पदों पर नियुक्त किया जाता था। महाराष्ट्र मंडल पर कई बार संकट आए। उन संकटों में इस प्रधान मंडल ने ही महाराष्ट्र देश में शान्ति कायम रक्खी।

शिवाजी जब आगरा दिल्ली गया था तब इसी मंडल ने राज्यकार्य चलाया था। इसी प्रकार अगले इतिहास में छत्रपतियों के कैद हो जाने पर या उनकी अबोध दशा में—इस मराठा-मंडल ने ही—देश को शत्रुओं से बचाया था। अष्टप्रधान मंडल का इतिहास बताता है कि यह मंडल अपने समय में मराठा-मंडल की रक्षा का मुख्य साधन था। इस प्रकार शासन संचालन के लिये उपरिलिखित राजसंस्था का संगठन कर शिवाजी ने स्वराष्ट्र संरक्षण के लिये

सेना संगठन का जो कार्य किया है उस का संक्षिप्त परिचय भी दिया जाता है।

देश में सुशासन प्रचलित करने के लिये अपने राष्ट्र को दो भागों में बाँटा हुआ था। एक का नाम स्वराज्य और दूसरे का मुग़लाई। शासन की इकाई किले थी। आज कल जिस प्रकार भारतीय शासन की इकाई जिले हैं; उसी प्रकार उस समय सारे स्वराज्य-राष्ट्र को किलों में बाँटा हुआ था। ये किले तीन प्रकार के होते थे।

१ जलदुर्ग—समुद्रतट या समुद्र के बीच में, इन्हें जज़ीरा कहते थे। २. पहाड़ी किलों को गढ़ और ३. समतल भूमि के किलों को भूमिकोट या कोट कहते थे। रायगढ़ प्रतापगढ़ और पन्हाला पहाड़ी किले थे। सिंध-दुर्ग सुवर्ण-दुर्ग आदि जल-दुर्ग थे। बीजापुर निलापुर बादागी आदि भूमि कोट थे। शिवाजी के किलों की संख्या ३०० थी। प्रत्येक किले पर हवलदार नाम का अधिकारी रहता था। इसका काम अपने क्षेत्र में शान्ति रखना तथा किले में युद्ध सामग्री आदि का संग्रह करना था। इन किलों द्वारा अन्तरीय शासन होता था। इन्हीं किलों को केन्द्र या आधार मानकर जल सेना और स्थल सेना द्वारा विदेशी शत्रुओं का मुकाबला किया जाता था। स्थल सेना के दो विभाग थे पैदल सेना और घुड़सवार सेना।

प्रारम्भ में शिवाजी का सैन्य-दल १२०० था। अन्त में यह ६०००० तक पहुँच गया था। ३० हज़ार सेना स्थिर सेना के रूप में थी परन्तु अस्थिर सेना भी आवश्यकता होने पर युद्धों में आजाती थी; शेष समय निजू कामों पर रहती थी। शिवाजी ने धीरे २ अपना जहाज़ी बेड़ा तय्यार करने के लिए सिंधु-दुर्ग आदि स्थान अपने अधीन करके वहां अपनी जलसेना का मुख्य अड्डा बनाया था। १६७५ ई० में विजय दुर्ग बनाया। पोर्तगीज़ लोगों ने अनेक बार शिवाजी के पास अपने दूत भेज कर पश्चिमी किनारे पर व्यापार करने की आज्ञा माँगी, १६६५ ई० में शिवाजी ने पश्चिमी किनारे पर दौरा लगा कर अंग्रेज़ों को दण्ड देकर उनकी कोठी बन्द की। १६७० ई० में शिवाजी की जल सेना में १६० जहाज़ थे। पोर्तगीज़ों से शिवाजी का मुकाबिला था। शिवाजी ने उनका दमन करने के लिए अपनी सेना को बढ़ाया। लड़ाकू जहाज़ों की संख्या ६० थी, इस विभाग में ५ हज़ार आदमी थे। दर्यासागर

इब्राहीम खान, भयानक भंडारी आदि शिवाजी की जलसेना के मुख्य कार्य-कर्ता थे। इसी समय कान्होजी आँगरे शिवाजी की जलसेना में नौकरी करता था। यह सरदार अगले इतिहास में मराठा जलसेना का मुख्य सेनापति बना।

× × ×

राज्य का संचालन राज्य की आय पर निर्भर होता है। जहां की प्रजा सुखी निश्चिन्त होगी, वहां लोग व्यापार तथा धन्धों द्वारा देश की सम्पत्ति को बढ़ायेंगे। शासकवर्ग भी इसी बढ़ी हुई सम्पत्ति के सहारे राज्य संवर्धन और राज्यरक्षण का काम कर सकता है। शिवाजी ने राष्ट्र की सम्पत्ति को बढ़ाने के लिये दो उपायों का प्रयोग किया।

१. जागीरदारी तथा जमींदारी प्रथा को बन्द कर दिया।

२. राज्य-कर वसूल करने के लिये ठेकेदारों और ज़मींदारों की जगह सरकारी नौकरों को नियुक्त किया। इन कमाविसदार महालकारी और सूबेदारों को नियत तनख्वाह मिलती थी। यह अधिकारी राजा की ओर से प्रजा से कर वसूल करते थे, इन अफसरों को हुक्म था कि ये उपज के $\frac{1}{2}$ से अधिक कर न लें। पहले ठेकेदार राजा के नाम से प्रजा को लूटते थे। शिवाजी ने इस पद्धति को बदल दिया। भविष्य में यह आपत्ति पैदा ही न हो, इस लिये सरकारी नोकरों को सिक्के के रूप में वेतन देने का क्रम चलाया। पहिले राजा सरदारों को जागीरें देते थे। समयान्तर में यही जागीरदार विद्रोही सरदार बन कर उत्पात मचाते थे।

जितने भी साम्राज्य-प्रवर्तक या सुधारक बादशाह हुए हैं—केवल इसी देश के नहीं अन्य देशों के भी—प्रायः सब ने इसी उपाय का प्रयोग किया है। शेरशाह और अकबर ने भी रैयत से सीधा सम्बन्ध रखने के लिये ज़मींदारी पद्धति को तोड़ कर रैयतवारी पद्धति को स्वीकृत किया। शिवाजी ने भी यही किया। प्रजाजनों के पारस्परिक झगड़ों को निपटाने के लिए पंचायतों को पुनः प्रचलित किया। कर वसूल करने वाले अधिकारी यथास्थान इन्हीं पंचायतों की सहायता से लोगों के झगड़ों को निपटाते थे। अष्ट-प्रधान का न्यायाधीश इसी विभाग का निरीक्षक था। अन्य प्रधान मन्त्री (पण्डित-राव को छोड़ कर) युद्धों पर भी जाते थे; परन्तु न्याय-शास्त्री न्याय-सम्बन्धी

मामलों को निपटाने के लिये राजधानी में ही रहता था। इस प्रकार शिवाजी ने प्रजाओं को सस्ता और सीधा न्याय पहुँचाने का प्रबन्ध किया।

शिवाजी के शासन चक्र तथा प्रबन्ध की विशेषता यह है कि यह प्रबन्ध सरल और स्पष्ट है। अनुभवी दिमाग ने देश की रक्षा के लिए जो आवश्यक समझा उसे कायदे कानून में बाँध दिया। इस अष्ट-प्रधान मण्डल को बना कर शिवाजी ने अपने अधिकारों को नियन्त्रित किया।

सारा काम प्रधान मन्त्री करते थे, शिवाजी स्वयं साक्षीमात्र रहते थे। शिवाजी ने स्वयं अपने अधिकार इन मन्त्रियों के हाथ में दे दिए। परिणाम यह था कि किसी भी सरदार ने दीर्घ शासनकाल में शिवाजी के विरुद्ध विद्रोह करने का संकल्प नहीं किया। अन्य विजेताओं को अपने सरदारों से भय रहता है कि कहीं वे उसे गद्दी पर से न उतार दें—परन्तु शिवाजी को यह भय न था। शिवाजी चाहता था उसके सरदार उससे अधिक बलशाली हों, यही भाव था कि जिसने विद्रोह के भावों को पैदा नहीं होने दिया।

शिवाजी का अष्ट-प्रधान मंडल शिवाजी का स्मारक है। प्राचीन काव्यों में वर्णित अष्ट-प्रधान सम्बन्धी संस्थाओं को इस युग में जीवित जागृत करने का श्रेय शिवाजी को है। इस प्रकार जहाँ शिवाजी बड़ा भारी योद्धा, राजनीति-पण्डित था, वहाँ शासनकर्ता की दृष्टि से भी वह किसी से कम न था। शिवाजी के इन सर्वतोमुखी गुणों को देखकर किस का हृदय श्रद्धा और सन्मान के भाव से परिपूर्ण नहीं होता? उस समय की स्वतन्त्र महाराष्ट्र जनता ने राजसिंहासन पर शिवाजी को निमन्त्रित कर राजतिलक की आरती उतारी थी। आज की अशान्त प्रजाएँ यदि और कुछ नहीं कर सकतीं तो आइए—इस आत्मा के गुण कीर्तन से तो अपने आत्मा को पवित्र करें।

—:o:—

: १६ :

बीजापुर का अन्त

शिवाजी को चारों ओर विजयी होता देखकर कुतुबशाही तथा आदिलशाही के मुसलमान बादशाह आत्म-रक्षा की फिकर में परस्पर गुट बनाने की सोचने

लगे। इसी चहल-पहल में १६७२ ई० में बीजापुर का बादशाह अली मर गया। यह बादशाह ऐश-आराम-पसन्द, दिन-रात अन्तःपुर में ही रहता था। इसके दरबार में बड़े २ रसिक कवि थे, जो शृङ्गारमयी कविताओं का निर्माण कर जनता की रुचि को भी उसी प्रकार का बना देते थे। परिणाम यह था कि दरबारी वज़ीर और सरदार मुख्यता प्राप्त करने के लिये एक दूसरे के विरुद्ध दलबन्दियाँ बनाते थे। ये सरदार रियासत के हितों की परवाह न करते थे। अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए दरबार में ऊँचे पदों तक पहुँचने के लिए षड्यन्त्र रचे जाते थे। इस समय दरबार में दो पक्ष थे। एक पक्ष का मुखिया बहलोलखाँ पठान था। दूसरे का मुखिया मसऊदखाँ नाम का सीदी सरदार था। इस घरेलू लड़ाई के कारण शिवाजी की गति को रोकने वाला कोई न रहा। शिवाजी निरन्तर आगे बढ़ता गया। कुतुबशाही के बादशाह कुतुबशाह हसन ने दोनों पक्षों को समझाकर शिवाजी के साथ लड़ाई करने को तैयार किया। कुतुबशाह ने अपने दूत भेज कर दिल्ली के बादशाह औरङ्गजेब की भी सहायता माँगी। जिस प्रकार १५६४ में तालीकोट की लड़ाई में मुसलमानी रिसासतों ने मिलकर विजय नगर की हिन्दू रियासत को तहस-नहस किया था; उसी प्रकार इन मुसलमान सहधर्मियों ने मिलकर उठती हुई विरोधिनी शक्ति का मुकाबला करने का निश्चय किया। इस समय तक के अनुभव ने उन्हें बता दिया था कि यदि वे राजनैतिक स्वार्थों से प्रेरित होकर शिवाजी का मुकाबला करना चाहते हैं तो उन्हें सफलता नहीं हो सकती। लाचार होकर किसी धार्मिक भाव से प्रेरित होकर नहीं; अपितु राजनैतिक स्वार्थों की रक्षा करने के लिए धर्म के नाम पर रियासतों ने गुट बनाया।

दिन रात शराब की बोतलों में लीन बादशाह भी धर्म की फिकर करे, यह आश्चर्य की बात है। आज भी इस देश में तथा संसार के अन्य भागों में, महत्वाकांक्षी लोग स्वार्थों को पूरा करने के लिये अबोध जनता को बहका कर खून खराबियाँ कराते हैं। यूरोप की ११ वीं तथा १२ वीं सदी के धर्मयुद्ध भी राजनैतिक स्वार्थों के कारण पैदा हुए थे। खैर! जब तक इस भूमितल पर स्वार्थ की सत्ता है; लोग धर्म जैसे पवित्र आकर्षक नामों द्वारा रक्तपात कराने से नहीं रुकेंगे। शिवाजी भी सब कुछ समझता था। अभी संधियों तथा सुलह-

नामों के पैग़ाम रियासतों में एक दूसरे के पास जा रहे थे, शिवाजी ने एकदम कुतुबशाही पर आक्रमण कर दिया। कुतुबशाही की सेना आत्मरक्षा में व्यग्र हो गई गयी। दूसरी तरफ शिवाजी ने झटपट बीजापुर के दृढ़ प्रसिद्ध दुर्ग पन्हाला पर धावा बोल दिया। मित्र बादशाह देखते ही रह गये। दोनों की सेनाएँ एक दूसरे से न मिल सकीं।

शिवाजी ने अन्नाजी पण्डित को पन्हाला क़िले पर आक्रण करने के लिये भेजा। साथ में कोंडाजी गोंडाजी और पोतियोजी को चुने सरदारों के साथ सहायता के लिये रवाना किया। राजपुर में अन्नाजी के गुप्तचर द्वारा समाचार जान लिये। सिपाहियों ने रात को पन्हाला पर आक्रमण किया। अन्नाजी रक्षक सेना के साथ जंगल में छिपा रहा। अन्नाजी रात को अँधेरे में बड़े परिश्रम के साथ पन्हाला की तराई में पहुँचे। निराश और बेबस हो सिर पर खड़ी पहाड़ी की ओर देखने लगे। रस्सियों की सीढ़ी बना कर चुपचाप एक दूसरे के साथ सहारा लेकर ऊपर के चौपट नल पर पहुँच गये। चारों ओर से एकदम नरसिंघे बजने लगे।

किले का रक्षक बाबूख़ाँ इन आवाज़ों को सुन कर चिल्ला उठा "यह शोर कैसा है ?" प्रहरी नींद से उठ कर हाथ में शस्त्र लेकर घबराहट में इधर उधर दौड़ने लगे। पैदल सवारों तथा सन्तरियों को इधर उधर भागता देखकर नागरिक भयभीत हो गये, क़िले का रक्षक हाथ में तलवार लेकर रक्षक सेना की टुकड़ी के साथ मुकाबला करने को बढ़ा। कोंडाजी खिंची तलवार हाथ में लिये आगे बढ़ा। घमासान युद्ध शुरू हुआ। किलेदार ने कुछेक सिपाहियों का प्रहार किया, परन्तु कोंडाजी ने मौका देखकर उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। इसी अरसे में पूर्व दिशा में प्रभात काल की रङ्गीन छटा दिखाई दी।

इसी प्रकार नागोजी पण्डित ने भी घबरा कर द्वारपाल से पूछा 'यह शोर कैसा है ?' इतने में पैदल सिपाहियों ने हाँपते हुए कहा कि 'ब्राह्मण ! ब्राह्मण !! रक्षा करो। किलेदार मारा गया है। शत्रु क़िले में घुस गया है। ब्राह्मण अभी फ़िक्र ही में था कि उसने देखा कि रायाजी उसके घर की ढूँढ में इधर ही आ रहा है। उसे देखते ही वह जान बचा कर दौड़ा। रायाजी ने गनिमजी नाम के बीजापुर दरबार के अहलकार के छिपने की बात सुनी और

उसकी ढूँढ में लग गया। अन्य स्थानीय अधिकारियों को गिरफ़्तार किया गया।

किले के गुप्त स्थानों के विषय में आवश्यक परिचय प्राप्त किया। पड़-ताल की, और सब स्थानों पर अपने आदमी नियुक्त किए गए। शिवाजी को चिट्ठी लिखकर विजय का समाचार पहुँचाया। अन्नाजी विजित स्थान पर पहुँचा। दो दिन में आदमी ने शिवाजी के पास पहुँच कर कहा कि पन्हाला जीत लिया गया। शिवाजी ने सन्देशहर को ४५०) इनाम दिये और अपने हाथ से उसके मुँह में खांड की डली रखी। शिवाजी ने विजयदुन्दुभि बजाने की आज्ञा दी। सेनापतियों ने चिल्ला कर कहा कि अब बीजापुर को भी आधीन करना है, पर्वत-मालाओं ने भी गम्भीर प्रतिध्वनि के साथ इसका अनुमोदन किया।

पर्वत-मालाओं की गूंज ने मराठा सेनाओं को बीजापुर पर कूच करने की आज्ञा दी। उवरानी और जैसरी के मैदान में बीजापुर की सेना बहलोलखाँ तथा खवासख़ाँ के नेतृत्व में आगे बढ़ रही थी। मराठे वीरों ने प्रतापराव गुर्जर की अध्यक्षता में इनका मुकाबला किया। भयंकर मार काट मची। बीजापुर की सेना के पैर उखड़ गए। बीजापुर का रहा सहा प्रभाव भी जाता रहा। इस लड़ाई में अनेक मराठे वीरों ने जौहर दिखाए। प्रतापराव गुर्जर युद्ध मैदान में खेत रहा। परन्तु इस वीर की कमी को पूरा करने वाले भनजी जाधवराव संताजी घोर-पड़े और हवीरराव मोहित ने आगे बढ़ कर धराशायी वीर के हाथों में फहराते हुए झण्डे को संभाला। १६७७ ई० में बीजापुर का प्रसिद्ध सरदार बहलोलखाँ मर गया। औरङ्गजेब चालाक था, उनने बीजापुर तथा कुतुबशाही को शिवाजी के विरुद्ध सहायता नहीं दी, क्योंकि उसकी दिली अभिलाषा यह थी कि दक्षिण की मुसलमान रियासतें नष्ट कर दी जायें। बह-लोलखाँ की मृत्यु के बाद दरबार ने मसऊदखाँ को मुख्य सेनापति बनाया। दिल्ली दरबार का सरदार दिलेरखाँ उदासीन था।

विपक्षी दरबारियों ने मुग़ल बादशाही के सरदारों के साथ मिलकर बीजापुर की रही सही सम्पत्ति तथा श्री को मलियामेट कर दिया। मसऊदखाँ को विरोधी पक्ष के पठानों ने बहुत तंग किया। गृह-कलह को शांत करने वाला कोई नहीं था। लाचारी हालत में कोई आसरा न देखकर मसऊदखाँ ने

शिवाजी से सन्धि कर ली। इस बाह्य आक्रमण के शांत होने पर भी मसऊद को आराम नहीं मिला। शिवाजी ने अपने जीवन काल तक रियासत को औरङ्गजेब के आक्रमण से बचा रखा, परन्तु शिवाजी की मृत्यु के बाद औरङ्गजेब अपने कार्य में सफल हुआ और रियासत को अपने आधीन कर लिया।

—:o:—

: १७ :

कर्नाटक की कथा

शिवाजी की अनेक विजय-यात्राओं में कर्नाटक की विजय-यात्रा विशेष महत्व की है। इसी कर्नाटक की सवारी में शिवाजी ने गोलकुण्डा और बीजापुर के कई देश स्वाधीन किए। शिवाजी ने बीजापुर दरबार की ओर से युद्ध करके, कर्नाटक के कई प्रदेश अपने आधीन कर लिये थे। नयी जागीर बना कर तंजोर में अपना मुख्य निवास-स्थान बनाया। शाहजी की मृत्यु के बाद शिवाजी का सौतेला भाई व्यंकोजी बीजापुर दरबार की ओर से जागीर का प्रबन्ध करने लगा, दूसरी ओर शिवाजी ने बीजापुर के मुकाबले में प्रतिद्वन्द्वी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने के लिये ही अभिषेक-समारोह किया था। परन्तु व्यङ्कोजी बीजापुर दरबार के आधीन था। यह कलंक शिवाजी के पूर्ण स्वातन्त्र्य में कंटक था। अपने स्वातन्त्र्य की पूरी धाक बैठाने के लिए ज़रूरी था कि कर्नाटक में भी अधिकार प्राप्त किया जाय। कर्नाटक में विजय-यात्रा करने से, जहां एक ओर राज्य विस्तार लाभ था वहां विजय करने का यह मौका भी अनुकूल था। औरङ्गजेब कुतुबशाही आदिलशाही को अपने आधीन कर कर्नाटक पर कब्जा करने में संकोच न करेगा इसलिए औरङ्गजेब के आने से पूर्व ही कर्नाटक में, अपनी शक्ति को स्थिर तथा सुरक्षित करना जरूरी था।

कर्नाटक की यह विजय-यात्रा भी अप्रत्यक्ष तौर से औरङ्गजेब के साथ लड़ाई थी। कर्नाटक में शिवाजी को कोई न जानता था अतः जरूरत थी उस तरह विजय-यात्रा की जाय और अपने प्रभाव से लोगों तथा सरदारों को पक्ष में लिया जाय। इस बात नहीं गए। ठीक इसी समय एक ऐसी घटना हो

गयी, जिसके कारण शिवाजी ने १६७७ ई० में कर्नाटक की यात्रा करने का संकल्प कर लिया।

शाहजी के नीचे दादाजी कोंडदेव और नारोपन्त हनुमन्ते नाम के दो योग्य पुरुष थे। दादाजी कोंडदेव ने शिवाजी के साथ मिलकर पूना स्थित जागीर की रक्षा की। इन दोनों सरदारों ने शाहजी के नीचे मलिक अम्बर के पास अनुभव तथा शिक्षा प्राप्त की थी। शाहजी १६३८ ई० में कर्नाटक आया, अपने साथ नारोपन्त हनुमन्ते को भी ले आया था। नारोपन्त १६५३ ई० में मर गया, उसके दोनों पुत्र रघुनाथ और जनार्दन पन्त शाहजी के नीचे अपने पिता का काम देखने लगे। रघुनाथ पन्त ने ठेठ दक्षिण तक मराठों के राज्य विस्तार के लिए गुप्त राज्य से शाहजी और व्यंकोजी के नीचे रह कर प्रयत्न किया। शाहजी की मृत्यु के बाद शिवाजी का अभिषेक हुआ। इस समय से व्यंकोजी और रघुनाथ पन्त की आपस में न बनी। व्यंकोजी रघुनाथ पन्त की उपेक्षा करके औरों की सलाह से काम करने लगा। रघुनाथ ने बीच में व्यंकोजी को कई बार टोका। दोनों की देर तक नहीं निभी। आखिर १६७५ ई० में रघुनाथ पन्त तन्जौर को छोड़ कर शिवाजी के पास आ पहुँचा। रघुनाथ पन्त चतुर और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। वह शिवाजी को साथ मिलाकर कर्नाटक में व्यंकोजी का दमन करना चाहता था। इधर शिवाजी बीजापुर और औरङ्गजेब से लड़ रहा था। इस हालत में शिवाजी का कर्नाटक की ओर आना मुश्किल था। परन्तु रघुनाथ पन्त ने अपनी चतुराई से मौका निकाल लिया। उसने कुतुबशाही के मन्त्री मदन पन्त को अपने साथ मिला कर बादशाह कुतुबशाह को शिवाजी के साथ सन्धि करने को तैयार कर लिया। बादशाह को मदन पन्त द्वारा सुझाया कि औरङ्गजेब बीजापुर के साथ मिलकर कुतुबशाही को नष्ट करना चाहता है अतः शिवाजी से सन्धि करो। इस प्रकार कुतुबशाही को अपने-पक्ष में करके, रघुनाथ पन्त शिवाजी के पास गया और उसे कर्नाटक की विजय-यात्रा के लिए प्रेरित किया। शिवाजी की चिर अभिलषित इच्छा के पूरा होने का समय आ उपस्थित हुआ। शिवाजी ने सलाहकारों की सलाह के अनुसार "व्यंकोजी की जागीर में से अपना हिस्सा लेने जाता हूँ" का निमित्त कर १६७७ ई० में रायगढ़ से चल कर तुङ्ग भद्रा नदी

के किनारे कई स्थानों पर ठहरते हुए धीरे २ शिवाजी ने वेलोर के समीप पहाड़ी क़िलों को जीतने के लिये सेना को भेजा। सरदार अम्बरखान ने अपने आठ पुत्रों के साथ शिवाजी का मुकाबला किया। परन्तु आख़िर उसे क़िला छोड़ना ही पड़ा। इसी प्रकार शिवाजी ने अन्य प्रदेशों को भी जीता। शुरू २ में शिवाजी ने यह आक्रमण कुतुबशाही की ओर किया था। रघुनाथ पन्त की मध्यस्थता के कारण कुतुबशाही शिवाजी के अनुकूल थी। परन्तु इधर अचानक कुतुबशाही ने सहायता देनी बन्द कर दी। उधर औरङ्गजेब ने शिवाजी की अनुपस्थिति में उत्तरीय महाराष्ट्र में उत्पात मचाना शुरू किया। शिवाजी ने अपने भाई व्यंकोजी को समझाया कि वह रघुनाथ पन्त आदि के साथ मिल कर हिन्दू राष्ट्र को संभाले। शिवाजी के सामने उसने सब कुछ स्वीकार किया। थोड़ा बहुत फैसला यहाँ हुआ, परन्तु अन्तिम फैसला चिट्ठी-पत्री द्वारा हुआ। शिवाजी अपने पीछे प्रबन्ध के लिये रघुनाथ पन्त, धनाजी जाधव आदि को छोड़ गया।

इन वीरों ने नावम्बर १६७८-७९ ई० की लड़ाई में यूसुफखान को हराया। इसी कर्नाटक विजय-प्रसंग में एक महत्वपूर्ण घटना हुई, जिसका वर्णन करना आवश्यक है। महाराष्ट्र के इस जागृति-काल में वीरांगनाओं के कारनामे भारत के इतिहास में अपूर्व स्थान रखते हैं। बेलवाड़ी की सावित्री बाई ने अपने पराक्रम से शत्रु को भी चकित किया।

शिवाजी की सरदार मण्डली में दादाजी रघुनाथ प्रभु महाडकर नाम का स्वामिभक्त सरदार था। इस सरदार ने बेलवाड़ी के भुईंकोट क़िले पर आक्रमण किया। वह क़िला येस प्रभु नाम सरदार के आधीन था। दादाजी रघुनाथ ने किसी विद्रोही द्वारा किले के घरों में आग लगवा दी। लोग आग बुझाने में लगे थे इतने में दादाजी ने किले में अपनी सेना को पहुँचा दिया। भयंकर युद्ध हुआ। येस प्रभु रण में खेत रहा। किला शत्रु के हाथ में रहा। इतने में येस प्रभु की वीर पत्नी अपने पति की मानमर्यादा को सुरक्षित करने के लिए हाथ में तलवार ले घोड़े पर सवार हुई। सेना का संचालन किया। दादाजी को युद्ध के मैदान से भगा दिया। वीरांगना को युद्ध मैदान में लड़ता देख, किले वालों का उत्साह द्विगुणित हो गया। दादाजी ने इस भाग पर

फिर आक्रमण किया। बाई के घोड़े पर पीछे से वार किया। घोड़े की पिछली टाँग कट गई। बाई भी अशक्त होकर शत्रुओं से घिर गई। दादाजी उसे शिवाजी के पास ले गया। शिवाजी ने उसका सत्कार कर, किला उसे सौंप दिया। जिस राष्ट्र में जहाँ ऐसी वीर माताएँ हों उनके सामने भला कौन ठहर सकता है?

यह घटना १६७८ ई० के लगभग हुई। इसके अतिरिक्त शिवाजी ने व्यंकोजी को अनेक तरह से पत्रादि द्वारा भी समझाया। अन्त में रघुनाथ पन्त को पत्र में कई शर्तें लिखकर व्यंकोजी को कहला भेजा कि इन शर्तों के अनुसार चलकर हिन्दू बादशाही तथा पूर्वजों के गौरव को स्थिर रखो। रघुनाथ पन्त ने व्यंकोजी को समझा बुझाकर मना किया। इस प्रकार भाइयों का झगड़ा प्रत्यन्ततः निपटा।

व्यंकोजी उदास रहने लगा। शिवाजी के कार्यकर्ता सब प्रबन्ध करने लगे। व्यंकोजी ने निराश होकर भोजनादि भी छोड़ दिया। शिवाजी को सब यह मालूम हुआ तब उन्होंने प्रेमपत्र लिखकर व्यंकोजी को समझाया।

इस पत्र में लिखा कि हमें रघुनाथ पन्त आदि द्वारा पता लगा है कि तुमने वैराग्य धारण कर लिया है राजकार्य से उदासीन रहते हो। यह ठीक नहीं है। हमारे बड़ों ने अपनी क्रियाशीलता से जो राज्य प्राप्त किया है हमें उसे संभालना चाहिये। इत्यादि। तुम स्वयं समझदार हो—सब समझते हो। इस कर्नाटक विजय-यात्रा के कारण रघुनाथ पन्त और जनार्दन पन्त के पुत्रों की सहायता से व्यंकोजी ने सारे मुल्क का प्रबन्ध किया। रघुनाथ पन्त ने अपनी बुद्धिमत्ता से शिवाजी और व्यंकोजी के राज्यों को एक सूत्र में ग्रथित कर दक्षिण की अखण्ड हिन्दू बादशाही के स्वप्न को पूरा किया।

यदि शिवाजी कुछ साल तक और जीवित रहता तो अपने विस्तृत हिन्दू राज्य के स्वप्न को अपनी आँखों देखता। कर्नाटक में स्वराज्य की नींव डल चुकी थी—परन्तु अभी तक सीदी शत्रुओं का दमन नहीं हुआ था। इतने में औरङ्गजेब ने शिवाजी से १६७६ में दूसरा युद्ध छेड़ दिया। औरङ्गजेब ने बहादुरखाँ को आक्रमण करने की आज्ञा दी।

बहादुरखान ने दक्षिण में हलचल मचा दी, मोरोपन्त पेशवा ने उस का मुकाबला किया। बहादुरखां शिवनेरी तक बढ़ा; परन्तु हंबीरराव ने दूसरी ओर से सूरत पर धावा किया। इधर दिलेरखां ने कल्याण प्रान्त को लूट लिया। इधर शिवाजी ने कुतुबशाह से मिलकर नया चक्र चलाया। दिलेरखां ने बीजापुर से मिलकर शिवाजी को हराना चाहा, परन्तु कुतुबशाह के वजीर मदनपन्त ने इनकी एक न चलने दी। औरङ्गजेब ने दिलेरखान पर दबाव डाला कि वह बीजापुर को आधीन करे।

बीजापुर ने शिवाजी से सहायता मांगी। शिवाजी ने मुग़ल प्रान्तों पर धावा बोल दिया। जालना शहर पर आक्रमण किया। शाहदादा ने शिवाजी को रणमस्तखां आसदखान आदि के साथ मिलकर आ घेरना चाहा। संगमनेर के मैदान में मुग़लाई और मराठी सेनाओं की मुठभेड़ हुई। निवासकर युद्ध में मारा गया। सन्ताजी घोर पड़े पराजित होकर लौटा। ठीक इस बदलती घड़ी में शिवाजी ने चुने हुए सरदारों के साथ शत्रु के बीच में प्रवेश कर उसको छिन्न भिन्न किया।

इस प्रकार अपने पराक्रम से मुग़लों को हराकर शिवाजी गुप्त मार्गों से रायगढ़ पहुँचा। वहां पहुँचते ही उसे सूचना मिली कि दिलेरखान आदिल-शाही को नष्ट करने के लिये तुला हुआ है, इतना ही नहीं, शिवाजी का अपना लड़का संभाजी भी शत्रु-पक्ष में मिल गया।

यह समाचार सुनकर शिवाजी को दुःख हुआ। शिवाजी ने अपनी ओर से सम्भाजी को अपने साथ रख कर शिक्षित करने में कोई कमी नहीं की। ख़ैर! इधर दिलेरखान ने सम्भाजी को अपनी ओर मिला तो लिया, परन्तु अविश्वासी औरङ्गजेब ने कहा कि सम्भाजी शिवाजी की ओर से भेदी बनकर आया है। सम्भाजी को भी यह बात पता चल गई कि औरङ्गजेब उसे नहीं चाहता। सब दशाओं पर विचार कर दिलेरखान ने सम्भाजी तक यह बात पहुचा दी कि उसका यहां रहना ठीक नहीं है। लाचार सम्भाजी शिवाजी की शरण में गया।

शिवाजी ने उसे समझाया। कुछ ज्ञान की बातें कहीं और पन्हाला के क़िले में विश्वासपात्र आदमियों के पास रखा। कोल्हापुर में जनार्दन पन्त को

इसीलिए रखा कि वह सम्भाजी पर निरीक्षण रखे। इसके बाद मुगलों से शिवाजी का कोई युद्ध नहीं हुआ। शिवाजी भी अब युद्ध करते २ थक चुका था। अहमदाबाद सूरत और बन्दरगाहों को छोड़ कर उसने जो कुछ लेना था वह ले चुका था। अब शिवाजी के सामने जीवन की अन्तिम घड़ी आ गई थी।

—:०:—

: १८ :

पश्चिम में सूर्यास्त

शिवाजी ने लगातार २६ साल तक लगन के साथ परिश्रम कर पहाड़ियों और घाटियों में शत्रु का दमन किया। किसी को प्रेम से, किसी को नेम से, किसी को शस्त्र बल के ज़ोर पर, किसी को नीति बल के दाँवपेंच द्वारा एक २ करके सब शत्रुओं का नियन्त्रण कर, उत्तर कोंकण से लेकर दक्षिण कर्नाटक तक भगवा झण्डा फहराने लगा। पीड़ित लोग आत्मरक्षा के लिये इसी झण्डे की शरण में आने लगे। शिवाजी ने दिल्ली दरबार, बीजापुर दरबार और कुतबशाही एक २ करके सब पर अपना सिक्का जमाया। इन प्रबल शत्रुओं को दबाते हुए शिवाजी ने पश्चिमीय समुद्री शत्रुओं को भी अपने आधीन करने के लिये पर्याप्त यत्न किया। स्थल-सेना के सङ्गठन में शिवाजी के पहाड़ी किलों और घुड़ सवारों का सब ने लोहा माना। केवल एक ही शत्रु था जो अभी तक शिवाजी के मुकाबले में खड़ा होने का दम रखता था। इनका नाम सीदी था। ये लोग समुद्री व्यापारी थे। इसलाम के मानने वाले थे। कोंकण के पश्चिम में इनके बेड़ों का जमघट था। दिल्ली तथा बीजापुर के बादशाहों ने समय २ पर इनकी सहायता लेकर शिवाजी को तंग करने में कमी नहीं की थी। इसलिए आवश्यक था कि इस सीमाप्रान्तीय शत्रु के दमन के लिए भी उचित प्रबन्ध किया जाय। इन्हीं सीदियों का दमन करने के लिए १६६१ ई० में शिवाजी ने राजपुरी बन्दर को आधीन कर उसे अपने जलीय बेड़े का मुख्य स्थान बनाया। रायगढ पर किला बनाने का भी यही कारण था कि यहां से सीदियों पर सीधी मार की जा सकती थी।

शिवाजी ने जयसिंह के साथ सन्धि की। जो बातचीत छेड़ी थी उसमें यह शर्त थी कि जञ्जीरा और राजपुरी के समीप के किले शिवाजी को दिये जायें। जयसिंह ने इस शर्त को मान भी लिया था। परन्तु सीदियों के सरदार संबूल ने औरङ्गजेब के पास जाकर कहा कि जञ्जीरा शिवाजी को न दिया जाय। औरङ्गजेब स्वीकृत सन्धि को टाल नहीं सकता था। उसने जयसिंह को कहला भेजा कि तुम दोनों शत्रुओं को ही प्रसन्न रखने की कोशिश करो। किसी को भी जञ्जीरा पर पूरा अधिकार मत करने दो। औरङ्गजेब ने कहला भेजा कि साक्षात् भेंट के समय शिवाजी के साथ जञ्जीरा के सम्बन्ध में अन्तिम फैसला होगा। शिवाजी अपने पश्चिमीय राज्य के सीमाप्रान्त को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक समझता था कि जञ्जीरा को अपने आधीन किया जाय।

१६६७ ई० में शिवाजी ने दक्षिण में राजपुर और विजयदुर्ग से लेकर उत्तर में दमन तक का समुद्री किनारा अपने आधीन किया। केवलमात्र बम्बई उसके आधीन न था। बीजापुर का सरदार फतहखां जञ्जीरा की संरक्षा कर रहा था। १६७० ई० में शिवाजी ने कई बार जञ्जीरा के किले को आधीन करने का यत्न किया, परन्तु उसे सफलता नहीं हुई। यह किला बहुत मज़बूत था। अंग्रेज़ लोग भी चाहते थे कि आत्मरक्षा के लिए इस किले पर उनका अधिकार हो। १६७० ई० में फतेहखाँ लाचार होकर किला छोड़ने को तय्यार हो गया। परन्तु उसके नीचे काम करने वाले सम्बूल कासम और खैर्यत नाम के सरदार शिवाजी के कट्टर दुश्मन थे। इन तीनों को फतेहखां का कार्य अच्छा नहीं लगा। तीनो ने फतेहखां को कैद किया। सम्बूल सब का मुखिया बना। जञ्जीरा उसके आधीन किया गया। सम्बूल ने जञ्जीरा की रक्षा करने के लिये बीजापुर दरबार से सहायता मांगी। वहां से सहायता न मिली, तब सम्बूल ने मुग़ल सरदार खांजहान की सहायता से शिवाजी का विरोध किया। सीदी लोग मुग़लों की ओर से लड़ने लगे। औरङ्गजेब ने सम्बूल को याकूबखान की उपाधि दी। उपज में से तीन लाख का मुल्क सीदियो को दिया। इस प्रकार औरङ्गजेब ने सम्बूल को कृपा तथा अनुग्रह द्वारा अपने आधीन कर लिया और उसे शिवाजी के मुकाबले में खड़ा किया। मुग़लों की जलसेना का सेनापति सम्बूल निश्चित हुआ। जञ्जीरा में कासम और राजपुरी में खैर्यत सम्बूल के सहायक

निश्चित हुए। १६७७ ई० में सम्बूल के मरने पर कासिम मुख्य सेनापति बना और खैर्यत जञ्जीरा का सरदार बना। राजपुरी बन्दरगाह में शिवाजी की सेना का भारी प्रभाव था। जञ्जीरा में मुग़लो तथा सीदियों का जोर था। एक दिन सीदियों ने बन्दरगाह में खड़े शत्रु के जहाज़ों पर अचानक आक्रमण कर २००–३०० नाविकों को पकड़ कर समुद्र में फेंक दिया। उस दिन से शिवाजी ने सीदियों से बदला लेने तथा उनका मान मर्दन करने का दृढ़ निश्चय किया। शिवाजी ने ५० नये जहाज़ बनाये। शत्रुपक्ष की पारस्परिक लड़ाई में सम्बूल मारा गया। इसने सेनापति बनते ही कई मराठों को यमलोक भेजा, कइयों को कैद कर सूरत भेज दिया था। दोनों में अनेक स्थानों पर युद्ध हुए, इनमें सीदियों को विजय लाभ हुआ। १६७१ ई० की होलियों में सीदी कासम और खैर्यत ने शिवाजी के दण्ड-राजपुरी में आने पर उन पर गुप्तरूप से आक्रमण किया। आक्रमण के समय बड़ा भारी स्फोट हुआ, वहां से ४० मील दूर रायगढ़ में शिवाजी को वह शब्द सुनाई दिया।

राजपुरी में कोई न कोई अनर्थ हुआ है, यह कहते हुए शिवाजी जाग उठा। अगले दिन मालूम हुआ है कि अनुमान ठीक है। सीदियों ने राजपुरी आदि स्थानों पर अनर्थ मचा दिया था। बाल-बच्चों को गुलाम बना कर कइयों को बेच देते थे और कइयोंको जानसे मार देते थे। इस समय शिवाजी औरङ्गजेब के साथ युद्ध में व्यग्र था। शिवाजी इस घटना से घबराया नहीं। उसने निरन्तर मुकाबला करने के लिये अपनी जलसेना बढ़ाने की कोशिश जारी रखी। सीदियों ने बम्बई के अंग्रेज़ों को भी अपने साथ मिला कर मराठों को नष्ट करना चाहा। परन्तु अंग्रेज लोग मराठों के आतङ्क के कारण तटस्थ रहे।

बम्बई बन्दरगाह के पूर्वीय किनारे के प्रदेश बहुत उपजाऊ और रमणीय हैं। इस प्रदेश का नाम कुर्ला था। यहां बम्बई के अंग्रेजों का लेन-देन होता था। सीदी लोगों ने इस प्रदेश को लूट कर सर्वथा तहस-नहस कर दिया था। शिवाजी ने अंग्रेजों के साथ मिलकर इस प्रदेश की रक्षा करने का निश्चय किया। १६७६ ई० में सीदियों ने कुर्ला पर आक्रमण किया। शिवाजी ने अंग्रेजों को सावधान किया कि वे सीदियों को बम्बई बन्दरगाह में न आने दें। १६७४ में अपनी जलसेना को एकदम आगे बढ़ाया और तत्काल रायगढ़

की ओर से दूसरी सेना सीदियो पर रवाना की। इस हल्ले में सीदी मारे गए।

जञ्जीरा से लेकर गोया तक का सारा प्रदेश मराठों की आधीनता में आ गया, राजपुरी बन्दर भी मराठों ने फिर से जीत लिया। औरङ्गजेब ने सीदियों को पर्याप्त सहायता दी, परन्तु शिवाजी ने उनका पीछा कर उन्हे सूरत तक मार भगाया। १६७६ ई० में पेशवा मोरोपन्त पिंगले ने जञ्जीरा के चारो ओर घेरा डाला, परन्तु पेशवा उसे अपने आधीन करने में कामयाब न हो सका। इधर १६७७ ई० में सीदी सम्बूल ने ब्राह्मणो पर अन्याय किया, शिवाजी इस अपमान को नही सह सकता था। सीदियों की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर उनका दमन करने के लिये १६७८ ई० में शिवाजी ने समुद्र के बीच खादेरी नाम का किला तैयार कराया, मॉडवगढ़ और खादेरी में बड़ी भारी फौज तैनात की। इसी स्थान पर डट कर फिरङ्गियो का मुकाबला किया, देर तक लडाई होती रही। कोई नतीजा नहीं निकला। इसी समय सीदियों ने भी १६७६ ई० राजपुरी से सेना की सहायता लेकर काहेरी के पास उंदेरी स्थान पर किला बनाया। रात को इस स्थान की सेना के सहारे कुलाबा या खांदेरी के गॉवों को लूटना शुरू किया। अनर्थ मचा दिया, पूजा स्थान और मन्दिरों को तबाह कर दिया। शिवाजी ने किसी प्रकार—सन्धि आदि द्वारा मामले को शान्त करना चाहा, परन्तु अन्त तक इसमें सफलता नहीं हुई। अलीबाग के समीप समुद्री किनारे पर १६७६ ई० नया किला बना कर, उसे जञ्जीरे कुलाबा का नाम दिया। राबर्ट आर्म्स ने भी लिखा है कि शिवाजी ने सीदियो का दमन करने के लिये, अपनी जलशक्ति को बढ़ाने के लिये पर्याप्त कोशिश की। क्योंकि शिवाजी समझता था कि भविष्य में होने वाले युद्धों में वही विजयी हो सकेगा, जिसकी जलसेना पर्याप्त प्रबल होगी। वह अपनी शक्ति को जानता था, उसे मालूम था कि युरोपियनो के मुकाबले में भारतीयो की जलशक्ति कम है। शिवाजी इस आने वाली आपत्ति से मराठा-मण्डल को बचाने की धुन में था। जलशक्ति को सङ्गठित किये बिना वह सीदियों को नहीं दबा सकता था—दूसरी ओर औरङ्गजेब ने शिवाजी को कर्नाटक में पहुँचा देखकर द्वितीय युद्ध जारी किया। शिवाजी ने अपने जीते जी औरङ्गजेब की एक नहीं चलने दी, उसकी सेनाएँ दक्षिण से सदा पड़ी रही। तथापि निरन्तर

दिन रात युद्ध के मैदानों के लगे रहने के कारण शिवाजी का शरीर थक चुका था, इस शारीरिक थकान को मानसिक चिन्ता ने और भी बढ़ा दिया।

इधर सम्भाजी के निन्दनीय व्यवहार के कारण उसे दिन प्रति दिन महाराष्ट्र के भविष्य की चिन्ता सताने लगी। माता जीजाबाई जिसके सहारे शिवाजी बड़ी २ आपत्तियों में भी नहीं घबराया था, इस लोक से प्रयाण कर चुकी थीं। इस प्रकार नई मानसिक चिन्ताओं ने शिवाजी को जीवन से उदासीन कर दिया था। इसी समय रायगढ़ किले में, घुटने में फोड़ा निकल आया। सात दिन तक बुखार रहा। आधियों का तो प्रकोप था ही, व्याधि ने भी निरन्तर अनथक परिश्रम के कारण थके हुए शरीर पर अपना ज़ोर दिखाया।

आखिर १६८० ई० शनिवार अप्रैल मास को मध्यान्होत्तर के समय महाराष्ट्र के छत्रपति ने इस लोक से विदाई ली। वीर पत्नी पूतनाबाई सती हो गई। राजाराम ने मराठा सरदारों के साथ मिलकर देहान्त क्रिया की। सम्भाजी पन्हाला में था। चारों ओर शत्रु की प्रबल सेनाओं को उठता देखकर यही उचित समझा गया कि इस अकाल मृत्यु को साधारण जनता पर एकदम प्रकट न किया जाय। विदेशी तथा विपक्षी लोग देर तक यही समझते रहे कि शिवाजी कहीं अन्तर्धान हो गया है। मृत्यु के समय शिवाजी के पास कोई योग्य व्यक्ति न था। जिसको वह भविष्य में कैसे प्रबन्ध हो आदि के सम्बन्ध में सलाह या निर्देश देता। इस कारण राजधानी में गद्दी के लिए कई स्वकीय युद्ध हुए। खैर अन्त समय ऐसा ही होता है। बड़े २ विजेताओं की गति भी यहां आकर रुक जाती है। बड़े २ साम्राज्यों को पलटने वाले मृत्यु के सामने हाथ बांधे खड़े रह जाते जाते हैं। कहना चाहते हैं पर कुछ नहीं कह सकते। ज़बान नहीं हिलती। लिखना चाहें तो लिख भी नहीं सकते। बस, यह समय तो देखने का ही होता है। संसार से विदा होता हुआ आत्मा—अपने कर्मों को ही पीछे छोड़ जाता है। यही कर्म उसको तथा उसके यश को संसार के सामने रखते हैं। जीवनकाल में प्रतिस्पर्धी तथा ईर्ष्यालु प्रतिस्पर्धी के गुणों को जान बूझ कर भुलाते हैं। परन्तु मृत्यु के बाद शत्रु मित्र सभी सचाई के सामने सिर झुकाते हैं। यद्यपि शिवाजी का भौतिक शरीर आज इस दुनियां में नहीं है तथापि उनका कार्य उनका यश उसी तरह से जीवित जाग्रत है।

क्या हुआ यदि शिवाजी अन्त समय में साम्राज्य रक्षा के लिये उचित सलाह नहीं दे सके ? उस एक क्षण में वे क्या क्या कर सकते थे। जो कुछ करना था, कहना था, सुनाना था—वह सब जीवनकाल में हो चुका था। अष्ट प्रधान जैसे संगठन को बना कर उन्होंने मराठा जाति के स्वराज्य को स्थिर नींव पर खड़ा कर दिया था। शिवाजी ने अपने जीवनकाल में जो संविधान बनाया वह इतिहास में अपनी सफलता तथा उपयोगिता के कारण सदा स्थिर तथा स्मरणीय रहेगा।

—:०:—

: १६ :

शिवाजी विक्रमादित्य

भारत में दो तरह के राजा हुए हैं। एक इस प्रकार के राजा जिन्होंने बिना किसी पराक्रम या शूरता के पितृवंश में क्रमप्राप्त राज्य प्राप्त किया हो। इस प्रकार के राजा या राजवंश तभी उच्छिन्न होते हैं जब वंशवृक्ष में व्यभिचार या अनाचार रूपी कीड़ा लग जाता है। इस प्रकार के क्रमप्राप्त राजाओं की स्थिरता का एक ही साधन है, वह यह कि ये अपने आचार को पवित्र रखें। सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश के राजा इसी तरह के राजा थे। दूसरे राजा ऐसे होते हैं जिन्होंने अपनी तलवार के जोर पर, अपने बल के भरोसे, युद्ध मैदान में पराक्रम दिखाकर शत्रुओं के सिरों पर बाँया कदम रख कर अपना अभिषेक कराया हो। ऐसे राजा विक्रमादित्य कहलाते थे। ऐसे विक्रमादित्य राजाओं के अधःपात का कारण अभिमान होता है। पुराने राजघरानों के लोग उनसे ईर्ष्या करते हैं। वे जनता को नए राजाओं के विरुद्ध भड़काते हैं। विक्रमशाली राजा के विरुद्ध सरदार सेनाओं को बागी बनाते हैं। इनका दमन करने के लिये राजा लोग विशेष सेनाएं रखते हैं। विक्रम या पराक्रम के जोर पर बने हुये राजा यदि अपनी स्थिति को सुरक्षित करना चाहते हैं तो उन्हें चाहिये कि वे निरभिमानता का जीवन व्यतीत करें।

भारतीय दन्तकथाएँ बताती हैं कि उज्जैन के विक्रमादित्य प्रतिदिन

स्वयं सिप्रा नदी पर पानी लेने जाते थे। सादगी और निरभिमानता की शान्त तलवार ही महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों को शान्त करती है। सिकन्दर नैपोलियन सीज़र और भारत में मुसलमानी शासनकाल के बीसियों बादशाहों के जीवन इस बात के प्रमाण हैं कि नीचे काम करने वाले सरदारों ने किस प्रकार समय २ पर विद्रोह के झण्डे के खड़े कर, तख्त-नशीन बादशाहों को गद्दी से नीचे उतार दिया। शिवाजी भी विक्रमादित्य था। वह अपने पराक्रम से राजा बना था। गुरु रामदास ने उसे सफलता के इस मन्त्र की दीक्षा दी थी। रामदास की शिक्षा के दो ही मुख्य तत्त्व थे—प्रथम राम की उपासना के लिये, अथवा राष्ट्र की रक्षा के लिये व्यक्तिगत हितों और स्वार्थों का त्याग। दूसरा जो कुछ भी करना वह सब परमात्मा या राम के नाम पर करना। अपने आप को धर्मगुरु व इष्टदेव का मन्त्री समझना। अपने प्रत्येक कर्त्तव्य के लिये अपने आप को भगवान् के सामने उत्तरदायी समझे। अर्थात् अपने से बड़ी शक्ति में विश्वास रखना। रामदास ने जिस शिक्षा का उपदेश दिया था वही भारतीय आर्य सभ्यता का आदर्श है। भारतीय राजा अनियन्त्रित नहीं थे। धर्मरूपी दण्ड सदा उनके सिर पर जागृत रहता था। शिवाजी ने भी अपने समय में विक्रमादित्य की पदवी को धारण किया। उसने धर्मरूपी दण्ड को सहर्ष स्वीकार किया। मित्र शत्रु सबपर उसकी धाक थी। अनेक विरोधी शत्रुओं ने भी उसकी प्रशंसा की है उसके गुणों को स्वीकार किया है। शिवाजी अपने समय के राजाओं के मुकाबिले में आदर्श सदाचारी राजा था। व्यसनों से कोसों दूर रहता था। व्यसनी, कामी लोग उसके पास तक नहीं फटकने पाते थे।

वह व्यवहारकुशल और मधुर भाषण करने वाला था। आवाज में जोर था। चेहरे पर तेज था। गम्भीरता की अपूर्व शोभा थी। सन्धि परिषदों में प्रतिद्वन्द्वी राजा उसकी बात सुनते थे, खेलकूद तथा आनन्द प्रसंगों में बाल-सखाओं के लिये उससे बढ़ कर रसीला हँसमुख दूसरा खिलाड़ी कोई न था। इन गुणों ने शिवाजी के अन्दर आकर्षण शक्ति को केन्द्रित कर दिया था। छोटे बड़े अपढ़ और पठित, बाल वृद्ध सब उसी की ओर खिंचे आते थे। शिवाजी आदमी को पहचानने में चतुर था।

प्रत्येक को उसकी योग्यता के अनुसार उचित काम देकर अपने प्रेम-

पूर्ण व्यवहार से अपना लेता था। वृद्ध तथा अनुभवी विद्वान् सदा शिवाजी के नम्र स्वभाव से मुग्ध हुए उसकी हितचिन्ता में रहते थे। काम करने वाले सैनिक सेनापति के उत्साह-भरे शब्दों को सुनने के लिये जी-जान से काम करते थे। रत्नों का परखैया ही उनसे लाभ उठा सकता है। शिवाजी ने यही किया। शिवाजी महायोजक था, उसने योग्य पुरुषों को उचित स्थान पर नियुक्त कर मराठा मण्डल को स्थिर तथा सुरक्षित बना दिया।

शिवाजी की राजनैतिक योग्यता और धुरीणता में किसी को सन्देह नहीं। युरोपियन तथा आंग्ल ऐतिहासिक विल्सन स्मिथ तथा ग्रांड डफ आदि ने शिवाजी को लुटेरा आदि की उपाधियां देकर हिन्दु-जाति के राजनैतिक जागृतिकाल के गौरव को मन्द तथा धुंधला करना चाहा, परन्तु महाराष्ट्री ऐतिहासिकों के अनथक परिश्रम के कारण प्रतिदिन नई २ खोजें होती गईं। जिनके कारण शिवाजी की राजनैतिक योग्यता दिन-प्रति-दिन चमकने लगी। आखिरकार १९२१ ई० में पूना शहर में ब्रिटिश साम्राज्य के मुकुटधारी सम्राट् के उत्तराधिकारी युवराज प्रिन्सआफवेल्स ने शिवाजी की योग्यता को खुले शब्दों में स्वीकार करके शिवाजी मेमोरियल (शिवाजी स्मारक) की आधार-शिला रखी।

कोई माने या न माने १६८०-१८१८ ई० तक का दक्षिण देश का इतिहास इस बात का साक्षी है कि शिवाजी ने स्वराज्य स्थापना में जो राजनैतिक योग्यता दिखाई है वह संसार के प्रसिद्ध महत्वाकांक्षी वीरों में से किसी-किसी विरले में ही दिखाई देती है। सिकन्दर की विजय यात्राओं ने परशियन साम्राज्य को चकनाचूर कर दिया था और ग्रीस में मेसिडोनियन साम्राज्य की नींव को भारतीय पांच नदियों के जल से तथा भारतीय सेना के रक्त से सींचा। परन्तु इस प्रकार का रक्त-सिंचित ग्रीस का मैसिडोनियन साम्राज्य सिकन्दर के साथ ही साथ पातालतल में विलीन हो गया। सिकन्दर के साम्राज्य में इतनी जीवन शक्ति न थी कि वह अपने जोर पर आप खड़ा हो सके। सिकन्दर ने मैसिडोनिया और एलैक्जैण्ड्रिया के निवासियों को विजय यात्राएं करायीं, परन्तु इन विजय यात्राओं के कारण निरन्तर सिकन्दर की छत्र-छाया में रहने के कारण वे लोग शक्तिहीन और पराश्रित हो गए। सिकन्दर का

हाथ पकड़ कर विजय यात्रायें करने वाले वीर उसकी अनुपस्थिति में उन विजय पताकाओं को न संभाल सके। परन्तु शिवाजी का रंग ही दूसरा था। शिवाजी कहीं पर हों, १८१८ ई० तक मराठों का झंडा ठेठ उत्तर अटक से लेकर दिल्ली आगरा तथा ठेठ दक्षिण तक फहराता रहा। सिकन्दर के पास पिता फिलिप की सेनाएं थीं, शिवाजी के पास जंगली अशिक्षित मावलिए थे। उन्होंने अपने गुरु रामदास के सामने सिर झुकाने में अपना अहोभाग्य समझा, परन्तु वीर सिकन्दर ने शिक्षक गुरु द्वारा, राजनीति के क्षेत्र में किए गए हस्ताक्षेप को अनुचित माना। सिकन्दर के सरदार उससे बागी हो गए। जिसने बड़ी २ सेनाओं को क्षण भर में आधीन किया वह अपने सरदारों को नहीं दबा सका। आत्म-संयम और अहंकार के संग्राम में सिकन्दर पराजित हुआ; शिवाजी सब जगह विजयी हुआ। सीज़र और नैपोलियन भी इतिहास के जगमगाते ज्योतिःस्तम्भ हैं। दोनों ने अपने-पराक्रम से अपना रास्ता साफ किया, दोनों ने अपने सिंहासन अपने हाथों सजाए। दोनों ने कुछ समय तक राजमुकुट को अपने सिर पर रखने में संकोच किया परन्तु एक बार मुकुट रखा गया फिर किसी को उसे छूने नहीं दिया। राजाधिराजाओं से नाते जोड़ कर, धर्माचार्यों को अपना अनुयायी बनाकर दोनों ने सांसारिक ऐश्वर्य की चरम सीमा तक पहुँचकर अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने में कमी नहीं की। फ्रांस की जाग्रत प्रजा को साथ लेकर गद्दीधारियों को सिंहासनों से नीचे उतारना इतना कठिन नहीं था जितना कि महाराष्ट्र देश की बेसुध बिखरी निर्जीव प्रजा को साथ लेकर अपने समय के प्रसिद्ध बादशाहों को लड़ाई के लिये ललकारना। मुगल वंश के प्रसिद्ध बादशाह अकबर की नीति-कुशलता और रण-कुशलता में किसी को सन्देह नहीं परन्तु सरदारों का विद्रोह, मुल्लाओं का प्रकोप और "राजपूत रमणियों की वीरता" अकबर की लोकप्रियता में आज भी कलङ्क रूप दिखा रही है। भारतीय इतिहास में गुरु गोविंदसिंह और बाबर दो ही फकीर बादशाह हुये हैं। इन्होंने शिवाजीकी तरह फकीर बानेमें रहकर राजसिंहासनोंकी उथल पुथल की। गुरुगोविंदकी बादशाहत देरतक नहीं चली परन्तु बाबर और शिवाजी की योग्यता पर जब विचार करते हैं तो राजनीतिक दृष्टि से बराबर उतरते हैं। दोनों निरभिमानी और नई सल्तनत बनाने वाले दीन दुखियों के सहारे थे। केवल युद्धों में

विजय हासिल करना ही बादशाहों या राजाओं का काम नहीं। केवल दरबारों में ठाठ के साथ सिंहासन पर विराजमान होने से ही राजा की इतिकर्तव्यता समाप्त नहीं होजाती। राजा का असली कर्तव्य प्रजा को अमन चैन प्राप्त कराना और उसकी समाजिक दशा को सुधारते हुए विद्यादि प्रचार का प्रबन्ध करना है अशिक्षित प्रजायें राजाओ के लिए बड़ी खतरनाक होती हैं। इसी प्रकार सामाजिक दृष्टि से छिन्न भिन्न राष्ट्र सदा असुरक्षित रहते हैं। शिवाजी निरन्तर युद्धो में लगा रहा। उसे इतनी फुर्सत नहीं मिली कि वह आजकल की सरकारो की तरह शिक्षणालयों का प्रबन्ध कर सके और भारतीय सभ्यता का यह आदर्श पूरा करे। भारतीय सभ्यता का तत्व यह है कि जाति की शिक्षा जाति के हाथ में हो। प्रत्येक समाज या सम्प्रदाय के धार्मिक नेतागण अपनी २ समाज को शिक्षित करें। हिंदुओं के वानप्रस्थी, सन्यासी, मुसलमानों के पीर मौलवी अपनी स्वतन्त्र पाठशालाओं में शिक्षा या विद्या का काम करते थे धर्म मन्दिर और धर्ममठ तथा पाठशालाएं उस समय के मदरसे थे। इस शिक्षाके प्रचार में राज्य का हस्तक्षेप नहीं था। बादशाह कोई हो चाहे हिंदु हो या मुसलमान, भिक्षुओं सन्यासियो और फकीरो की ग्राम-पाठशालाएं जारी रहती थीं। राजा लोग राज-कोष से सहायता देते थे, कभी विद्या मन्दिर बनवाते थे; कभी भूमि दान कर देते थे। शिवाजी ने भी अपने समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार धर्म मन्दिरों, देवस्थानो और मसजिदों की सहायता और हिफाजत करने में कमी नहीं की। शिवाजी के प्रबन्ध में क्या हिन्दु, क्या मुसलमान सब सम्प्रदायों के आचार्यों की जीविका के लिये उचित प्रबन्ध था।

इस प्रकार शिवाजी ने राष्ट्र को शिक्षित करनेके लिये पर्याप्त प्रबन्ध किया। सामाजिक ऊंच नीच तथा भेद भाव के भावों को दूर करने के लिये भी शिवाजी ने कोई बात उठा नहीं रखी थी। सरकारी नौकरिया सब जातियों के लिए खुली थीं। योग्य व्यक्ति को उचित सन्मान देने में किसी तरह का संकोच नहीं किया जाता था इतना ही नहीं शिवाजी ने हिंदू समाज को सामाजिक सुधारो की दृष्टि से जीवित जाग्रत बनाने के लिए पूरी कोशिश की।

हम शिवाजी के समय की एक घटना का उल्लेख करते हैं जिससे स्पष्ट हो जायगा कि शिवाजी तथा उसके सहकारी कितने उदार थे। आज कल देश में

शुद्धि का प्रश्न बड़े ज़ोर से उठ रहा है। कट्टर राष्ट्रवादी हिंदू और कट्टर मुसलमान इस आन्दोलनके विरोधी हैं। धार्मिक सहिष्णुताके सिद्धान्तको मानने वालों के लिये यह ऐतिहासिक दृष्टान्त इस बातके लिए पर्याप्त प्रमाण होगा कि समय तथा आवश्यकतानुसार समाज तथा राष्ट्र हित की दृष्टि से शुद्धि करना ठीक है।

शिवाजी के समय दक्षिण में कर्नाटक की ओर बजाजी निंबालकर नाम के मराठा सरदार को कहा कि वह या तो मुसलमान बन जाए, नहीं तो उसकी सारी जागीर तथा अधिकृत देश छीन लिया जायगा। निंबालकर अपने परिवार की अवस्थाओं से लाचार था उसने इस ख्याल से मुसलमान बनना स्वीकार किया। कुछ समय बाद यही सरदार शिवाजी के दरबार में पहुंचा। जीजाबाई को इस बलशाली अनुभवी सरदार के आने की सूचना मिली उसने दिल में सोचा कि इस बलशाली सरदार को मराठा-मण्डल से अलग नहीं होने देना चाहिए शिवाजी के शत्रु प्रबल हैं अतः इसे फिर से शुद्ध कर लेना चाहिये। सरदारों की सलाह ली। सबने सरदार को फिर हिन्दू बनाने की अनुमति दी। नियत समय पर शुद्धि हो गई। जीजाबाई समझती थी कि केवल शुद्धि-संस्कार से कोई फायदा नहीं। विवाह-सम्बन्ध भी होना चाहिये। जीजाबाईने किसी और को इस कार्य के लिए प्रेरित न कर शिवाजी की लड़की, सम्भाजी की बहिन सूखूबाई का बजाजी निंबालकर के लड़के महादाजी के साथ १७५७ ई० में विवाह कर दिया। इसके बाद किसी ने किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की।

इस प्रकार शिवाजी के घराने ने अपने उदाहरण से लोगों के सामने सामाजिक सुधार का मार्ग खोल दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिवाजी ने क्या धार्मिक, क्या राजनैतिक और क्या सामाजिक सब प्रकार के सुधारों के प्रचलित करने में किसी तरह का संकोच नहीं किया।

वही राज सफल हो सकता है जो सब प्रकार की उन्नति में प्रजा का हाथ बटाए। शिवाजी ने गुरु रामदास के चरणों में बैठ कर धर्म भक्ति के प्रभाव से धर्म मन्दिरों को सब के लिए खोला। धर्म के मामले में जन्म के ऊँच-नीच के भाव नष्ट हो गए। राजनैतिक सुधारों के कर्ताधर्ता शिवाजी ने राष्ट्र की इच्छा पूरी की। लोगों को स्वराज्य प्राप्त कराया और राष्ट्र को स्थिर पाए पर खड़ा किया।

द्वितीय परिच्छेद

पिंजर-बद्ध केसरी

छत्रपति शिवाजी का देहावसान हो चुका था। शिवाजी ने मराठा-मण्डल संगठन तो किया था, परन्तु इस विषय में कोई निश्चय नहीं हुआ था कि उनके पीछे राजसिंहासन पर कौन बैठे। शिवाजी ने अपने जीवनकाल में, अनेक विजय यात्राओं में अपने बड़े लड़के सम्भाजी को योग्य बनाने के लिए अपने साथ रखा। शिवाजी के शौर्य, वीरता, सहनशीलता आदि दिव्य गुण सम्भाजी में पूर्णरूप से विद्यमान थे। परन्तु सम्भाजी की लम्पटता अथवा स्त्री-व्यसनता का अवगुण उसके सब गुणों को बेकार बनाने वाला था। अन्तकाल में उसकी विजय-यात्राओं को इस व्यसन ने ही कलंकित किया था। शिवाजी ने सम्भाजी को बहुत बार समझाया। सम्भाजी इस दुर्गुण को न छोड़ सका। यह दोष सम्भाजी के जीवन में कलंक रूप था। शिवाजी ने अपने जीवनकाल में अपनी तथा मराठा-मण्डल की प्रतिष्ठा को निष्कलंक रखने के लिए, अपने सामने पुत्र की इन कुचेष्टाओं को दूर करने के लिए विश्वासी आदमियों के निरीक्षण में उसे पन्हाला किलेमें रखा। व्यसनी शेर की पाशविक वृत्तियों को दूर करने के लिए उसे पन्हाला किले में बन्द किया।

शिवाजी अच्छी तरह समझता था कि औरंगजेब को जीतने के लिये, उसकी चालबाज़ियों से स्वराष्ट्र को बचाने के लिये, केवलमात्र बड़ी सेनाओं की ही आवश्यकता नहीं; अपितु निर्व्यसनता तथा सावधानी की बड़ी ज़रूरत है। औरंगजेब ने अपनी इस निर्व्यसनता के ज़ोर पर ही सगे भाइयों को पराजित किया था। वह आठों पहर जाग कर शत्रु को अपने जाल में फंसाने की कोशिशें करता था। औरंगजेब उस क्षण की बाट जोह रहा था जब शिवाजी का देहान्त हो और सम्भाजी राजसिंहासन पर बैठे। शिवाजी तथा मराठा-मण्डल के दूरदर्शी राजनीतिज्ञों की यही इच्छा थी कि सम्भाजी अपनी

विषय-व्यसनता को छोड़ कर उसका नेता बने। परन्तु उनकी यह इच्छा पूरी न हुई। कुछ एक लोगों ने सम्भाजी के कारण आने वाली आपत्ति से मराठा-मण्डल को बचाने के लिए, शिवाजी के छोटे लड़के राजाराम को राजसिंहासन पर बैठाने की कोशिश की। सम्भाजी पन्हाला में बन्द था उसकी मण्डली के लोगों ने इस समाचार को सम्भाजी से छिपाना चाहा। परन्तु यह असम्भव था। शिवाजी की मृत्यु का समाचार सम्भाजी को मिला। वह एकदम अपने इष्ट साथियों के साथ रायगढ़ पहुँच गया। उसने अपने अधिकार को प्रकट किया। विरोधियों तथा विपक्षियों का दमन किया। राजसिंहासन को अपने आधीन किया और अपने विश्वासी आदमियों को ऊँचे २ पदों पर नियुक्त किया।

राजाराम की मण्डली ने शिवाजी की मृत्यु के डेढ़ महीना पीछे राजाराम को गद्दी पर बैठा दिया। परन्तु इस मण्डली ने साधारण प्रजाजन को सन्तुष्ट करने का विशेष यत्न नहीं किया। महत्वपूर्ण स्थानों पर अपना विशेष लगाव नहीं किया। सम्भाजी ने पन्हाला किले में जनार्दन पन्त आदि विपक्षी लोगों की, गुप्तचरों के नाम लिखी चिट्ठियों को बीच में पकड़ लिया। गुप्तचरों को सामने बुलाकर उनसे ठीक ठीक समाचार मालूम किए। पन्हाला किले को अपने आधीन कर वहां प्रबन्ध किया। सम्भाजी ने कोल्हापुर के समीप जनार्दन पन्त सुमन्त के डेरे पर छापा मारा और उसे कैद किया। हमीरराव मोहिते, सेनापति सुमन्त की पराजय का हाल सुनकर, सम्भाजी के साथ मिल गया। दोनों ने रायगढ़ की ओर कूच किया। मोरोपन्त पिंगले मुकाबला करने के लिये आ रहा था, वह भी सम्भाजी के साथ मिल गया। इस प्रकार स्वपक्ष को प्रबल कर सम्भाजी ने रायगढ़ के किले में प्रवेश किया। वहां प्रवेश करते ही राजाराम के मुख्य सहायक राणा जी दत्तो आदि की सम्पत्ति को जब्त किया। लगते हाथ सोयराबाई (शिवाजी की धर्मपत्नी) के पास पहुँच कर उस पर पति को विष देने का दोष लगाया। सोयराबाई को दीवार में चुनवा दिया। उसे अन्न पानी कुछ भी नहीं दिया गया। तीन दिन बाद उसका देहान्त हो गया। १६८१ ई० के फर्वरी मास में सम्भाजी का अभिषेक संस्कार हुआ। सम्भाजी के दरबार में औरंगजेब का लड़का अकबर बाप से बिगड़ कर आया हुआ था। सम्भाजी ने उसे रायगढ़ में टिकाया। वहां राजाराम की मण्डली

के कुछएक लोगों ने सम्भाजी के विरुद्ध अकबर को षड्यन्त्र रचने के लिये प्रेरित किया। सम्भाजी को यह बात पता लगी। इस घटनासे उसके दिलमें यह बात बैठ गई कि शिवाजी के समय के पुराने कार्यकर्ता हमारे विरुद्ध हैं। इस लिए अपनी स्थिति को सुरक्षित करने के लिये उनका शरीरात करना आवश्यक है। राणाजी दत्तो तथा बालाजी आवजी जैसे पुराने अनुभवी सेवकों को हाथी के पैरों से रुंदवा कर मरवा दिया। अनुभवी राणाजी के मारे जाने से मराठा-मण्डल में सनसनी फैल गई। सम्भाजी का पुराने आदमियों के प्रति अविश्वास प्रतिदिन बढ़ता गया।

बालाजी आवजी ने सम्भाजी को राजगद्दी पर बैठाने के लिए पूरा सहयोग दिया था, परन्तु सम्भाजी ने अन्य आदमियो की बातों में आकर उसका भी घात कराया। सम्भाजी की इस घातक प्रवृत्ति को उसकी धर्मपत्नी येसूबाई ने रोका। जिस प्रकार मुगल इतिहास में नूरजहा ने जहागीर की बुरी प्रवृत्तियों का नियन्त्रण किया था, उसी प्रकार येसूबाई ने सम्भाजी को अनेक घातक पापो से बचाया। येसूबाई का चरित्र महाराष्ट्र के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। इस सच्चरित्र महिला के सामने सम्भाजी दबता था। यह महिला पिलाजी शिर्के वश की थी। दिल्ली से लौटते हुए १६६७ई० में सम्भाजी ने इसके साथ विवाह किया था। इसी का लडका शिवाजी शाहू छत्रपति के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुआ है। सम्भाजी के शासनकाल के प्रारम्भ मे महाराष्ट्र पर एक भयङ्कर वज्र टूट पड़ा। महाराष्ट्र मण्डल के कल्पक संस्थापक रामदास स्वामी १६८२ ई० फर्वरी मास में इस दुनिया से चल बसे।

मराठा-मण्डल पर से रामदास का हाथ उठना था कि उसमे राजसी प्रवृत्तियों का अधिकार बढ़ने लगा। इस समय मराठा-मण्डल की स्थिति बड़ी नाजुक थी। छत्रपति सम्भाजी की चढ़ती जवानी थी। सम्भाजी कार्यक्षेत्र में नया था। उसने उत्तरदायिता के बोझ को पहिले कभी नहीं उठाया था। पुराने अनुभवी सरदारों पर उसे विश्वास नहीं था। शाहजादा अकबर को दक्षिण में पहुँचा देखकर औरंगजेब अपनी सेनायें लेकर महाराष्ट्र में आ पहुँचा। पुर्तगीज़ लोग मौका देखकर कभी मुगलों के साथ, कभी मराठों के साथ मिलकर महाराष्ट्र-मण्डल में प्रवेश करने की कोशिश कर रहे थे।

पश्चिमी तट के सीदी लोग मुग़ल बादशाहों की सहायता से मराठी सेनाओं तथा प्रजाओं को हैरान कर रहे थे। औरंगजेब ने बीजापुर गोलकुण्डा आदिलशाही तथा कुतुबशाही को तहस-नहस कर कर्नाटक में अपनी सेनायें भेज कर वहां के मराठा शासन में खलल मचाने में कमी नहीं की। मराठा-मण्डल में धीरे २ अन्तःकलह बढ़ रहा था। इस विपरीत स्थिति में, अन्दर-बाहर चारों ओर शत्रुओं से घिरे हुए सम्भाजी ने जो कुछ किया वह सराहनीय ही नहीं, अपितु इतिहास में अद्वितीय है। सम्भाजी में कितने ही दोष हों—परन्तु यह कहने में तिल-मात्र भी संकोच नहीं कि सम्भाजी ने अपने जीते जी मराठा-मण्डल के भगवें झण्डे को गिरने नहीं दिया, और मराठा शक्ति की आन में बट्टा नहीं लगने दिया। सम्भाजी ने अपने उत्तरदायित्व को समझा और इसी राष्ट्रीय कर्तव्य की लगन में उसने सब व्यसनों को कुछ समय के लिए तिलाञ्जलि दे दी। शत्रुओं की भारी संख्या थी, लड़ाई चौमुखी थी। सम्भाजी को दम लेने तक की फुरसत नहीं थी, अपने व्यसनों की चाह को पूरा करने की तो क्या होनी थी? सम्भाजी ने अपने ९ वर्ष के शासनकाल में स्वदेश में शत्रुओं का पैर नहीं जमने दिया। मरते दम तक छत्रपति के राजकीय तेज को मन्द नहीं होने दिया। सम्भाजी ने पिता के पग-चिह्नों पर चलते हुए भवानी की पूजा करने में कोई कसर नहीं की।

—————

: २ :

सम्भाजी की विजय-यात्रा

शिवाजी ने अन्तिम दिनों में सीदियों को पराजित करने का निश्चय किया था, वह इसमें सफल न हो सका था। सम्भाजी ने अपनी जलसेना को बढ़ा कर १६८१ ई० के लगभग सीदियों पर आक्रमण किया। कई जगह शत्रु को पराजित भी किया, परन्तु १६८२ में औरंगजेब ने उत्तर की ओर से मराठी सेना पर आक्रमण किया। साथ ही उसने सीदियों को जलसेना बढ़ाने के लिये सहायता दी। अंगरेज और पुर्तगीज़ लोगों ने भी गुप्त रूप से मराठों के शत्रुओं

को सहायता दी। सम्भाजी ने अंगरेजों के वकील के साथ रायगढ़ पर १६८२ ई० में व्यापारी सन्धि की। औरंगजेब ने पुर्तगेजों को मराठा राज्य लूटने की खुली छुट्टी दे दी। औरंगजेब का लड़का अकबर ईरान जाना चाहता था। उसने गोवा की खाड़ी में जहाज़ खरीदने का प्रबन्ध किया। लड़ाई की तय्यारी करने के लिये सम्भाजी ने अकबर के साथ अपने गुप्तचर भेजने शुरू किए। मराठे गुप्तचरों ने पुर्तगेजों को अपने जाल में फंसाना चाहा। पुर्तगेज लोग धन-प्राप्ति की आशा से गोवा खाड़ी को छोड़ कर फोंड़ा की ओर बढ़े। सम्भाजी ने फोंड़ा पर एकदम आक्रमण कर पुर्तगेजों को चकित किया। पोर्चुगीज सेना के अनेक लोग मारे गये। वे लोग मराठों के सामने देर तक नहीं टिक सके। सम्भाजी के साथ सन्धि करने के लिये पुर्तगेजों ने मनरो नाम के दूत को भेजा। सम्भाजी ने दूत को अपनी तलवार दिखा कर कहा कि इस भवानी तलवार को याद रखो। मैंने इस तलवार द्वारा ही अपने विद्रोही सरदारों का शिरश्छेद किया था। मेरे इस विश्वसनीय दूत को अपने साथ ले जाओ, गोवा में सन्धि की शर्तें निश्चित करो। परन्तु सन्धि की शर्तें निश्चित नहीं हुईं। सम्भाजी ने फोंडा में अपना किला बनवाया। गोवा के उत्तरी प्रदेशों को लूटा। इधर औरंगजेब का जोर बढ़ रहा था। सम्भाजी उधर झुका, पुर्तगेज अपने षड्यन्त्रों में सफल न हो सके। औरंगजेब दिल्ली में बैठ कर, दक्षिण में सेनापतियों द्वारा अपना प्रभाव जमाना चाहता था, परन्तु उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। आखिर १६८१ ई० में वह स्वयं अपने पुत्रों के साथ बड़ी भारी सेना लेकर दक्षिण में आया। बागलाण के मैदानों में प्रत्यक्ष मुकाबले में मराठों की सेना पराजित हुई, परन्तु जंगलों और पहाड़ियों में छुपे हुए मराठों ने छापे मार कर अज़ीम की सेना को हैरान कर दिया। बादशाह ने अजीम को दिल्ली बुला कर शाहाबुद्दीन खां को उधर भेजा। इधर बागलाण की पराजय का हाल सुनकर सम्भाजी स्वयं सेना लेकर उधर बढ़ा। रामसेज के किले पर मुगल पराजित हुए। उत्तर दिशा में मुअज्जम ने कल्याण प्रान्त में सम्भाजी को तंग करना शुरू किया। मुगलों की इस सेना के लिए सूरत की ओर से जहाज पर रसद आ रही थी। मराठों ने पुर्तगेजों के साथ मिलकर जहाजों को लूटा। औरंगजेब ने मुअज्जम को इस अड़चन से बचाने के

लिए, मराठों को तंग करने के लिये, इसी प्रान्त में रणमस्तखान और रणदुल्लाखां को भेजा।

सम्भाजी ने बिजली की तरह एकदम उन पर धावा कर खजाना और रसद लूट ली। कोंकण से लौटती हुई मुअज्जम की सेना में बीमारी फैल गई। औरंगजेब ने मुअज्जम की सेना को बचाने के लिये सरदारो को भेजा; और स्वयं अहमदनगर पहुँच गया। मुअज्जम १६८४ ई० में कृष्णा नदी के किनारे पड़ा रहा। शत्रुओं से घिरे हुए सम्भा ने १६८५ ई० में वहाँ पहुँचकर शहर को लूटा। रायगढ़ के राजकोष को परिपूर्ण किया।

मुगलों की शक्ति का केन्द्रस्थान बुरहानपुर था। सम्भाजी ने १६८५ ई० के शुरू में ही १० हजार सेना भेजकर बुरहनापुर तक का प्रदेश अपने आधीन किया। औरंगजेब ने बहादुरखान को इस मराठी सेना का पीछा करने के लिये भेजा। कामबख्श औरंगजेब का लाड़ला पुत्र था। वह युद्ध के मैदान में घबरा गया। सेना में खलबली मच गई। मराठों ने चारों ओर से लूट मचा दी। मराठा-मण्डल ने विजय लक्ष्मी के साथ २ सम्पत्ति को भी प्राप्त किया। औरंगजेब निराश होकर बीजापुर और गोलकुण्डा की ओर झुका। १६८६ ई० और १६८६ई० में दोनों राज्य मुगलबादशाही में मिला लिये गए। औरंगजेब उधर मराठा-मण्डल को दबाने में सफल नहीं हो सका। इन दोनों राज्यों को जीत कर उसने कर्नाटक की ओर अपनी सेनाओं की बागडोर मोड़ी। १६८६ ई० में वाई की लड़ाई में मराठों का अनुभवी सेनापति हमीरराव मारा गया। इस सेनापति ने निस्पृहभाव से शिवाजी तथा सम्भाजी के समय में किसी पार्टी में शामिल न होकर महाराष्ट्र के यश को उज्ज्वल किया था। कर्नाटक को मुगलों के आक्रमण से बचाने के लिये मोरोपन्त और सन्ताजी घोरपड़े को १० हजार सेना लेकर जिंजी की ओर भेजा। देर तक लड़ाई होती रही। यदि सम्भाजी इधर सेना न भेजता तो बहुत सम्भव था कि व्यँकोजी के उत्तराधिकारी, बीजापुर के मुगल-सरदारों के प्रभाव में आ जाते।

औरंगजेब ने अपनी सेना को वापिस बुला लिया। उत्तर महाराष्ट्र में सम्भाजी विशालगढ़ और पन्हाला किले के बीच में था। वहीं से वह शत्रु की गति को रोक रहा था। इधर मुगलों की लौटती सेना को मराठों ने परेशान

किया। कर्नाटक में मराठों की पताका फहराती रही। कोंकण के प्रदेश में औरंगजेब ने कई बार पन्हाला किले को घेर कर सम्भाजी को पराजित करना चाहा, परन्तु वह इसमें सफल न हो सका। सम्भाजी अपनी सेनाओं की विजय यात्राओं का समाचार सुन कर निश्चिन्त हो पन्हाला तथा विशालगढ़ के बीच संगमेश्वर स्थान पर टिका हुआ था। जब औरंगजेब को यह मालूम हुआ तो उसने मुकरबखान को हज़ार सवारों के साथ संभाजी को कैद करने के लिये भेजा। संभाजी के गुप्तचरों ने मुकर्रबखान के आने का समाचार सम्भाजी तक पहुंचाया। संभाजी ने इस पर विश्वास नहीं किया। मुकर्रबखान सेना के बड़े भाग को पीछे रख कर २०० आदमियों को साथ लेकर आगे बढ़ा। संभाजी के कृपापात्र कलुशा ने खान का मुकाबला किया। कलुशा की दायीं बांह पर तीर लगा। संभाजी उसकी सहायता के लिये आगे बढ़ा। कलुशा तो कैद हो गया संभाजी देवमन्दिर में छिप गया। मराठों ने पन्हाला किले को बचाना चाहा परन्तु मुगलों की बड़ी सेना के सामने वे न टिक सके। संभाजी वहाँ सपरिवार था। संभाजी को हाथी पर बैठाकर मुकर्रबखान शोलापुर की छावनी में पहुँचा। संभाजी ने औरंगजेब की शरण में जाना स्वीकार नहीं किया। कलुशा का शिरच्छेद किया गया। संभाजी को मुसलमान बनने के लिये कहा गया। उसने जवाब दिया "अपनी लड़की मुझे व्याह दो"। औरंगजेब यह सुन कर जलकर राख हो गया। औरंगजेब ने संभाजी की आँखें तथा जीभ निकलवा दी। संभाजी ने इन सब कष्टों को को धैर्य पूर्वक सहा परन्तु मुसलमान होना स्वीकार नहीं किया। यदि सम्भाजी निरा व्यसनी ही होता तो वह अपनी व्यसनता की चाह को पूरा करने के लिये धर्म छोड़ने में संकोच न करता। संभाजी ने अपनी इस अनुलनीय सहनशीलता से औगरंजेब को बता दिया कि हिन्दू व्यसनी होता हुआ भी केवलमात्र काम वासनाओं को पूरा करने के लिये स्वजातीय अभिमान को नहीं छोड़ सकता

औरंगजेब ने मरठा-मण्डल पर अपना आतंक जमाने के लिये संभाजी का अंग छेद किया था, परन्तु इस घटना ने संभाजी को मराठा जाति का श्रद्धेय शहीद बना दिया। मराठा-मंडल ने अपने राजा के रक्तपात का

बदला लेने का दृढ़ निश्चय किया। सबने तुच्छ भेद भावों को छोड़ कर इस जातीय अपमान का बदला लेने का प्रण किया। इस भयंकर अत्याचार के कारण विक्षुब्ध मराठा-मंडल ने एक-स्वर होकर औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध का शंख फूंक दिया।

: ३ :

अदम्य देशभक्त

सम्भाजी का वध करके औरंगज़ेब रायगढ़ की ओर बढ़ा। रायगढ़ में येसुबाई राजपरिवार के साथ सुरक्षित थी। सम्भाजी के समय, उनके जीवन के काल में, महाराष्ट्र में अन्तःकलह की आग सुलगनी शुरु हुई थी। परन्तु औरंगज़ेब के अत्याचारों ने उन्हें सावधान किया और सुझाया कि यदि अपने राष्ट्र की रक्षा करनी है तो परस्पर की ईर्ष्या और अविश्वास के भावों को दूर करो। इस नये संकट ने मराठों में फिर से राष्ट्र भक्ति के भावों को संचारित किया। रायगढ़ क़िले में राजमाता येसूबाई तथा अन्य मराठे सरदार एकत्रित थे। सम्भाजी का लड़का शिवाजी व शाहूजी भी उपस्थित था! परन्तु वह अभी बालक था। राज्य जैसे गुरुतर-कार्य को वह संभाल नहीं सकता था।

येसूबाई ने एकत्रित मण्डली को इस प्रकार सम्बोधित किया:— "तुम सब सरदारों को चाहिये कि राजाराम को अपना नेता स्वीकार करो। उसकी अध्यक्षता में रायगढ़ क़िले से बाहर निकल जाओ। बाहर जाकर औरगज़ेब की सेना को पराजित करो। मैं अपने पुत्र के साथ यहीं रहूंगी। जब तुम लोग किसी दूसरे स्थान में छत्रपति के सिंहासन को सुरक्षित कर लोगे तो मैं भी आ जाऊंगी। वीरो! पारस्परिक द्वेष-भावों को छोड़कर मातृ भूमि की आन को सुरक्षित करने के लिये दृढ़ निश्चय के साथ वीरों का बाना पहिनो। जान पर खेल जाओ।" अपने आपको आपत्ति में डाल कर; रक्षकों को राष्ट्र-रक्षा के लिये भेजने वाली वीर माताओं के आशीर्वाद ही देशमें

स्वराज्य और राम राज्य का सुख स्वप्न पूरा करते हैं। राजाराम ने माता के आदेश को सिर माथे लिया और कहा :—

"राज्य का अधिकारी शिवाजी है। मैं उनका प्रतिनिधि होकर राष्ट्र को शत्रुओं के आक्रमण से बचाऊंगा। आप लोग मेरी आज्ञा के अनुसार चलते हुये विशेष पराक्रम के साथ औरंगज़ेब को जीतने में पूर्ण सहयोग दें"। वीर पुत्र ने वीर माता के सामने सिर झुकाया। पराक्रम और विनय के पवित्र सङ्गम में उपस्थित सरदारों ने स्नान किया। सब ने देशभक्ति की गङ्गा में स्नान कर स्वर्ग-यात्रा की तय्यारी शुरू की; और निश्चय किया कि या तो पापी अत्याचारी का दमन कर इस भूतल पर स्वर्गीय राज्य को स्थापित करेंगे अथवा सीधे भवानी की अर्चना करते हुए स्वर्गधाम पहुँचेंगे। मरेंगे या मारेंगे, राष्ट्र के शत्रु का नाश किये बिना न लौटेंगे। इस दृढ़ निश्चय के साथ सब सरदारों ने रायगढ़ से प्रस्थान किया। येसूबाई अपने पुत्र के साथ वहीं रही। राजाराम के परिवार को रायगढ़ के क़िले में भेज दिया। रायगढ़ का क़िला शिवाजी के अजेय दुर्गों में से एक था, इसमें शत्रु सुगमता से प्रवेश नहीं कर सकता था। मराठे वीरों ने प्रल्हाद निराजी के नेतृत्व में १० महीने तक मुगलों की दाल नहीं गलने दी। मुगलों का सेनापति इत्तिफादखान निराश हो गया। आखिर मुगल सरदार ने सूर्याजी पिसड नाम के देशमुख सरदार को वाई की देशमुखी देने का वचन दिया। उसने क़िले के दरवाजे खोल दिये। शत्रु क़िले में घुस गये। येसूबाई इस घटना से जरा भी नहीं घबराई। खान ने रायगढ़ के छत्रपति के सिंहासन को टूक टूक कर दिया। सम्पत्ति लूट ली। येसूबाई को पुत्र सहित औरंगज़ेब के सामने पेश किया। सूर्याजी पिसड़जी भी दरबार में लाया गया। औरंगज़ेब के कहने पर वह मुसलमान बन गया। परन्तु उसके परिवार के अन्य लोग आजकल हिन्दू हैं। उसे वाई की देशमुखी मिल गई। इस राष्ट्र-द्रोही धर्म भ्रष्ट सरदार के कारण येसूबाई तथा शिवाजी व साहूजी १६ साल तक बादशाह के दरबार में नजरबन्द रहे। औरंगज़ेब की बड़ी लड़की रोशनआरा की शिवाजी के वंशजों पर विशेष प्रीति थी। येसूबाई तथा उसके पुत्र के लिए [illegible] ने सब प्रकार की सहूलियतें उपस्थित करने में कोई कमी

नहीं की। बादशाह की कैद में रहकर भी येसूबाई ने राजाराम के साथ पत्र-व्यवहार जारी रखा। शिवाजी के समय के भकाजी हुलरे और बंकी गायकवाड़ नाम के दो विश्वस्त सरदारों द्वारा येसूबाई राजाराम तक अपना संदेश पहुँचाती रही। वीरमाता ने अपने सतीत्व की रक्षा करते हुये राष्ट्र की रक्षा करने में पूरा सहयोग दिया। औरंगज़ेब ने इस नज़रबन्द राजपरिवार के द्वारा कई बार मराठा-मण्डल में अशान्ति व फूट पैदा करनी चाही परन्तु इसमें सफल न हो सका। औरंगज़ेब की उमड़ती हुई सेनाओं को रोकने के लिए मराठ वीरों ने कमाल कर दिया। महाराष्ट्र में रामचन्द्र पन्त को नियुक्त किया गया। राजाराम कर्नाटक की ओर चला गया और जिंजी में राजधानी स्थापित की। औरंगज़ेब ने कर्नाटक जीतने से पहले महाराष्ट्र को जीतने का सकल्प किया। रामचन्द्रपन्त औरंगज़ेब की इस चाल को ताड़ गया। उसने विशालगढ़ आदि का पक्का प्रबन्ध किया। कोंकण प्रांत में मोर्चाबन्दी की, पहाड़ी जंगलों तथा गुप्त स्थानों में मराठा मंडलियों को टिका कर गुरिल्ला-आक्रमण द्वारा मुगल सेना को महाराष्ट्र में टिकने नहीं दिया। मध्य दक्षिण में सन्ता जी घोरपडे और धनाजी जाधव ने छापे डाल कर औरंज़ेब के सरदारों को हैरान कर दिया। मावले लोग फिर से पहाड़ों से नीचे उतर कर मराठी सेना में भर्ती होने लगे। मुगलों के बीसियों क़िले सर कर लिए गए। इसी समय एक नई अड़चन पैदा हो गई। राजाराम की स्त्री ताराबाई विशालगढ़ में थी? १६६१ ई० में उसके शिवाजी नाम का पुत्र पैदा हुआ?

येसूबाई को जब यह समाचार मिला तो उसने राजाराम को कहला भेजा कि तुम अपने परिवार को विशालगढ़ से हटाकर जिंजी ले जाओ। हम लोग पता नहीं कब छूटें। तुम राजचिह्न धारण करो। छत्रपति के राजछत्र की रक्षा करो। पर प्रश्न यह था कि ताराबाई को ज़िंजी कैसे पहुँचाया जाय। सारे महाराष्ट्र में मुगल सेनाओ का जाल बिछा हुआ था। आखिर निश्चय किया गया कि ताराबाई को राजपुरी की ओर से समुद्र द्वारा जिंजी पहुँचाया जाय। सारी मंडली यशवन्तगढ़ की बन्दरगाह से होकर जिंजी पहुंच गई। राजाराम की द्वितीय स्त्री राजसबाई के एक सन्तान हुई। राजाराम

रायगढ़ से बाहर निकला। रायगढ़ से नीचे पन्हाला और विशालगढ़ के मध्य में सब मराठे सरदार एकत्रित होने लगे। बादशाह ने मराठा शक्ति को छिन्न-भिन्न करने के लिए पन्हाला की मराठी सेना पर आक्रमण करने के लिये सेनाएं भेजीं। मराठों ने बादशाह की सेना का प्रत्यक्ष मुकाबला नहीं किया अपितु छापे डालकर उन्हें हैरान किया। खाफीखान लिखता है कि धनाजी जाधव और सन्ताजी जाधव ने मुगल सेना में तबाही मचा दी। इस्माईलखां, सर्जखान जैसे अभिमानी मुगल सरदारों को सन्ताजी ने कैद किया और जमानत लेकर उनका गर्वगलित किया। कर्नाटक के सीमान्त पर निसारखां और तुहव्वरखान सरदारों का भी सन्ताजी ने पराभव किया। रायगढ़ में औरंगज़ेब की शक्ति को कम करने के लिये सन्ताजी ने बादशाह की छावनी पर भी छापा डाला। धनाजी जाधव के दो हज़ार सिपाहियों साथ लेकर सन्ताजी तुलापुर की ओर गया। रात को छावनी से तीन मील की दूरी पर बादशाह के सरदारों से भेंट हुई। सन्ताजी ने कहा कि मैं बादशाही सरदार शिर्के और मोहिते की ओर से छावनी में काम के लिये गया था, अब लौट रहा हूँ। उन सरदारों के चले जाने पर सन्ताजी ने बादशाही सेना में प्रवेश किया। मौका देखकर, बादशाह के तम्बू तथा डेरे उखाड़ फेंके। सोने के कलशे लूट लिए। एकदम सेना में खलबली मच गई। सन्ताजी साथियों सहित सिंहगढ़ के जंगलों में छिप गया। लगते हाथ सन्ताजी ने रायगढ़ पर घेरा डालने वाले इत्तिकादखान पर भी छापा डाला। राजाराम सन्ताजी के पराक्रम से बहुत सनतुष्ट हुआ। धनाजी जाधव भी बेकार कहीं बैठा था। फलटण के मैदान में मुगलई सरदार रणमस्तखान डेरा डाले पड़ा था। धनाजी ने अचानक आक्रमण कर उसकी ५ तोपें छीन लीं। इतने में समाचार आया कि रायगढ़ किला शत्रु के हाथ में चला गया। बादशाही फौज ने पन्हाला पर आक्रमण किया है। पन्हाला भी जीता गया। यही निश्चय किया गया कि राजाराम विशालगढ़ की घाटियों में से निकल कर जिंजी पहुंचे। रामचन्द्र महाराष्ट्र में डटकर शत्रु की गति को रोके। सन्ताजी और धनाजी, मध्य मैदान में उथल पुथल मचावें। इन दोनों सरदारों के अचानक आक्रमण से मुसलमान लोग थर थर कांपते थे, स्वप्न

में भी उन्हें सन्ताजी और धनाजी ही दिखाई देते थे। इन वीरों ने औरंगज़ेब की सब आशाओं को विफल कर दिया।

राजाराम के जिंजी पहुँचते ही बादशाह ने ज़ुल्फीकारखान को जिंजी का घेरा डालनेके लिये रवाना किया। इधर राजारामने महाराष्ट्र में रामचन्द्र पन्त त्र्यम्बक और उसके लड़के शंकराजी की सहायता से महाराष्ट्र की रक्षा की। राज्य कर वसूल किया। १६६२ ई० में औरंगज़ेब ने रायगढ़ का क़िला जीत लिया था। शंकराजी ने एक रात को पालतू गोह की सहायता से क़िले में प्रवेश कर क़िले को आधीन किया। रामचन्द्र पन्त सतारा में रह कर मुसलमानों को तंग कर रहा था। शंकराजी आदि के गुप्त आक्रमणों से तंग आकर बादशाह ने अपनी सेना का रुख जिंजी की ओर किया। सन्ताजी और धनाजी जाधव राजाराम को जिंजी पहुँचा कर लौट रहे थे। उनके आने से रामचन्द्र पन्त आदि युद्ध करने वाले सरदारों का उत्साह द्विगुणित हो गया। इन दोनों सरदारों ने वाई और मिरज प्रदेशों को जीत कर बादशाह की सेना को जिंजी जाने से रोका।

यह जिंजी का घेरा १६६१—१६६८ ई० तक जारी रहा। इस सप्तवार्षिक युद्ध में मराठों ने धूप वर्षा आंधी की पर्वाह न करते हुए राष्ट्र के लिये सब कुछ निछावर कर बादशाही सेना को कहीं आराम से टिकने नहीं दिया। आज यहां है कल वहां है, पता नहीं कब कहां से आक्रमण हो जाय। महाराष्ट्र के पहाड़ जंगल तथा घाटियां मराठा मण्डलियों का आश्रय स्थान बनी हुई थीं। बड़ी सेनाएं भी इनका दमन नहीं कर सकीं। इन इने गिने दिन रात नंगी पीठ के घुड़सवारों ने औरंगज़ेब की सजी सजाई बादशाही सेना को निकम्मा कर दिया। एक २ करके पन्हाला तोरण आदि सब क़िले फिर से मराठों के हाथ में आगए।

इस हलचल के समय औरंगज़ेब ने १६६५ ई० में ब्रह्मपुरी में (भीमानदी के किनारे पर) अपनी छावनी तैनात की। सोच विचार के बाद उसने अपने पुत्र कामबख़्श और वज़ीर आसदखान को ज़ुल्फीकारखां की सहायता के लिये जिंजी की ओर भेजा। ज़ुल्फीकारखां और कामबख़्श की

आपस में नहीं बनी। कामबख्श ने अपनी मूर्खता से सरदारों को नाराज़ किया। गुप्त रूप से मराठों के साथ सन्धि करनी शुरू की। जब जुल्फीकारखां को इसका पता लगा तो उसने एकदम कामबख्श को कैद कर लिया। बाहर से धनाजी जाधव इस मुगलाई सेना को तंग कर रहा था। इधर मुगल सेना में पारस्परिक अविश्वास और अन्तःकलह बढ़ रही थी। परन्तु कासमखान आदि सरदारों ने मैसूर के राजा चिकदेव के साथ मिल कर बैंगलौर पर मराठों का अधिकार नहीं होने दिया। जुल्फीकारखान ने अन्तिम दम तक मराठों को हैरान करने के लिये १६६६ ई० में तंजोर की ओर सवारी कर उधर से जिंजी पर अधिकार जमाने का यत्न किया। संताजी घोरपड़े ने कर्नाटक प्रान्त के सरदार कासमखान को चारों ओर से घेर कर दुदेरी के संग्राम में विवश किया। उसने लाचार होकर निराशा की हालत में आत्मघात किया। संताजी ने हाथ में आए हुए सरदारों को उचित दण्ड देकर छोड़ दिया। शत्रु की सम्पत्ति को हस्तगत किया। जिन्होंने अपना हिस्सा नहीं दिया, उन्होंने अपनी ओरसे एक२ आदमी जमानत के तौर पर सन्ताजी के पास रखा। इस लड़ाई में मराठों ने ५० लाख की सम्पत्ति प्राप्त की, इसके बाद राजाराम ने धनाजी जाधव तथा अन्य सरदारों को जिंजी में बुलाया। ये सब सरदार गुप्त वेश में ही शत्रु की आंखों से बच कर राजाराम के पास पहुँचे। एकत्रित मण्डली ने निरन्तर युद्धप्रसंगो के कारण शिथिल हुई राज्य-व्यवस्था को फिर स्थापित किया। अष्ट प्रधान मंडल के नये अधिकारी चुने गये। अपनी इन विजय यात्राओं को सफल करने के लिए, प्रजा में महाराष्ट्र के छत्रपति का दबाव बैठाने के लिए आवश्यक समझा कि राजाराम राजछत्र धारण करें। नियम-पूर्वक राज-चिन्ह और राजछत्र धारण करके राजाराम ने औरंगज़ेब को बताया कि यद्यपि असली राज्याधिकारी कैद में हैं परन्तु छत्रपति का सिंहासन मराठों के पास ही है। औरंगज़ेब इस राज्याभिषेक की घटना को सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने जुल्फीकारखानको हुकम दिया कि वह जल्दी क़िले को सर करे। जुल्फीकारखान यत्न करने पर भी सफल न हो सका। परन्तु १६६७ ई० में महाराष्ट्र में कुछेक दुर्घटनाएं हो गईं। मराठों का वीर सेनापति प्रह्लादपन्त भी इस लोक से चल बसा। अब कर्नाटक का

प्रबन्ध शिथिल होने लगा। राजाराम पर ईर्ष्यालु सरदारों का ज़ोर चल गया। परास्परिक ईर्षा की आग में धनाजी जाधव के सरदारों ने अचानक सन्ताजी घोरपड़े का खून किया। मराठों की अन्तःकलह का हाल औरंगज़ेब को पता लगा। उसने मौके से फायदा उठाकर सारा जोर जिंजी की तरफ लगा दिया। आखिर जुल्फीकारखान ने जिंजी के क़िले को घेर लिया। राजाराम क़िले से निकल गया। खंडोबल्लाल चिटणवीस ने जिंजी के पड़ोसी शिर्के सरदारों के साथ मिल कर राजाराम तथा उसके परिवार को सुरक्षित रूप में सतारा पहुँचा दिया। औरंगज़ेब ने उधर राजाराम का पीछा करने के लिये अज़ीमशाह के साथ सेनाएं भेजीं। राजाराम ने बीच में ऐक दो बार बादशाह की छावनी पर छापे डाल कर शाहजी तथा येसूबाई को छुड़ाने की कोशिश की परन्तु वह इसमें सफल न हो सका। १६६८ ई० में राजाराम ने सतारा में मराठा मंडल को फिर से सङ्गठित कर रामचन्द्रपन्त को अपना मुख्य सलाहकार बनाया। १६६८ ई० में तालनेर के मैदान में मराठों और मुगलों की भयंकर लड़ाई हुई, मराठा सरदारों ने मुगल इलाके में आक्रमण करने शुरू किये। तब औरंगज़ेब ने तालानेर स्थान पर हुसेनअली खान को मराठी सेना का पीछा करने के लिये भेजा। मराठी सेना ने तालानेर से दो कोस की दूरी पर हुसेनअली के ३०० आदमियों को घेर कर परलोक भेजा। हुसैनअली के तीन जगह भयंकर चोट लगी, वह हाथी से गिर पड़ा। शत्रु का कैदी बना। मराठों ने हुसैनअली की अनुमति से तन्दुरबार की प्रजाओं को लूटकर अपना रुपया वसूल किया। इधर राजाराम ने १६६६ ई० में सतारा के उत्तर की ओर चढ़ाई की। वह विजय प्राप्त करके लौट रहा था कि जालना में मुग़लों से फिर उसका मुकाबला हुआ। यहां भी शत्रु का दमन करके राजाराम जल्दी २ वापिस आ रहा था कि रास्ते में उसे बुखार हो गया। सिंहगढ़ पहुँचने पर लहू की उलटियां आने लगीं। छाती से भयंकर धड़कन उठने लगी। कुछ दिन बीमार रह कर १७०० ई० के मार्च महीने में छत्रपति राजाराम इस लोक से चल बसा। अन्तकाल में राजाराम ने एकत्रित मंडली को इस प्रकार सम्बोधित किया—"मेरी मृत्यु के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन की गति में कमी नहीं आनी चाहिये।

शिवजी को कैद से मुक्त कराने का यत्न करो। रामचन्द्र पन्त की आज्ञा में रह कर छत्रपति की शान को कायम रखो।" राष्ट्ररक्षक राजाराम के बाद रामचन्द्र पन्त ने अपने स्वामी की आज्ञा पालन करने में कोई बात उठा नहीं रखी। उसने निश्चय किया था कि औरंगज़ेब की कैद से शाहजी को छुड़ा कर महाराष्ट्र छत्रपति सिंहासन की रक्षा करेंगे। यदि मराठा-मंडल औरंगज़ेब के कैदी शाहू की उपेक्षा करके नया राजा चुन लेता तो औरङ्गज़ेब को मराठा शक्ति में फूट पैदा करने का एक और साधन मिल जाता। पहिले मुगल बादशाहों ने इसी नीति का अवलम्बन कर राजपूतों में फूट फैलाई थी।

रामचन्द्र पन्त ने औरंगज़ेब की इस चाल को सफल नहीं होने दिया। राजाराम ने भी इसी बात को ध्यान में रखते हुए येसूबाई के पुत्र शाहूजी का प्रतिनिधि बनकर ही काम किया था। परन्तु राजाराम की मृत्यु के बाद रामचन्द्र पन्त के मुकाबले में राजाराम की धर्मपत्नी ताराबाई ने अपने लड़के शिवाजी को छत्रपति बनाने का यत्न शुरू किया। ताराबाई ने कहा कि राज्य के उत्तराधिकारी राजाराम के वंशज हैं, उसने पुत्रमोह के कारण राष्ट्रीय हित पर विचार नहीं किया। मराठा मंडल में दो पार्टियां बन गईं। एक ताराबाई के पक्ष की, दूसरी शाहू या रामचन्द्र पन्त की। ताराबाई ने अपने अल्पायु पुत्र शिवाजी की ओर से परशुराम त्र्यम्बक को प्रतिनिधि बनाया। औरंगज़ेब को मराठा मंडल की प्रत्येक हरकत मालूम रहती थी। औरंगज़ेब ने जाली चिट्ठियां लिख कर ताराबाई के दिल में यह भाव बिठा दिया कि रामचन्द्र पन्त तुम्हारा दुशमन है! औरङ्गज़ेब ने इस पारस्परिक कलह के समय अपनी इच्छा को पूरा करने का निश्चय किया। सेनापतियों तथा सरदारों को हुकम दे कर वह थक चुका था। सरदारों पर उसे विश्वास न रहा था। आखिर स्वयं १६९९ ई० में सेनापति बनकर ब्रह्मपुरी से निकला। राजाराम की मृत्यु के कारण उसका साहस दुगुना हो गया। एक के बाद एक २ करके मराठा मंडल के मुख्य २ क़िले जीत लिए। परन्तु औरंगज़ेबकी सेनामें पहिलेकी सी तेज़ी नहीं रही थी। सतारा, पन्हाला, बहादुर गढ़ आदि क़िले मराठों से छिन गए। प्रत्यक्षतः मराठों

की शक्ति क्षीण होने लगी। परन्तु इन क़िलों की विजय के कारण औरंगज़ेब की बेचैनी दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी, क्योंकि एक क़िले को जीतने में औरंगज़ेब का जितना नुकसान होता था; उसके मुकाबले में मराठों का तिलमात्र भी नुकसान नहीं होता था। मराठे समझते थे कि औरंगज़ेब दक्षिण में देर तक टिक नहीं सकता। व्यर्थ का जन नाश न हो—इसलिए वे स्वयं क़िलो को छोड़ जाते थे। औरंगज़ेब क़िलों को जीत लेता था, परन्तु देर तक उन्हें संभाल नहीं सकता था। मराठे लोग उसे चैन से नहीं बैठने देते थे। उधर दिल्ली दरबार में सरदार स्वतन्त्र हो रहे थे। बाप को सठियाता देखकर लड़के भी गुप्तरूप से मराठों को पराजित करने के स्थान पर अपनी २ सेनाओं को बढ़ाने की फिकर में थे। औरंगज़ेब ने शाहू के नाम से बनावटी चिट्ठियां भेजकर मराठा सरदारों में फूट पैदा करनी चाही। मराठों ने धीरे २ सब क़िले फिर जीत लिए। अण्णा पन्त ने वैरागी वेष धर कर सतारा किला जीतने में कमाल किया। सिंहगढ़ और पन्हाला क़िला भी मराठों के पास आ गया। औरंगज़ेब को यह समाचार सुनकर बहुत दुःख हुआ। अविश्वासी, असन्तुष्ट महत्वाकाङ्क्षी सरदारों से घिरा हुआ बादशाह मराठों के बीच में घूमता रहा, उसकी बेगम तथा लड़की ने आगरा की ओर लौटने के लिए कहा, परन्तु हठी ने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा।

सब ओर मे निराशा और विद्रोह के समाचार सुनकर अशान्त औरंगज़ेब ने अहमदनगर में २० फरवरी के मध्याह्न में १७०७ ई० में अंतिम श्वास लिया। बड़े२ राजपूत सरदार सेनापति हीन मराठा मंडली को नहो दबा सके। औरंगज़ेब ने इस मराठा मण्डली को दबाने के लिये अपना राज-कोष लुटा दिया सब कुछ खो दिया। परन्तु राष्ट्रभाव से प्रेरित होकर उच्च आदर्शों के लिये जीने मरने को तय्यार, मराठा वीरो के सामने औरंगज़ेब नहीं टिक सका। विजय या पराजय साज-सामान पर आश्रित नहीं होती, यह तो लड़ने वालो के दिलों पर निर्भर करती है। वीर हृदयों को कोई नहीं हरा सकता। नैपोलियन की छोटी छोटी सेनाओं ने रूस के ज़ार की बड़ी सेनाओं को पराजित किया। ग्रीस के वीरो ने परशिया की प्रचण्ड

सेनाओं को हराया। सिकन्दर ने अपने इने-गिने वीरों की सहायता से मध्य एशिया के मैदानों में अपनी विजय के स्मारक स्तम्भ खड़े किये। राणा प्रताप ने मुट्ठीभर राजपूतों की सहायता से शाहंशाह अकबर के छक्के छुड़ा दिये। संसार का इतिहास ऐसे अनेक ज्वलन्त उदाहरणों से जगमगा रहा है। राजाराम की इस वीर मण्डली ने भी प्राणों को हथेली पर रख कर संसार को बता दिया है कि इस भारतभूमि में स्वतन्त्रता और स्वराज्य के लिये बलि होने वाले वीरों की कमी नहीं। ये वीर—भारतीय इतिहास के भूषण हैं।

येसूबाई और ताराबाई

येसूबाई अपने पुत्र के पास औरंगज़ेब की छावनी में रहती थी। औरंगज़ेब की विजय-यात्राओं में शाहू और येसूबाई बेगम जीनआरा के पास रहती थी। १७०२ ई० में इस बेगम का देहान्त हो गया। औरंगज़ेब ने इन मराठा राजपुरुषों को हाथ में रखकर नीति चक्र चलाने की कोशिश की परन्तु येसूबाई की दूरदर्शिता के कारण शाहू औरंगज़ेब के जाल में नहीं फंसा। जीताजी बेसरकार ने शाहू को शिक्षित किया। छावनी की दौड़ धूप में शाहू को कई बार बड़ी तकलीफें उठानी पड़ीं। येसूबाई और राजाराम ने शाहू को छुड़ाने के लिये कई यत्न किए। १६९६ ई० में राजाराम ने छावनी पर आक्रमण किया, सफलता नहीं हुई। १७०५ ई० में कामबख्श को मध्यस्थ बनाकर शाहू को बादशाह का मनसबदार बनाकर मुक्त कराने का यत्न किया; परन्तु औरंगज़ेब एकदम सावधान हो गया। इस सारे उपक्रम में येसूबाई ने आर्यमर्यादा को सुरक्षित रखा। १६९९ ई० में बादशाह ने शाहू का विवाह अम्बिकाबाई और सावित्रीबाई नाम की मराठा सरदारों की कुलीन कन्याओं के साथ कराया।

औरंगज़ेब ने इन दोनों देवियों के सौन्दर्य की महिमा को सुनकर इन्हें देखने की इच्छा प्रगट की। येसूबाई ने विमबाई नाम की दासी को भेज कर छत्रपति वंश के अन्तःपुर की लाज रखी। बादशाह ने इस विवाह के समय अक्कलकोट कोट, इन्दापुर सूबे तथा बारमती बनेवा

स्थान की जागीर शाहू को दी। साथ ही साथ रायगढ़ के किले से लाई हुई शिवाजी की भवानी तलवार, अफ़ज़लखान की तलवार और एक सोने की तलवार भी भेंट में दी। औरंगज़ेब ने कई बार शाहू को बहकाना चाहा। परन्तु उसने कभी यह भाव प्रकट नहीं होने दिया कि यह कैद से छूटने की कोशिश कर रहा है। आखिर औरंगज़ेब ने घोषणा की कि मैं कर्नाटक तथा बीजापुर का राज्य कामबख्श को देकर दिल्ली जाऊंगा। शाहू को मुक्त कर उसे सप्त-हजारी दी जाती है, और वह कामबख्श की आज्ञा में रह कर कार्य करेगा। १७०६ ई० में जुल्फ़ीकारखाँ के अप्रत्यक्ष निरीक्षण में शाहू को रख कर, मराठों के मुख्य २ सरदारों को फंसाना चाहा। परन्तु औरङ्गज़ेब के जाल में कोई नहीं फंसा।

इस कार्य का श्रेय—जहां अन्य मराठे सरदारों—बालाजी विश्वनाथ तथा खण्डोबल्लाल आदि को है, वहां माता येसूबाई को भी है। इस वीर माता का नाम आदर्श माता के रूप में सदा स्मरणीय रहेगा। शाहू ने जब बालाजी विश्वनाथ की सहायता से महाराष्ट्र में अपना अधिकार स्थापित कर लिया तब उन्होंने अपनी राजमाता तथा अन्य परिवार को दिल्ली से पूना में बुला भेजा। कई मुसलमान ऐतिहासिकों ने माता येसूबाई के आचार-व्यवहार पर लाञ्छन लगाने की कोशिश की है, परन्तु वह आरोप निराधार हैं। येसूबाई का अन्त सुखमय था। दक्षिण में ५, ६ साल सुखपूर्वक रह कर वह फिर निजाम गई थी। इस विषय को स्पष्ट करने के लिए येसूबाई के जीवन-चरित का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है।

सम्भाजी और येसूबाई का विवाह १६६७ ई० सन् में हुआ था। उस समय इनकी आयु १० वर्ष की थी और मृत्यु के समय उनकी आयु ७० साल की थी। १६९० ई० में वह जुल्फीकारखां के आधीन हुई थी। उस समय उसकी आयु ३० वर्ष की थी, उसका १० वर्ष की उमर का पुत्र शाहू जी उसके साथ था। यदि येसूबाई का आचार-व्यवहार ठीक न होता तो शाहूजी उसे दिल्ली लौटा लाने के लिए इतनी कोशिश न करता। १७०७ ई० तक येसूबाई ने बड़ी चतुराई के साथ शाहू द्वारा मराठा मण्डल में किसी प्रकार की अशान्ति नहीं होने दी।

शाहू येसूबाई का आज्ञाकारी पुत्र था। औरङ्गज़ेब की मृत्यु के बाद शाहू का छुटकारा हुआ। परन्तु शाहू की माता, तथा परिवार को मुग़ल दरबार ने जमानत के तौर पर रखा। इधर शाहू को स्वकीय युद्धों में जूझना पड़ा। सब कामों के निबट जाने पर ही १७१६ ई० में शाहू ने येसूबाई को बालाजी विश्वनाथ को, दिल्ली दरबार भेजकर दक्षिण में बुलाया। इस स्वकीय युद्ध में ताराबाई के कुचक्रों के कारण कई बार सन्देह होता था कि कहीं शाहू छत्रपति को मुगल दरबार के वजीर ठीक मौके पर जवाब न दे दें। येसूबाई की दरबार में काफी परिचिति थी। उसने इस हलचल में अपने पुत्र की हर प्रकार से रक्षा की। शाहू के दिल्ली दरबार से बाहर आते ही, मराठा-मण्डल में दो पार्टियां बन गईं थीं।

एक पार्टी का यह कहना था कि शाहू जी महाराष्ट्र का छत्रपति हैं। विपक्ष में राजाराम की स्त्री ताराबाई कहती थी कि महाराष्ट्र को आपत्ति के समय हमारे स्वामी ने बचाया है अतः राज्य के उत्तराधिकारी हमारे वंशज हैं। ताराबाई महत्त्वाकांक्षिणी स्त्री थी। उसे राज्य कारोबार से पर्याप्त परिचिति थी। उसने राजाराम के बड़े लड़के शिवाजी (जिसकी आयु १० वर्ष की थी) के नाम से शासन करना शुरू किया। इधर शाहू भी शाही दरबार से छूटकर दक्षिण में आ रहा था। निःसन्देह राजाराम ने आपत्ति के समय मराठा-मण्ड को दुश्मन से बचाया; परन्तु यह भी सचाई है कि शाहू की माता येसूबाई ने उस समय राष्ट्र-भक्ति के भाव से प्रेरित होकर स्वयं जेल में रहकर, वीरों को राष्ट्र-रक्षा के लिये भेजा और मराठा-मण्डल की कीर्त्ति तथा शक्ति को कायम रखा। येसूबाई दूरदर्शी महिला थी। उसने अपने वैयक्तिक स्वार्थों को तिलांजलि देकर राष्ट्रीय भाव को मुख्य रखा। परन्तु ताराबाई ने अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिये, मराठा-मण्डल में राजगद्दी के लिये कलहाग्नि की ज्वालाओं को प्रदीप्त कर, मराठा शक्ति को कमज़ोर किया। ताराबाई यदि अपनी इस योग्यता तथा कार्यकुशलता के गुणों को राष्ट्र-रक्षा के काम में लगाती तो आज उसका नाम भी अहिल्याबाई की तरह सन्मान के साथ लिया जाता। स्वार्थमयी प्रवृत्ति ने ताराबाई के अन्य गुणों पर पानी फेर दिया। ताराबाई के कारण मराठा-मण्डल पर जो आपत्ति आई उसका निराकरण कैसे हुआ? जिन

व्यक्तियों ने इस अन्तःकलहाग्नि से छत्रपति के सिंहासन को सुरक्षित रखा, उनका वर्णन हम आगे करेंगे ।

यहां पर हम संक्षेप से ताराबाई के कारनामों का उल्लेख करेंगे इससे पाठकों को पता लगेगा कि माताएं भी किस प्रकार राष्ट्रीय षड्यन्त्रों और सन्धि-चक्रों में बड़े २ दिमागों का मुकाबिला कर सकती हैं। १७०८ ई० में बहादुरशाह ने शाहू के मराठे सरदारों से खुश होकर (क्योंकि शाहू ने इन सरदारों को भेज कर बादशाह के प्रतिद्वन्द्वी कामबख्श का दमन किया था) उनका सन्मान किया। शाहू ने यह मौका देखकर अपनी सनद तथा अधिकार को बढ़ाने के लिये दरबार में अपने वकील भेजे। ताराबाई ने भी जुल्फीकारखां के प्रतिद्वन्द्वी वज़ीर मुनीमखान की सहायता से बादशाही से सनद प्राप्त करने की प्रार्थना की। शाहू को सब फर्मान मिलने वाले थे, परन्तु ताराबाई के हिमायती मुनीमखान के ज़ोर देने पर यह निश्चय किया गया है कि ताराबाई और शाहूजी आपस में लड़ कर अपना निपटारा कर लें। जो विजयी होगा उसे सनद दे दी जायगी। इस निर्णय का फल यह हुआ कि दोनों पक्ष के सरदार एक-दूसरे को नष्ट करने के लिये पूरी तय्यारियां करने लगे।

एक दूसरे के आधीन प्रदेशों को लूटना तथा एक दूसरे के सरदारों को प्रलोभन देकर अपनी ओर मिलाने की कोशिशें होने लगीं।

जब शाहू सतारा में पहुँचता था, तब ताराबाई के सरदार कोल्हापुर में दंगा करते, जब वह कोल्हापुर पहुँचता, तब ताराबाई सतारा में उत्पात मचाती। यह सिलसिला १७१० ई० जून मास से लेकर शाहजी के मुख्य सेनापति धनाजी जाधव की मृत्यु तक जारी रहा। ताराबाई ने इतने अरसे में न आप आराम लिया और न शाहू को आराम लेने दिया। धनाजी जाधव मराठों का प्रमुख सेनापति था। इसका मराठा-मण्डल पर भारी दबाव था। इसकी अचानक मृत्यु के बाद शाहूजी का पक्ष दिन-प्रति-दिन कमज़ार होने लगा। दो तीन वर्षों के निरन्तर युद्धों में शाहू ने अपना मुख्य स्थान सतारा को बनाया और ताराबाई ने पन्हाला व कोल्हापुर को। दोनों पक्ष प्रत्यक्ष युद्ध की अपेक्षा भेदनीति का प्रयोग ही करते। ताराबाई ने रामचन्द्र पन्त अमात्य

की सहायता से अपनी गति को मन्द नहीं होने दिया। इतना ही नहीं—धनाजी जाधव की मृत्यु के बाद उसके लड़के चन्द्रसेन जाधव को अपनी ओर मिलाकर अपनी सैन्य शक्ति को भी बढ़ाया। ताराबाई ने रामचन्द्र पन्त की सहायता से खण्डोबल्लाल आदि को अपनी ओर मिलाना चाहा, परन्तु सफलता नहीं हुई। ताराबाई के नीतिचक्र फल ला रहे थे। धनाजी की मृत्यु के बाद बड़े २ सरदार शाहू का पक्ष छोड़ कर ताराबाई की ओर आने लगे। ताराबाई को अपनी सफलता पर प्रसन्नता हो रही थी। परन्तु एकदम बालाजी विश्वनाथ नाम के व्यक्ति ने ताराबाई की सब आशाओं को पलट दिया। इस व्यक्ति ने धनाजी जाधव की देख-रेख में काम सीखा था। महाराष्ट्र के बड़े २ राजनीतिज्ञों की इसे सहायता प्राप्त थी। इसने एकदम ताराबाई और उसके लड़के शिवाजी को पन्हाला क़िले में कैद कर राजाराम के दूसरे लड़के सम्भाजी को कोल्हापुर की गद्दी की आशा दिलाई। इस प्रकार ताराबाई का राजदरबार में प्रभाव कम हो गया।

ताराबाई ने अपने जीवन-काल में अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने की सराहनीय कोशिश की। परन्तु कुछेक दुर्गुणों—तीखापन तथा स्वार्थ-भाव के कारण सफल न हो सकी। ताराबाई प्रभावशालिनी महिला थी। यदि बालाजी विश्वनाथ का उदय न होता तो निःसन्देह ताराबाई छत्रपति के राजछत्र को अपने कुल में स्थिर रखती। इस घटना के बाद ताराबाई ने राजकारोबार में बहुत हलचल नहीं की। शाहू छत्रपति की मृत्यु के बाद राजाराम गद्दी का उत्तराधिकारी बना। यह ताराबाई का पोता था। ताराबाई ने गायकवाड़ बड़ौदा की सहायता से कोशिश की कि वह पेशवा की जगह, राजाराम की मर्जीनवीस बने। परन्तु नाना साहिब पेशवा ने अनेक तरह से समझा बुझाकर सम्मानपूर्वक झगड़े को निपटाना चाहा। बालाजी ने आखिर गायकवाड़ बड़ौदा को दबाकर ताराबाई को असहाय कर दिया। १७६१ ई० में भारी परिश्रम के बाद यह महत्वाकांक्षिणी स्त्री इस लोक से चल बसी।

: ५ :

छत्रपतियों का भविष्य

शिवाजी महाराज ने अपने पराक्रम से छत्र धारण किया था। अपने बुद्धि-बल के सहारे मराठा मण्डल को एक सूत्र में ग्रथित किया था। शिवाजी सब काम स्वयं देखता था। वह स्वयं अपना प्रधानामत्य था। वह राज्य भी करता था और शासन भी करता था। सेनाओं का संचालन भी उसके निरीक्षण में होता था। वह मराठी प्रजाओं के बीच में रहा था; उनके रीति-रिवाजों तथा स्वभावों से परिचित था।

उसकी प्रजाएं उसको पहचानती थीं। वह मन्त्रियों से काम लेना जानता था, शिवाजी सम्राट् इङ्गलैंड के जार्जों तथा एडवर्डों की तरह नाममात्र की शोभा बढ़ाने वाला न था, अपितु अमेरिका के राष्ट्रपति की तरह सच्चे अर्थों में राष्ट्रपति था। उसके देहान्त के बाद उसके पुत्र तथा प्रपौत्रों ने कुछ समय तक छत्रपति के छत्र को अपने तेज प्रभाव के ज़ोर पर स्वयं थामे रखा। अष्ट प्रधान मण्डल के मन्त्री लोग इनके सहायक थे। राजाराम के समय तक उनकी शान थी। परन्तु राजाराम की मृत्यु के बाद शाहू छत्रपति के राज-सिंहासन पर आरूढ़ होते ही छत्रपतियों की स्थिति बदल गई। छत्रपति नामधारी राजा रह गए, राजशक्ति का संचालन दूसरों के हाथ में चला गया। शाहू छत्रपति के समय से छत्रपति पेशवाओं तथा मन्त्रियों पर आश्रित हो गए, अष्ट-प्रधान मण्डल ने मुख्यता प्राप्त की। यह घटना क्यों हुई? इसका मुख्य कारण यह था कि शाहू छत्रपति १४ साल तक दिल्ली दरबार में कैद रहा था। मराठी प्रजाओं तथा मराठा सरदारों पर उसका व्यक्तिगत परिचय और प्रभाव न था। जिस समय शाहू छत्रपति ने मराठा मण्डल में प्रवेश किया था उस समय राष्ट्र में अन्तःकलह का दौरदौरा था। राजाराम की धर्मपत्नी अपने पुत्र शिवाजी द्वितीय को राजाराम का उत्तराधिकारी बनाने का यत्न कर रही थी। शाहू छत्रपति की अनुपस्थिति में राजाराम के वंशजों का ही मराठा सरदारों पर प्रभाव था। ताराबाई ने इस प्रभाव से लाभ उठाकर अपने पक्ष को बलशाली बनाने का यत्न किया। शाहू

बालाजी विश्वनाथ की योग्यता को देखकर सेनापति धनाजी जाधव ने उसे अपना सहायक नियत किया। इसी सेनापति के नीचे काम करते हुए बालाजी विश्वनाथ ने मराठा राजनीति के पेचीदे प्रश्नों को समझा। कुछेक लेखकों का कहना है कि बालाजी विश्वनाथ शुरु से ही महत्वाकांक्षी था। बालाजी विश्वनाथ के पूर्वजों की उस समय के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ ब्रह्मेन्द्र स्वामी में अटल श्रद्धा थी।

ब्रह्मेन्द्र स्वामी की प्रेरणा से ही बालाजी ने शाहू के दरबार में नौकरी की थी। दोनों कथाओं में यह बात सामान्य है कि बालाजी विश्वनाथ अपने समय के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों से अच्छा परिचित था। राष्ट्र के योग्य व्यक्ति उसका सन्मान करते थे। राजदरबार में आने पर धनाजी जाधव ने उसको व्यवहारिक राजनीति की शिक्षा दी। बालाजी विश्वनाथ को महाराष्ट्री जनता की स्थिति से परिचित कराने वाला व्यक्ति ब्रह्मेन्द्र स्वामी था।

जिस प्रकार भोंसले वंश को समय २ पर सान्त्वना दिलासा देने वाले समर्थ गुरु रामदास थे, उसी प्रकार शाहू के समय प्रजाओं की हालत राज्याधिकारियों तक पहुँचाने वाले ब्रह्मेन्द्र स्वामी थे। ब्रह्मेन्द्र स्वामी की सहायता से शाहू को ब्रह्मेन्द्रलाल तथा बालाजी विश्वनाथ जैसे योग्य पुरुष मिल सके। ब्रह्मेन्द्र स्वामी तथा उनकी शिष्य मण्डली ने ही उस समय लोकमत को शाहू के अनुकूल बनाया। इस साधु मण्डली ने समर्थ गुरु रामदास के पग-चिह्नों पर चलते हुए भारतीय जनता के सामने यह बात भी रखी कि साधु-सन्त लोग केवलमात्र पारलौकिक धार्मिक स्वप्नों में रमने वाले ही नहीं, अपितु राष्ट्र की कठिनाइयों राजनीति के क्षेत्र में भी मार्ग प्रदर्शन कर सकते हैं।

—:०:—

: ७ :

ब्रह्मेन्द्र स्वामी

[illegible]पुर के दुधेवाडी ग्राम में [illegible] नाम का देशस्थ ब्राह्मण [illegible] था। १६४९ ई० में उसकी धर्मपत्नी [illegible] ने [illegible] नाम के पु[illegible] को जन्म दिया, [illegible] शिशु को [illegible] [illegible] [illegible] था।

हर वर्ष श्रावण शुद्ध प्रतिपदा से प्रारम्भ करके भाद्रपद शुद्ध चतुर्थी तक बालक एकान्त में तपश्चर्या पूर्वक समाधि लगाता था। १६६३ ई० में वह बालक काशी चला गया और वहां संन्यासाश्रम स्वीकार कर अपना नाम ब्रह्मेन्द्र स्वामी रखा। तदनन्तर हिमालय से लेकर रामेश्वर तक तीर्थयात्रा की। इस यात्रा में भ्रमण करते २ महाराष्ट्र देश में पहुँचा। वहा सह्याद्रि पहाड़ के परशुराम देव-स्थान में चिपुड़ण गाव में समाधि जमाई। भयंकर तपश्चर्या की। एक दिन वाडगौड नाम का एक गड़रिया तपोभूमि में आ निकला। ब्रह्मेन्द्र स्वामी और वाडगौडा में परिचित हो गई। वह गड़रिया ब्रह्मेन्द्र स्वामी की तपश्चर्या से प्रभावित हुआ। उन्हीं दिनों बालाजी विश्वनाथ इस इलाके में काम करता था। वाडगौडा द्वारा बालाजी विश्वनाथ का ब्रह्मेन्द्र स्वामी के साथ परिचय हुआ। स्वामी की कठिन तपश्चर्या को देखकर बालाजी विश्वनाथ, इनका भक्त बन गया। दिन दिन भक्त-मण्डलीकी संख्या बढ़ने लगी। ब्रह्मेन्द्र स्वामी परशुराम देव-स्थान में रहते थे। यह मन्दिर जीर्ण-भ्रष्ट हो गया था। १७०७ ई० ब्रह्मेन्द्र स्वामी इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करने के हेतु भिक्षाद्रव्य सञ्चित करने के लिए बाहर निकले। इसी समय शाहू महाराज कारागार से मुक्त हुए थे। महाराष्ट्र में हलचल थी।

देव-स्थान की रक्षा के लिये चिमणाजी पन्त को नियुक्त किया। इसी हलचल में घटनाओं के हेर फेर से यह अनुमान लगाना अनुचित नहीं कि ब्रह्मेन्द्र स्वामी ने महाराष्ट्र में घूम कर राष्ट्र के लोकमत को शाहू के अनुकूल बनाया हो। बालाजी विश्वनाथ और शाहू को एक दूसरे का सहायक बनाने में ब्रह्मेन्द्र स्वामी का पर्याप्त हाथ था। कोंकण के प्रसिद्ध सरदार परशुराम पन्त और कान्होजी आंगरे आदि सरदारों पर ब्रह्मेन्द्र स्वामी का असर था। ब्रह्मेन्द्र स्वामी की जो चिट्ठी पत्री प्रकाशित हुई हैं उससे पता लगता है कि ब्रह्मेन्द्र स्वामी लेन-देन का धंधा भी करते थे। मराठा-मण्डल के बड़े २ सरदार इनके ऋणी थे। ब्रह्मेन्द्र स्वामी को मराठा-मण्डल की अन्तरीय स्थिति का भली प्रकार ज्ञान था। भिक्षा करने के निमित्त से ब्रह्मेन्द्र स्वामी ने कई बार देश की यात्रा की। भक्तों की भेंट तथा उपहार के कारण ब्रह्मेन्द्र स्वामी उस समय के प्रसिद्ध धनियों में से एक थे। शाहू छत्रपति तथा बालाजी विश्वनाथ को

भी समय २ पर सहायता देते थे। बालाजी विश्वनाथ का उत्तराधिकारी प्रथम बाजीराव भी उनका भक्त था। बाजीराव प्रथम की चिट्ठी-पत्री से पता लगता है कि कई बार विरोधी सरदारों ने शाहू छत्रपति और बाजीराव प्रथम के बीच में वैमनस्य पैदा करने की कोशिश की। ऐसे समय में ब्रह्मेन्द्र स्वामी ने ही मामले को सुलझाया। महत्वाकांक्षी मराठा सरदारों के अन्तःकलह को शान्त करने में ब्रह्मेन्द्र स्वामी ने सराहनीय यत्न किया।

ब्रह्मेन्द्र स्वामी की भक्त-मण्डली में राजघराने की स्त्रियां भी थीं। बाजीराव प्रथम की मृत्यु के बाद ब्रह्मेन्द्र स्वामी का राज-दरबार में प्रभाव कम होने लगा। पुराने साथी भी परलोक चल दिए। नाना साहेब बालाजी बाजीराव, तथा सदाशिवराव भाऊ के साथ ब्रह्मेन्द्र की नहीं बनी। धीरे २ लौकिक व्यवहारों से अपने आपको अलग कर लिया। अपनी जागीर का प्रबन्ध, चिमणाजी के लड़के जगन्नाथ पन्त को सौंपा। दिन प्रति दिन शरीर कृश होने लगा। १७४५ ई० में श्रावण मास में कृष्णा नदी के तट पर अन्तिम समाधि लगाई। समाधि के नवें दिन रामनाम का जप करते हुए योग-निद्रा स्वीकार की। शाहू महाराज ने स्वामी स्मृति में मन्दिर बनवाना शुरू किया। १७८५ ई० में वह मन्दिर पूरा हुआ। आज तक उस मन्दिर का प्रबन्ध चिमणाजी पन्त भागवत के अनुयायी करते हैं।

ब्रह्मेन्द्र स्वामी को मिरज द्वारा १६हज़ार की वार्षिक आमदनी थी। देवालय तथा मन्दिरों की जागीर अलग थी। ब्रह्मेंद्र स्वामी ने इस सारी सम्पत्ति को मन्दिर तालाब बनवाने, परोपकार और धर्म के काम में लगाया। ब्रह्मेंद्र स्वामी की योग्यता के सम्बन्ध में मतभेद है। कइयों की राय में ब्रह्मेंद्र स्वामी दिखावटी संसार त्यागी और धन का लोभी था। कई उसे स्वामी समर्थ रामदास का उत्तराधिकारी समझते हैं। स्वामी रामदास और ब्रह्मेंद्र स्वामी में आकाश पाताल का अन्तर है। स्वामी रामदास निस्पृह और त्यागी राजनैतिक सन्त था। ब्रह्मेंद्र स्वामी कर्ज़ देने का धन्धा करते थे। रामदास अजातशत्रु था। वह सरदारों की पारस्परिक ईर्ष्या से ऊपर उठा हुआ था। परन्तु ब्रह्मेंद्र स्वामी कई सरदारों के महाजन थे। जो लोग ब्रह्मेंद्र स्वामी को संसार त्यागी कहते हैं उनका कथन सत्य नहीं है। निःसन्देह ब्रह्मेंद्र स्वामी ने

द्रव्य-संग्रह किया था। रुपये का लेन-देन भी करते थे। परन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि इस रुपये को उन्होंने जनता के हित में, तालाब पुल मन्दिर आदि बनवाने में ही लगाया था।

ब्रह्मेंद्र स्वामी का जीवन तपोमय जीवन था। द्रव्य-संग्रह का उद्देश्य भोग-विलास नहीं, अपितु लोकहित ही था। जिस समय ब्रह्मेंद्र स्वामी का जन्म हुआ था उस समय लोकहित सम्पादन करने का उत्तम उपाय यही समझा जाता था कि राष्ट्र में स्थान २ पर मठ तथा मन्दिर बनाए जांय। उस समय की जनता इन्हीं मठों में शिक्षा प्राप्त करती थी ब्रह्मेंद्र स्वामी अपने समय का धनी महन्त था। उन्होंने सांसारिक सम्पत्ति का संग्रह राष्ट्रहित साधना के लिये किया था। शिष्यों की भेंटों वो भक्तों की भलाई में लगा देते थे। आज भारत में बीसियों महन्त अपने भक्तों तथा शिष्यों द्वारा भेंट की हुई सम्पत्ति का अपने ऐश-आराम के लिये प्रयोग करते हैं। उन्हें देश तथा जनता की कोई परवाह नहीं। ब्रह्मेंद्र स्वामी ने अपने जीवनकालमें महन्ताई करते हुए भी देश-हितको दृष्टिसे ओझल नहीं किया। उस समयमें बड़े२ राजपुरुषों तथा सरदारों ने उनकी इस देशभक्ति को सराहा था। बालाजी विश्वनाथ तथा बाजीराव प्रथम ने जो विजय तथा सफलता प्राप्त की, उसमें ब्रह्मेंद्र स्वामी का भी हाथ था।

इस प्रसङ्ग में भारत के आजकल के बड़े २ मठधारियों का ध्यान इस ओर खींचना चाहते हैं। देश तथा राष्ट्र उनकी स्वार्थमयी प्रवृत्तियों को देख कर थक चुका है, इस समय इन महन्तों को स्वयं संभल कर अपनी सम्पत्ति को राष्ट्र-शिक्षा तथा देशोन्नति के काम में लगाना चाहिए अन्यथा जनता सदा के लिए उनकी समाप्ति कर देगी।

जब तक धनाजी जाधव जीवित रहा तब तक शाहू का पक्ष प्रबल रहा। परन्तु १७०१ ई० में धनाजी जाधव की मृत्यु के बाद उसका लड़का चन्द्रसेन जाधव सेनापति बना। धनाजी जाधव बालाजी विश्वनाथ को जानता था, परन्तु उसका पुत्र चन्द्रसेन जाधन बालाजी विश्वनाथ से दिल-दिल में खलता था। दोनों की देर तक नहीं बनी। चन्द्रसेन जाधव ने बालाजी विश्वनाथ को कैद करने की सोची, परन्तु शाहू की सहायता से बालाजी बच गया। चन्द्रसेन

[illegible] शाहू को छोड़ कर ताराबाई के पक्ष में चला गया। अन्य सरदार भी शाहू को छोड़ने लगे। ऐसे समय में बालाजी विश्वनाथ ने अपने बुद्धिबल से शाहू के गिरते पक्ष को सम्भाला। चन्द्रसेन जाधव की विद्रोही सेना को छोड़ कर, लगभग २००० सिपाही सतारा में बालाजी विश्वनाथ के पास आ गये थे। बालाजी ने नये सिपाही भर्ती किए और शाहू की सैन्य शक्ति को संगठित किया। इस कार्यकुशलता के कारण बालाजी को 'सेना-कर्ता' की उपाधि मिली। बाद में बालाजी विश्वनाथ ने शाहू को सलाह देकर, परशुराम पंत को कैद से मुक्त कर, उसे अपना प्रतिनिधि बनाया। बालाजी विश्वनाथ ने केवल शस्त्र बल का ही प्रयोग नहीं किया। कमज़ोरों को शस्त्र बल द्वारा, महत्वाकांक्षियों को ऊँचे पद देकर तथा शक्तिशालियों के साथ सन्धियां कर अन्तःकलह को शान्त किया। दमाजीथोरात आदि बागियों का दमन किया। कान्होजी आंग्रे मराठा मंडल की नौशक्ति का मुख्य सेनापति था। शिवाजी के समय से इस पद पर काम कर रहा था। उसका प्रभाव बहुत बढ़ा चढ़ा था। गोरे तथा पुर्त-गीज लोग उसके नाम से थर थर कांपते थे। ताराबाई ने कान्होजी को अपने पक्ष में कर लिया था। शाहू ने अपने कई सेनापतियों को इसका दमन करने के लिये भेजा; परन्तु कोई भी सफल न हुआ। आखिर बालाजी विश्वनाथ ने सम्पूर्ण पश्चिमी कोंकण का प्रदेश कान्होजी को दे दिया और कान्होजी को अपने पक्ष में मिला लिया। [illegible] ने बालाजी विश्वनाथ का साथ दिया. इसी समय ताराबाई के [illegible] का देहान्त हो गया। इधर बालाजी विश्वनाथ ने राजाराम की [illegible] शंभाजी को अपने प्रभाव में लाकर [illegible] ताराबाई [illegible] अपने [illegible] को [illegible] शाहू का [illegible] का साथ होने ला[illegible] [illegible]। बालाजी विश्वनाथ की [illegible] बुद्धि [illegible] गई। [illegible] ने शाहू महाराज [illegible]। बालाजी विश्वनाथ ने उसको [illegible] की [illegible] में [illegible] प्रधान [illegible]।

बालाजी विश्वनाथ ने केवल मराठा मंडल को ही संगठित नहीं किया; अपितु भारत में मराठा शक्ति के विस्तार का भी बीज डाला। अन्तःकलह को शांत करने के बाद यह प्रश्न उपस्थित था कि वीर मराठों की सेनाओं की शक्ति को किस तरफ लगाया जाय।

: ८ :

दिल्ली की ओर

मराठा मंडल में अदम्य शक्ति थी। बालाजी विश्वनाथ ने इस शक्ति को राज्य-विस्तार के काम में लगाकर, दिल्ली दरबार तक मराठों को भेजा। बालाजी विश्वनाथ पहला व्यक्ति था जिसने मुग़ल-बादशाही की राजधानी में उनकी छाती पर बैठकर क्या संधि-चक्र और क्या तलवारों के दाव पेच में उनके अभिमान को चूर चूर किया।

औरङ्गज़ेब की मृत्यु के बाद दिल्ली दरबार में नित नये झगड़े पैदा होने लगे। सरदार लोग अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए कई तरह की दलबन्दियां बनाते थे। बालाजी विश्वनाथ ने इन परस्पर लड़ते झगड़ते सरदारों की कमज़ोरी से फायदा उठाकर दिल्ली दरबार में अपनी धाक बैठाई। बालाजी विश्वनाथ ने यह सब कुछ कैसे किया इसका वर्णन करने से पूर्व तात्कालिक दिल्ली दरबार का संक्षिप्त वर्णन करना ज़रूरी है।

१७१२ ई० में बहादुरशाह की मृत्यु हुई। बहादुरशाह के लड़कों में लड़ाई झगड़े होने लगे जुलफीकारखां की सहायता से बड़ा लड़का जहांदारशाह गद्दी पर बैठा। परन्तु उस समय की राजनीति के मुख्य संचालक सय्यद बन्धुओं ने बादशाह का खून कर फरुखसीयर को १७१२ ई० में राजगद्दी पर बैठाया। औरंगज़ेब के दरबार में अब्दुल्लाखां (सय्यदमियां) नाम का एक योग्य शूर सरदार रहता था। उसके अनेक लड़कों में से हसनअली और हुसैनअली नाम के दो लड़के "सय्यद बन्धु" नाम से प्रसिद्ध हुए।

हसनअली अब्दुल्लाखान नाम से प्रसिद्ध है, यह फौजदारी पद पर नियुक्त था। दूसरा भाई नीतिवान् और बुद्धिमान् था। बहादुरशाह के समय तक इन

सय्यद बन्धुओं की विशेष पूछताछ नहीं हुई। परन्तु शाहज़ादा अज़ीमुश्शान ने १७०८ ई० में हुसैनअली को बिहार प्रांत की और १७११ ई० में अब्दुल्ला को इलाहाबाद की सूबेदारी दी। इन स्थानों पर रहते हुए इन्होंने फरुखसीयर को सहायता देकर जहांदारशाह को गद्दी से उतार दिया। सय्यद बंधु दिल्ली दरबार में चिरकाल से काम करते थे। अन्य सरदार उनसे ईर्ष्या करते थे। फरुखसीयर गद्दी पर बैठा, तब अन्य सरदारों ने फरुखसीयर को इन सय्यद बंधुओं के विरुद्ध भड़काना शुरू किया। दिल्ली दरबार की दशा शोचनीय थी। एक ओर मुसलमान सरदारों में पारस्परिक ईर्ष्या थी। दूसरी ओर राजपूताना के राजा भी अपनी २ बात चलाना चाहते थे। हरेक कोशिश करता था कि वह बादशाह के नाम पर अपनी बात सिद्ध करे। सैयद बन्धुओं के मुकाबले में उनका प्रतिद्वन्द्वी निज़ाम उल्मुल्क नाम का सरदार था। इसके पूर्वजों ने औरंगज़ेब के साथ चतुराई के लिये नाम कमाया था। इन्हीं में से मीर शहाबुद्दीन नाम का सरदार १७०७ ई० में औरंगज़ेब के नीचे इलिचपुर में सूबेदारी के काम पर नियुक्त हुआ था। औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद बहादुरशाह ने इसे १७१० ई० में गुजरात का सूबेदार बनाया। इसी साल उसका देहान्त हो गया। इस शहाबुद्दीन का निकाह शाहजहां के वज़ीर इनायतउल्लाखां की लड़की के साथ हुआ। इस निकाह से, १६७१ ई० में कमरुद्दीनखां व निज़ामउल्मुल्क का जन्म हुआ था।

कुछ साल तक अयोध्या की सूबेदारी करने के अतिरिक्त सरदार ने अपने जीवन का बड़ा भाग दक्षिण की सूबेदारी में बिताया। जब तक निज़ाम दक्षिण में रहा इसने शाहू महाराज को १० हज़ार की मनसब दिलवा कर अपने प्रभाव में रखा। शाहू से नाराज़ [illegible] चन्द्रसेन जाधव को अपने साथ मिला कर उसे [illegible] जागीर में दिया। इसी प्रकार अन्य सरदारों को मराठा मंडल से जागीर देकर उनके द्वारा मराठा मंडल में [illegible]। [illegible] चन्द्रसेन जाधव और निम्बालकर नाम के सरदारों से [illegible] १७२८ ई० में लड़ाई भी कर दी। [illegible]

दिया। इसी समय निज़ाम की दक्षिण से बदली होकर मुरादाबाद की सूबेदारी पर नियुक्ति हो गई।

दक्षिण की सूबेदारी पर हुसेनअली की नियुक्ति हुई। मराठों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिये ही सैयद बन्धुओं ने स्वयम् इधर आना ज़रूरी समझा था। दिल्ली दरबार में अब्दुल्ला काम देखता था। बाह्य शत्रुओं से बचाने के लिये हुसेनअली इधर आया था। फ़रुखसीयर ने कई बार हुसेनअली को मरवाने की कोशिश की। जोधपुर के राजा अजीतसिंह पर आक्रमण करने के लिये हुसेन-अली की अध्यक्षता में सेना भेजी और साथ ही गुप्त पत्र द्वारा अजीतसिंह को लिखा कि इसे मरवा दो। इसी प्रकार जब दक्षिण में हुसेनअली आया तब फ़रुख़सीयर ने मराठों को लिखा कि वह इसका खून करें। गुजरात के सूबेदार दाऊदखां पन्नी को भी इस काम के लिये भेजा। हुसेनअली को जब ये बातें पता चलीं तब उसने एकदम दिल्ली पहुँच कर इस झगड़े को शांत करना उचित समझा। उसकी दिली ख्वाहिश यह थी कि वह मराठों का दमन करता परन्तु अवस्थाओं से बाधित होकर उसने मराठों से संधि की। इस संधि की शर्तें बताती हैं जि दिल्ली दरबार का अन्तःकलह मराठों के लिए किसप्रकार सहायक सिद्ध हुआ। शर्तें यह हैं—

(१) शिवाजी के समय का सारा 'स्वराज्य'प्रदेश शाहू महाराज के आधीन किया जाय।

(२) खानदेश, बर्हाड, हैदराबाद, कर्नाटक आदि प्रदेश जिन्हें मराठों ने हाल ही में जीता है मुग़ल लोग उन प्रदेशों को मराठों के आधीन कर दें।

(३) मुग़ल दरबार के दक्षिण प्रांतों में मराठे सरदेशमुखी और चौथाई को वसूल करें। सरदेशमुखी के बदले मराठों को चाहिये कि वह अपनी १५००० की सेना बादशाह की सहायता के लिए तैयार रखें। चौथाई के बदले मराठे मुग़लाई प्रदेशों में चोरी और डाकेज़नी का प्रबन्ध करें।

(४) मराठे प्रतिवर्ष बादशाह को १० लाख रुपया कर दें।

(५) शाहूजी के परिवार को मराठा मंडल में सुरक्षित पहुँचाया जाय।

बालाजी विश्वनाथ ने हुसेनअली को इन्हीं शर्तों पर सहायता देनी स्वीकार की। सौभाग्य से इस समय राजपूताना के राजाओं की भी मराठों के साथ

सहानुभूति थी। विरोधभाव न था हुसेनअली ने ये शर्तें बादशाह का प्रतिनिधि बनकर स्वीकार की थीं। इन शर्तों के अनुसार १७१२ ई० में हुसेनअली खण्डेराव दाभाड़े की अध्यक्षता में मराठी सेना लेकर दिल्ली की ओर चल दिया। दिल्ली दरबार में शोर मच गया। बादशाह ने इनका मुकाबला करने के लिये निज़ाम को मुरादाबाद से दरबार में बुला लिया। अजीतसिंह को भी बुला भेजा। अब्दुल्ला ने हुसेनअली तक यह सब बातें पहुँचा दीं। हुसेनअली ने शाहू को अधिक सेना भेजने के लिये लिखा। बालाजी विश्वनाथ बाजीराव तथा बालाजी आदि मुख्य सरदार शाहू की आज्ञा से दिल्ली की ओर चल दिये।

हुसेनअली ने बादशाह को लिख भेजा कि मेरे पास औरंगज़ेब के पुत्र अकबर का मुईउद्दीन नाम का राजपुत्र है। आप के दरबार में शाहू का परिवार है। आप उस परिवार को मराठों के हाथ सौंप दें। हम राजपुत्र को आप के पास भेज देंगे। वास्तव में हुसेनअली के पास कोई राजपुत्र नहीं था। उसने इस बात को सच्चा साबित करने के लिये यह ढोंग शुरू किया कि जहां सेना ठहरे वहां एक व्यक्ति को मुईउद्दीन बनाकर उसका राजपुत्र की तरह स्वागत किया जाय। धीरे २ हुसेनअली बुरहानपुर तथा उज्जैन होता हुआ दिल्ली पहुंचा। बादशाह ने बहुत कोशिश की कि हुसेनअली किसी तरह लौट जाय। परन्तु मराठे शाहू के परिवार को लिए बिना कैसे लौटते। आखिर १७१९ ई० को मराठी सेना दिल्ली पहुंची। निज़ाम उलमुल्क ने बादशाह का साथ न दिया।

१७१९ ई० की २३ फरवरी को हुसेनअली ने दरबारी बाने में बादशाह से भेंट की। [illegible] था। बादशाह ने पूछा मुईउद्दीन कहां है? हुसेनअली ने कहा "शाहू के परिवार को छोड़ो तब मैं उसे तुम्हारे हाथ में दूंगा।" तदनुसार २० मार्च को [illegible] परिवार को मुक्ति मिली। दूसरे दिन [illegible] बादशाह तथा हुसेनअली [illegible] विरोध पैदा हो गया।

[illegible] के लिये [illegible]। [illegible]

बादशाह तथा सैयद बन्धुओं की गर्मागर्म बहस हुई। गाली गलौच तक की नौबत पहुँची। बादशाह को असह्य क्रोध आया। सैयदों ने सारे शहर में मोर्चाबन्दी की हुई थी। २८ फ़रवरी १७१६ ई० को दिल्ली शहर में भयंकर दृश्य था। शहर सेनाओं का क्रीड़ा-स्थान बना हुआ था। मुहम्मद अमीनखान वज़ीर राजवाड़े की ओर जा रहा था। रास्ते में मराठी सेना से उसकी मुटभेड़ हो गई। इस मुटभेड़ में मराठों के २०० आदमी काम आये। इधर सैयद बन्धुओं ने बादशाह को कैद कर नए बादशाह को गद्दी पर बैठाया। दो मास के बाद फ़रुखसीयर का खून हो गया। जयसिंह आदि राजपूत सरदार सैयदों के इस हत्याकांड को देखकर दंग रह गए। कहा जाता है कि केवलमात्र अजीतसिंह ने अपने पूर्वजों का बदला लेने के लिये फ़रुखसीयर का खून करने में मराठों तथा सैयदों को सहायता दी। बालाजी विश्वनाथ अपनी सब शर्तें पूरी कराकर जुलाई मास में सतारा लौट गया। दिल्ली की इस हलचल के समय में निजाम उलमुल्क ने मराठों के साथ प्रेम-पूर्वक व्यवहार रखने की कोशिश की। निज़ाम उलमुल्क मालवा का सूबेदार निश्चित किया गया। सैयद बन्धुओं ने मराठों की सहायता से दिल्ली में क्रान्ति पैदा कर दरबारी सरदारों के दिलों पर मराठों का आतंक बैठा दिया। मराठों के दिल बढ़ गए। उनकी दिल्ली के शाही खजाने पर नज़र पड़ गई। इस यात्रा ने मराठों की विजय यात्रा का रुख बदल दिया। बालाजी विश्वनाथ का पुत्र बाजीराव स्वयं इस लड़ाई में उपस्थित था। इस सफलता के कारण शाहू महाराज तथा बालाजी विश्वनाथ का प्रभाव सब मराठे सरदारों पर छा गया। लोग उनकी सत्ता तथा शक्तिको स्वीकार करनेलगे। बालाजी विश्वनाथने मराठों की आपस में लड़ती हुई सेनाओं को दिल्लीकी विजय के लिये आतुर कर दिया।

दिल्ली से लौट कर बालाजी विश्वनाथ ने राष्ट्र के अन्तरीय शासन में कई सुधार किए। १७२० ई० में मानसिक तथा शारीरिक परिश्रम से थक कर बालाजी बीमार हुआ और इस लोक से कूच कर गया। बालाजी विश्वनाथ ने मराठा-मण्डल में नई क्रान्ति पैदा कर दी। इस क्रान्ति ने मराठों की सेनाओं का रुख दिल्ली की ओर कर दिया।

वीर पेशवा का अदम्य साहस

बालाजी विश्वनाथ के बाद उसका बड़ा लड़का बाजीराव मराठा मण्डल का पेशवा नियुक्त हुआ। इसके छोटे भाई चिमणाजी आपा ने बड़े भाई का साथ दिया। बाजीराव का दिल वीरों का सा था। पिता के साथ देखी हुई दिल्ली दरबार की रौनक तथा शान इसकी आंखों के सामने थी। पिता की नीति को यह भली-भान्ति समझता था। मराठा-मण्डल में दो पक्ष थे। एक पक्ष स्वराज्य संरक्षा का पक्षपाती था। उसका यह कहना था कि हमें शिवाजी द्वारा स्थापित दक्षिण साम्राज्य की रक्षा करनी चाहिये। यदि पेशवा दिल्ली की ओर जाने के स्थान पर दक्षिण महाराष्ट्र को संगठित करते तो सम्भव था कि वह फिर से विजयनगर जैसे आर्य हिन्दूराष्ट्र को स्थापित कर लेते और पानीपत की लड़ाई में नष्ट होकर निर्बल न होते। दूसरा पक्ष पेशवाओं का था। इनकी सम्मति में मराठा मण्डल को अन्तःकलहाग्नि से बचाने का एकमात्र उपाय यही था कि मराठी सेनाओं की बागडोर स्वराज्य से बाहर के शत्रुओं को जीतने के लिये मोड़ी जाय। पेशवाओं ने अपने विचार को कार्यरूप में परिणत करने का साहस दिखाया। उन्होंने बालाजी विश्वनाथ के पग-चिह्नों पर चलते हुए दिल्ली के बादशाह का संरक्षक बनने का संकल्प किया। शाहू महाराज ने इस नीति को पसन्द किया। दुनिया में ऐसे राजा निराले ही होते हैं जो दूरदर्शिता से काम लेते हुए विजय-यात्राओं के प्रलोभन को जीत सकें। ऐसी हालत में तो इस प्रलोभन को जीतना और भी मुश्किल हो जाता है जब नीचे के सेनापति इसके लिये आतुर हों। दिल्ली की अपार सम्पत्ति और अलौकिक ऐश्वर्य को देखकर किसका दिल नहीं डिगा। पठान, मुग़ल, राजपूत, सिक्ख तथा युरोपियन सब के दिलों को दिल्ली की लक्ष्मी ने चंचल कर दिया था। शाहू महाराज ने स्वीकृति दी और पेशवा बाजीराव ने इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये तैयारियां शुरू कर दीं। वीर पुरुष ही अपने दुश्मनों को भली प्रकार पहचानते हैं। बाजीराव के १७२०–१७४८ ई० तक शासनकाल में निरन्तर लड़ाइयों की धूमधाम रही। दक्षिण में बसई की ओर, पुर्तगीज और

युरोपियन लोग मराठा-मण्डल के दुश्मन थे। बाजीराव ने इनका दमन करने के लिए, चिमणाजी आपा को भेजा। चिमणाजी आपा का दक्षिण के इस भाग पर बहुत प्रभाव था।

आपा ने पराक्रम के साथ पुर्तगीज़ों पर कई आक्रमण कर १७३६ ई० में वसई का क़िला स्वाधीन किया। इस किले को सर करने में ब्रह्मेन्द्र स्वामी का भी काफी भाग था। चिमणाजी आपा, दक्षिण की विजयोंमें व्यग्र रहा, वह उत्तर भारत की विजय-यात्राओं में भाग न ले सका।

बाजीराव अपनी दिक्क़तों को भली प्रकार समझता था। वह अच्छी तरह जानता था कि पुराने सरदारों के भरोसे यह काम नहीं चल सकता। वह यह भी समझता था कि जब तक गुजरात मालवा तथा मध्य भारत और बङ्गाल में अपने सरदारों को नियुक्त नहीं किया जाएगा, तब तक दिल्ली तक पहुँचने का स्वप्न पूरा नहीं हो सकता।

दिल्ली में दो पक्षों की तनातनी थी। एक पक्ष अफ़गानिस्तान तथा मध्य एशिया के तुराणी लोगों की सहायता से दिल्ली में अपना ज़ोर जमाना चाहता था। दूसरे पक्ष को हिन्दुस्तानी कहा जाता था। यह पक्ष राजपूत राजाओं की सहायता से दिल्ली दरबार में मुगल वंश के बादशाहों की रक्षा करना चाहता था। हिन्दुस्तानके भिन्न२ प्रान्तों के सरदार लोग कभी किसी पक्ष का सहारा लेते थे, कभी किसी का। बादशाह भी वज़ीरों का आश्रित बना हुआ आज इनका मुहताज है तो कल उनका। बाजीराव देखता था कि उनके पिता ने सैयद बन्धुओं की सहायता से तुराणी पक्ष को हैरान किया था। उसने भी यही उचित समझा कि हमें भारतवर्ष को अथवा दिल्ली दरबार को, विदेशी अफ़गानों के आक्रमण से बचाना है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर बाजीराव ने भारत के भिन्न २ भागों में विद्रोह करने वाले सरदारों का दमन करने के लिए होलकर सेंधिया तथा गायकवाड़ आदि सरदारों को नियुक्त किया। राजपूताने के राजपूत राजाओं से प्रेम का नाता जोड़ा। मध्य भारत में बंगवस आदि मुसलमान सरदारों के आक्रमण से, छत्रसाल के राज्य को बचाया। छत्रसाल की आयु ढल चुकी थी। उसने बाजीराव को इस सहायता के बदले अपना पुत्र मानकर अपने राज्य का तीसरा भाग उसके नाम कर दिया। बाजीरांव ने इस स्थान

पर गोविन्द पन्त बुन्देले को नियुक्त किया। इस बुन्देले सरदार ने मध्य भारत में विद्रोही मुसलमानों की एक नहीं चलने दी। स्वार्थी अफगानों को कदम २ पर रोका। इस प्रकार अनुकूल परिस्थिति पैदा करने के बाद बाजीराव ने स्वयं दिल्ली पहुँचना आवश्यक समझा।

बाजीराव के एक मार्ग में रुकावट डालने वाला मुसलमानों में एक हीं वीर था। यह था निज़ाम उलमुल्क। फ़रुखसैयर के समय से इसकी यह कोशिश थी कि वह दिल्ली दरबार में मुख्यता प्राप्त करे। परन्तु सय्यद बन्धुओं ने इसकी एक न चलने दी। इसके बाद यह सरदार दक्षिण में चला गया। वहां जाकर इसने अपना स्वतन्त्र राष्ट्र स्थापित करना चाहा। सय्यद बन्धुओं ने अपने सरदार आलिम अली को भेज कर मराठों की सहायता से इसको पराजित किया। इतने में राजपूताना में छल कपट द्वारा सय्यद बन्धुओं का खून हो गया। अब दिल्ली दरबार में मराठों का पक्ष लेने वाला कोई न रहा, दूसरा पक्ष प्रबल होने लगा। इधर अनेक लड़ाइयों में व्यग्र होने के कारण बाजीराव ऋणी हो रहा था। यही उचित समझा कि कर्जे को दूर करने तथा मराठा शक्ति को स्थापित करनेके लिये दिल्ली पर आक्रमण किया जाय। दिल्लीमें मराठों के राजदूत भी थे। पूरी तय्यारियों के साथ ८० हज़ार सेना साथ लेकर बाजीराव विजय-यात्रा के लिए निकल पड़ा। शाहूजी महाराज ने सब सरदारों को इस यात्रा में सम्मिलित होने के लिये प्ररित किया। जब इस सवारी की खबर बादशाह तक पहुँची तब वहां भी तैयारियां होने लगीं। बादशाह ने निजाम उलमुल्क जैसे वीर सरदारों को एकत्रित करना शुरू किया। खान डौरान मुज़फ़रखान मामीरहुसैन और सादतखां आदि अपनी २ सेनाओं के साथ तय्यार हो गए। बाजीराव की सेना १७३७ ई० में यमुना के किनारे पहुँची। अयोध्या के सूबेदार ने दिल्ली दरबार में खबर भेजी कि मैंने सारी मराठी सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। डरने की कोई बात नहीं। उधर बाजीराव की सेना धीरे २ दिल्ली की ओर बढ़ने लगी।

इधर निज़ाम उलमुल्क ५० हज़ार सिपाही सेना लेकर बादशाह की सहायता के लिए दुआबा में आया। निज़ाम, हैदराबाद में अपने पीछे अपने लड़के नासिरजंग को छोड़ आया। मराठों ने निज़ाम को लाचार कर भूपाल के स्थान

पर घेर लिया। दिल्ली दरबार से तो सहायता आ नहीं सकती थी। नासिरजंग से मदद की आशा थी, परन्तु बाजीराव ने चिमणाजी आपा को ताकीद कर दी थी कि वह उधर से सहायता न पहुँचने दे। दोनों ओर से निराश निज़ाम देर तक मुकाबला नहीं कर सका। भूपाल में देर तक रहना मुश्किल हो गया। सेना में त्रास फैलने लगा। बेबस होकर निज़ाम ने आनन्दराव पण्डित के द्वारा संधि की। इस संधि द्वारा बाजीराव ने निजाम से मालवा आदि में मराठों के चौथ और देशमुखी के हक को स्वीकार कराया। चम्बल और नर्मदा के बीच में मराठों का बेरोक टोक प्रवेश हो गया। स्थान २ पर योग्य सरदारों को नियुक्त करके १७३२ ई० के जौलाई मास में बाजीराव पूना को लौट गया।

बाजीराव के लौटते ही नादिरशाह की विजय-यात्रा के कारण दिल्ली दरबार में फिर सनसनी फैल गई। भूपाल की लड़ाई के बाद से निजाम का दम टूट गया। इसने कई बार दिल्ली दरबार में मुख्यता प्राप्त करनी चाही परन्तु हिन्दुस्थानी पार्टी ने उसकी एक भी न चलने दी। आखिर निराश होकर उसने नादिरशाह को भारत पर आक्रमण करने के लिये निमंत्रण दिया। इन दिनों अयोध्या के सूबेदार दिल्ली दरबार में वज़ीर थे। उसकी इस निज़ाम से अनबन थी। नादिरशाह ने अभी आक्रमण किया ही था कि हैदराबाद में नासिरजंग ने विद्रोह कर दिया।

निज़ाम को उधर लौटना पड़ा। वृद्ध होने से वह नादिरशाह की पूरी सहायता भी नहीं कर सका। हां, जब बादशाह ने उसे नादिरशाह का मुकाबला करने के लिये भेजा तो उसने नादिरशाह की सेना को आगे बढ़ने से नहीं रोका। इतना ही नहीं, अपितु अयोध्या के सूबेदार को भी विष देकर मरवा दिया। नादिरशाह ने बेरोक टोक दिल्ली में प्रवेश किया।

बाजीराव तक यह सब समाचार पहुंचे। बाजीराव ने निजाम उल्मुल्क के पुत्र नासिरजंग को अपनी ओर मिलाकर उस समय के राजपूतों तथा हिन्दुस्तानी मुसलमानों से अपील की कि हम सब को विदेशी नादिरशाह का विरोध करना चाहिये। बाजीराव की इस अपील का राजपूतों तथा दिल्ली के दरबारियों ने 'हां, में जवाब दिया। अपने पुत्र को अपने विरुद्ध विद्रोही बनता देखकर दक्षिण

में अपनी सत्ता को बचाने के लिये निज़ाम बीच में ही उधर लौटा। दिल्ली दरबार में निजाम के बड़े लड़के गाजिउद्दीन ने मराठों की सहायता से शक्ति प्राप्त करनी शुरू की। इतने में समाचार आया कि नादिरशाह लौट गया। बाजीराव ने भी इस समाचार को सुनकर उत्तर की दूसरी यात्रा को स्थगित कर दिया। इसी समय १६४० ई० में बाजीराव का देहान्त हो गया। बाजीराव ने अपनी योजना को पूरा किया। इसने जहां एक ओर अपने घरेलू शत्रुओं को दबाया, वहां विदेशियों को पराजित करने का भी साहस दिखाया। बाजीराव ने दिल्ली दरबार में प्रभाव जमाकर भारत को उत्तरी विदेशी आक्रान्ताओं के अत्याचारों से बचाने का उपक्रम बांधा। उसने भारत के मुसलमानोंमें "हिन्दुस्तान हमारा है"का भाव सञ्चारित करना चाहा। परिणामतः कुछ अंश तक इसमें सफलता भी हुई। इसी प्रकार दक्षिणमेंभी चिमणाजीने युरोपियन तथा अरबके विदेशियों को भारतमें नहीं बैठने दिया। इस दृष्टिसे दोनों भाइयों का साहस सराहनीय है।

: १० :

सतारा से पूना

इस समय मराठा-मण्डल और छत्रपतियों की राजधानी सतारा थी। शाहू महाराज के मुख्य दफ्तर यहीं थे। परन्तु बाजीराव पेशवा के समय से सरकारी दफ्तर सतारा से उठ कर पेशवाओं के साथ पूना में आ गए। पेशवाओं ने पूना को राजधानी बनाया। देश में दो राजधानियां बन गयीं। एक छत्रपतियों की, दूसरी पेशवाओं की। इन दो राजधानियों ने मराठा-मण्डल के पराक्रमी सरदारों में ईर्ष्या के भावों को जागृत किया। बाजीराव पेशवा ने जिन नए सरदारों को खड़ा किया था उन्होंने अपने २ प्रान्तों में अलग २ शानदार राजधानियाँ बना लीं। जब तक बाजीराव पेशवा जैसे क्रान्तिकारी शूर पुरुष थे, तब तक ये सरदार स्वतन्त्र सरदार नहीं बने। अन्य सरदार भी पेशवाओं के पूना के आलीशान दरबारों को देख कर मौका देखते थे कि वह स्वयं कब स्वतन्त्र हों। बाजीराव पेशवा जिन सरदारों की सहायता से विजय-यात्राओं में सफल हुआ था वे सरदार अपनी २ शक्ति को पहचानने लगे। जब तक

पेशवा के अलग दफ्तर नहीं खुले थे; और वह छत्रपति के नीचे काम करते थे, तब तक सब सरदार समझते थे कि हम सब छत्रपति के सेवक हैं। छत्रपति के सिंहासन के लिये लड़ाई झगड़े होते थे तो राजघराने के व्यक्तियो में ऐसी दशा में बाहर से होने वाले भयंकर आक्रणों को रोकने के लिये छत्रपति के भगवे झंडे की रक्षा करने के लिये सब सरदार एक हो जाते थे। परन्तु अब अन्तःकलह का नया और विस्तृत क्षेत्र पैदा हो गया। पूना के पेशवाओं के अनुकरण में अन्य सरदारों के दिल में ईर्ष्या की आग सुलगने लगी। रामदास या शिवाजी जैसे निष्काम राष्ट्र-सेवक ही, उठते हुए सरदारों के दिलों को विनय द्वारा शान्त कर सकते थे, परन्तु पेशवाओं जैसे शानदार महत्वाकांक्षी लोग इस आग को शान्त नहीं कर सके।

बालाजी विश्वानाथ ने जिस कलहाग्नि को शान्त करने का यत्न किया था इसमें पूर्ण सफल न हो सका। कुछ समय तक बाजीराव के नेतृत्व में मराठी सेनाएं विजय की दुष्ट भावनासे प्रेरित होकर दिल्ली की ओर बढ़ती गई। परन्तु यह शान्त कलहाग्नि शीघ्र ही महत्त्वाकांक्षियों के दिलों में ईर्ष्याग्नि के रूप में परिणत हो गई। ईर्ष्याग्नि के प्रचण्ड होने का मुख्य कारण बाजीराव पेशवा में राजनैतिक प्रबन्ध की योग्यता का न होना भी था। अनेक देश जीते परन्तु उनका प्रबन्ध नहीं किया। शिवाजी महाराज ने महाराष्ट्र के प्रदेशों को भिन्न २ सरदारों से छीन कर, उन्हें महाराष्ट्र के योग्य व्यक्तियों के हाथ में सौप दिया था। वही सरदार उनका प्रबन्ध करते थे। अष्टप्रधान मण्डल द्वारा मराठा सरदारों को एक सूत्र में ग्रथित किया गया था।

उत्तरी भारत, मध्य भारत तथा मालवा, गुजरात, आदि में नए २ सरदारों और राज्यों को स्थापित किया, परन्तु इन सरदारों तथा राज्यों को एक सूत्र में ग्रथित करने वाला कोई साधन बाजीराव पेशवा को नहीं सूझा। मराठा-मण्डल के अष्ट प्रधान मण्डल के नीचे ही इन भिन्न २ प्रान्तों का प्रबन्ध रखा गया। पूना दरबार ही इन भिन्न मराठा सरदारों और राज्यों का भाग्य-विधाता बना, इन सरदारों की पूना दरबार में सुनवाई न थी। वह सरदार राज-कारोबार में हिस्सा नहीं ले सकते थे, वह एक तरह से अपने आपको पूना दरबार का आधीन सामन्त समझते थे। जिस प्रकार युरोप में रोम नगरी देर

में अपनी सत्ता को बचाने के लिये निज़ाम बीच में ही उधर लौटा। दिल्ली दरबार में निजाम के बड़े लड़के गाजिउद्दीन ने मराठों की सहायता से शक्ति प्राप्त करनी शुरू की। इतने में समाचार आया कि नादिरशाह लौट गया। बाजीराव ने भी इस समाचार को सुनकर उत्तर की दूसरी यात्रा को स्थगित कर दिया। इसी समय १६४० ई० में बाजीराव का देहान्त हो गया। बाजीराव ने अपनी योजना को पूरा किया। इसने जहां एक ओर अपने घरेलू शत्रुओं को दबाया, वहां विदेशियों को पराजित करने का भी साहस दिखाया। बाजीराव ने दिल्ली दरबार में प्रभाव जमाकर भारत को उत्तरी विदेशी आक्रान्ताओं के अत्याचारों से बचाने का उपक्रम बांधा। उसने भारत के मुसलमानोंमें "हिन्दुस्तान हमारा है"का भाव सञ्चारित करना चाहा। परिणामतः कुछ अंश तक इसमें सफलता भी हुई। इसी प्रकार दक्षिणमेंभी चिमणाजीने युरोपियन तथा अरबके विदेशियों को भारतमें नहीं बैठने दिया। इस दृष्टिसे दोनों भाइयों का साहस सराहनीय है।

: १० :

सतारा से पूना

इस समय मराठा-मण्डल और छत्रपतियों की राजधानी सतारा थी। शाहू महाराज के मुख्य दफ्तर यहीं थे। परन्तु बाजीराव पेशवा के समय से सरकारी दफ्तर सतारा से उठ कर पेशवाओं के साथ पूना में आ गए। पेशवाओं ने पूना को राजधानी बनाया। देश में दो राजधानियां बन गयीं। एक छत्रपतियों की, दूसरी पेशवाओं की। इन दो राजधानियों ने मराठा-मण्डल के पराक्रमी सरदारों में ईर्ष्या के भावों को जागृत किया। बाजीराव पेशवा ने जिन नए सरदारों को खड़ा किया था उन्होंने अपने २ प्रान्तों में अलग २ शानदार राजधानियाँ बना लीं। जब तक बाजीराव पेशवा जैसे क्रान्तिकारी शूर पुरुष थे, तब तक ये सरदार स्वतन्त्र सरदार नहीं बने। अन्य सरदार भी पेशवाओं के पूना के आलीशान दरबारों को देख कर मौका देखते थे कि वह स्वयं कब स्वतन्त्र हों। बाजीराव पेशवा जिन सरदारों की सहायता से विजय-यात्राओं में सफल हुआ था वे सरदार अपनी २ शक्ति को पहचानने लगे। जब तक

के पास रहकर, वसई आदि के युद्ध प्रसंगों में उसने काफी अनुभव प्राप्त किया था।

नाना साहेब की अपने पिता से नहीं बनती थी। इसका कारण यह था कि बाजीराव पेशवा का मध्य भारत से लाई मस्तानी रखेली वैश्या के साथ अनुचित सम्बन्ध था। नाना साहेब ने जो कुछ सीखा वह चिमणा जी आपा से, नाना साहेब, बाल्यकाल की शिक्षा के महत्व को अच्छी तरह समझता था। समय२ पर उसने रघुनाथराव और जनार्दन पंत को जो चिट्ठियां लिखी हैं उनके निम्नलिखित उद्धरणों से उस समय की शिक्षा-पद्धति का पता चलता है। १७४२ ई०में नाना साहेब ने रघुनाथराव को इस प्रकार लिखा:—

"मेरा आशीर्वाद बांचना। चलते समय जिन बातों की ओर विशेष ध्यान आकृष्ट किया था उन्हें याद रखना। रघुवंश, विदुरनीति, चाणक्यनीति का नियमपूर्वक चिन्तन किया करो। विराटपर्व से आगे महाभारत का खाली पाठ-मात्र बाँचते रहना। केवल घुड़सवारी में ही न लगे रहना, बड़े भाऊ (सदा-शिवराव भाऊ) की आज्ञा में रहना। भाऊ के साथ ही भोजन आदि करना क्षुद्र मनुष्यों के साथ कभी सहवास मत करना। शरीर के स्वास्थ्य का ख्याल रखना। भाऊ के साथ ही घुड़सवारी आदि के काम सीखने, समय के अनुकूल आयु के योग्य वेष धारण करना। देव पूजा एकान्त में मौनव्रत धारण करके थोड़े समय तक करनी। सावधान होकर रहना। राधाबाई और काशीबाई के पास शिक्षा के लिये जाते रहना।"

जिस समय यह चिट्ठी लिखी थी उस समय रघुनाथ की आयु ८ वर्ष की थी। उस समय इस प्रकार की गृह-शिक्षा द्वारा बालकों के हृदयों को संस्कृत किया जाता था। धार्मिक और व्यावहारिक शिक्षा को परस्पर सम्बद्ध बनाया गया था। आजकल की शिक्षा-पद्धति की व्यवहार-हीनता को देखते हुए इस शिक्षण-पद्धति की प्रशंसा किए बिना हम नहीं रह सकते।

नाना साहेब के मुख्य सहायक कार्यकर्ताओं में सदाशिवराव भाऊ भी था। यह चिमणाजी आपा का लड़का, नाना साहेब का भाई था। चिमणाजी आपा के साथ दक्षिण की कई लड़ाइयों में उपस्थित रहा था। १७४२ ई० में चिमणा जीआपा की मृत्यु के बाद दक्षिण का शासन कार्य इसी को सौंपा गया।

तक रोम साम्राज्य के भिन्न २ प्रान्तों के शासकों को नियन्त्रण में नहीं रख सकी, उसी प्रकार पूना शहर भी इन सरदारों को देर तक अपने प्रभाव में न रख सका। परिणाम यह हुआ—या कि मराठा मंडल को बनाने वाले सरदार ही इनके दुश्मन—या विदेशियों की कठपुतली बने। पुनः में राजदरबार के आते ही छत्रपतियों की रही सही सत्ता भी जाती रही। बाजीराव पेशवा की इस राजनैतिक अदूरदर्शिता के कारण मराठा जाति को भयंकर आपत्तियों का सामना करना पड़ा। यदि बाजीराव ठीक समय पर सब सरदारों को पुना दरबार के मण्डल का सभ्य बना लेता तो सैंधिया और गायकवाड़ के महाराज विदेशियों का सहारा न लेते। साहसी महत्वाकांक्षी बाजीराव ने 'पूना' में पेशवा का शनिवारवाड़ा कायम कर महाराष्ट्र मण्डल पर शनिश्चर के ग्रह को निमन्त्रित किया।

—:o:—

: ११ :

बालाजी बाजीराव व नाना साहेब

बाजीराव पेशवा की मृत्यु पर, उसका बड़ा लड़का बालाजी बाजीराव व नाना साहेब १८सालकी आयुमें महाराष्ट्र का पेशवा बना। नाना साहेब का जन्म १७२१ई०में हुआ था। इनके दो छोटे भाई थे। रघुनाथराव और जनार्दन पंत, जनार्दन पंत योग्य और होनहार था। परन्तु वह बाल्यकाल में ही इस लोक से चल बसा। रघुनाथराव पराक्रमी, परन्तु अदूरदर्शी था। नाना साहेब का विवाह बाल्यकाल में ही गोपिकाबाई के साथ हो गया था। विवाह के आठ वर्ष बाद उत्तर भारत की विजय-यात्रा से लौटते समय विश्वासराव नाम का पुत्र पैदा हुआ। नाना साहेब में अपने दादा के सब गुण पूरे उतरे थे। नाना साहेब में बालाजी विश्वानाथ की तरह राजनीतिज्ञता और वीरता दोनों थीं। नाना साहेब की दादी राधाबाई ने नाना साहेब के शिक्षण तथा रहन-सहन पर विशेष ध्यान दिया था।

नाना साहेब यद्यपि अपने पिता बाजीराव की तरह उनके साथ युद्ध के मैदानों में नहीं गया, परन्तु दक्षिण भारत में अपने चाचा चिमणाजी आपा

इतने में ताराबाई का देहान्त हो गया। इस प्रकार अन्तःकलह तथा कर्ज़ के बोझ को दूर कर पेशवा ने उत्तर भारत की ओर ध्यान दिया। जो विजय प्राप्त की गई थी, वह नाना साहेब की सम्पत्ति थी। मराठों की शक्ति तब तक स्थिर नहीं हो सकती जब तक पञ्जाब की सरहद पर अफ़ग़ानिस्तान के आक्रमण को रोकने का उचित प्रबन्ध न किया जाय। बाजीराव पेशवा के वीर मराठे दिल्ली तक पहुँचे थे। नाना साहेब ने उन्हें अटक तक भेजा। उत्तरी भारत की इन विजय यात्राओं के लिये अपने छोटे भाई रघुनाथराव को सेनापति नियुक्त किया। पेशवा स्वयं पूना में रहा। सदाशिवराव भाऊ को दक्षिण कर्नाटक में उठते हुए शत्रुओं को दबाने के लिये नियुक्त किया। नाना साहेब ने पूना में रह कर मध्य हिन्दुस्तान मालवा, ओर्छा तथा निज़ाम के राष्ट्रों में शत्रु को उठने नहीं दिया। इस प्रकार १७४१-४२ और ४३ के सालों में मध्यभारत में अपना प्रभाव जमाकर नाना साहेब ने धर्मस्थानों तथा तीर्थों की रक्षा करनी शुरू की। नानासाहेब समझता था कि जब तक हिन्दुओं के या उसकी प्रजाओं के तीर्थ-स्थान सुरक्षित नहीं हैं उन्हें आराम नहीं मिल सकता। नाना साहेब धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। यद्यपि नाना साहेब की ब्रह्मेन्द्र स्वामी से नहीं बनी, क्योंकि ब्रह्मेन्द्र स्वामी दरबार का उत्तमर्ण था। परन्तु नाना साहेब ने नारायण दीक्षित नाम के काशी के प्रसिद्ध संन्यासी को अपना धार्मिक गुरु बनाया था। नारायण दीक्षित बालाजी विश्वनाथ के समय से सन्त-मंडली के सिद्ध साधु थे। इन्हीं की आध्यात्मिक शिक्षा द्वारा नाना साहेब ने अपनी आत्मिक उन्नति की। इस प्रकार घरेलू मामलों की ओर से शीघ्र ही निश्चिन्त हो, नाना साहेब तत्परता के साथ उत्तर-भारत की ओर बढ़ने के लिए कटिबद्ध हो गया।

: १२ :

अटक पर भगवा झंडा

हम देख चुके हैं कि किस प्रकार, १७३८ ई० में अफ़ग़ानिस्तान की ओर से नादिरशाह ने आक्रमण किया था। यह भी देख चुके हैं कि दिल्ली-दरबार में किस प्रकार दो पार्टियां बन गई थीं। तुराणी पार्टी ने स्वार्थों को सिद्ध करने के

सदाशिवराव भाऊ ने १७४६ ई० में १६ वर्ष की आयु में कर्नाटक प्रांत पर चढ़ाई कर विजय प्राप्त की। नाना साहेब पेशवा बना; इसके सामने कई अड़चनें थीं। दिल्ली दरबार की अड़चन तो थी, परन्तु असली अड़चन अपने भाइयों की ओर से थी। वह बालाजी बाजीराव पेशवा के आधीन नहीं रहना चाहते थे।

नागपुर के भोंसले—समय २ पर स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने के लिये मुसलमान सरदारों तक से सहायता लेने में संकोच नहीं करते थे। बङ्गाल के अलीवर्दीखाँ आदि सरदार, दिल्ली दरबार के इशारे पर मरा०ा मण्डल में फूट पैदा करने में कमी नहीं करते थे। इस अन्तःकलह के साथ २ नाना साहेब के ऊपर ऋण का भारी बोझ था। बाजीराव पेशवा ने बीसियों लड़ाइयाँ लड़ीं, अनेक प्रदेश जीते, परन्तु किसी का स्थिर प्रबन्ध नहीं किया। ऋण लेकर लड़ाइयाँ की गई, परिणाम यह हुआ कि जब बाजीराव का देहान्त हुआ तब पेशवा पर भारी कर्ज़ था। उत्तमर्ण लोग निरन्तर तकाजा करते थे। नाना साहेब ने सबसे पहले इसे दूर करना आवश्यक समझा। इसका एकमात्र उपाय यह था कि पेशवाओं के आधीन प्रदेशों में वसूली ठीक तरह की जाय नाना साहेब हिसाब किताब में पक्का था। वह यद्यपि अपने पिता की तरह भारी योद्धा था परन्तु प्रबन्ध करने में भी विशेष कुशल था। सबसे पूर्व गायकवाड़ आदि प्रदेशों की वसूली को नियत कर, ऋण को दूर करने की कोशिश की। चतुराई के साथ शाहूजी की मध्यस्थी से, महाराष्ट्र में कोल्हापुर और सतारा के राजाओं की एक राजधानी बनाने की कोशिश की। कुछ समय बाद इसमें सफलता भी हुई। नाना साहेब के २० वर्ष के कार्य को दो भागों में बाँट सकते हैं। प्रथम भाग १७४६ ई० तक है। दूसरा १७५०-१७६१ ई० तक। पहले ६ वर्षों में नाना साहेब शाहू महाराज की ओर से काम करता था। शाहू महाराज की मृत्यु के बाद ताराबाई ने फिर से रामराजा को आगे करके झगड़ा शुरू करना चाहा। इसके लिए गायकवाड़ पेशवा से नाराज़ था। क्योंकि पेशवा ने राष्ट्रीय कर्ज़ को पूरा करने के लिए उसके गुजरात प्रदेश की आमदनी को अपने अधिकार में किया था।

इसी समय पेशवा ने गायकवाड़ को कैद कर उससे शर्तें स्वीकार कराईं।

सरदार ने भारत पर ५ चढ़ाइयाँ कीं। भारत में रहने वाले पठान अफ़ग़ानों ने इसे समय समय पर पर्याप्त सहायता दी।

अहमदशाह दुर्रानी का जन्म १७३८ ई० में हुआ था। दुर्रानी ने शुरू से ही नादिरशाह की सेना में नौकरी की। १७४८ ई० में नादिरशाह की मृत्यु के पीछे अफ़ग़ानिस्तान का राज्य अहमदशाह दुर्रानी को मिला। इसने शहानिवाज़खां को शहावल्लीखान का खिताब देकर अपना वज़ीर बनाया। पानीपत की लड़ाई में यह शाहवल्लीखाँ दुर्रानी का दायाँ हाथ था। नादिरशाह की कमाई हुई सारी सम्पत्ति दुर्रानी को मिली, अतः उसे विजय-यात्रा करने के लिये रुपए की अड़चन नहीं हुई। खाली सेना को काम में लगाने के लिए पेशावर पर हमला किया और देशद्रोही अधिकारियों के निमन्त्रण पर पंजाब की ओर कूच किया।

दिल्ली दरबार के वज़ीर खानडौरान की मृत्यु के पीछे, कमरुद्दीनखान बादशाह का वज़ीर बना। इस वज़ीर ने शहानिवाज़खान के सरदार को पञ्जाब का सूबेदार बनाकर भेजा। शहानवाज़खान तथा उसके भाई की आपस में नहीं बनी। इस पारस्परिक लड़ाई से फायदा उठाकर अदीनाबेग नाम के सरदार ने अपना स्वार्थ सिद्ध किया। इसी ने अब्दाली को भारत में निमन्त्रण दिया। यह लाहौर के पास गरकपुर गांव का रहने वाला था। धीरे-धीरे दरबार में उन्नति कर रहा था। नादिरशाह के आक्रमण के समय अदीनाबेग सुलतानपुर में हाकिम था। सरहद के मामलों से इसे काफ़ी परिचिति थी। इस अदीनाबेग ने पञ्जाब के अधिकारी दोनों भाइयों में से बड़े को अब्दाली की सहायता द्वारा सूबेदार बनाने की आशा दिलाकर इसकी सूचना दोनों तरफ भेज दी। कमरुद्दीनखाँ ने इसका विरोध किया। परन्तु अब्दाली मौका देख रहा था। उसने एकदम १७४८ ई० में पेशावर से आगे बढ़कर मुल्तान प्रांत को अपने आधीन कर लिया। शाहनवाज़खान इसका विरोध करने के लिये आगे बढ़ा, परन्तु पराजित होकर लौटा। १२ जनवरी को अब्दाली ने लाहौर अपने आधीन कर लिया। कमरुद्दीनखां ने शाहज़ादा अहमदशाह की सहायता से सरहिन्द शहर पर अब्दाली को हराया। इसी स्थान पर अचानक तम्बू में तोप का गोला गिरा। कमुरुद्दीनखां निमाज़ पढ़ रहा था, वह यमलोक को रवाना हुआ। इतने

: १३ :

राष्ट्रभक्त और राष्ट्रद्रोही

Even the battle of Panipat was a triumph and a glory for the Marathas. They fought in the cause of "India for the Indians."

While the great mohammadan princes of Delhi. of Oud and the Deccan stood aside, intriguing and trimming. and though the Marathas were defeated. victorious Afgans rotired and never again interfered in the affairs of India.

Major Evens Well.

इस समय तक प्राय जितने भी भारतीय इतिहास लिखे हैं उन में यही लिखा जाता है कि पानीपत की लड़ाई भारतीय मुसलमानों और भारतीय हिन्दुओं में थी। भारतीय बालकों को बाल्यकाल से ही सिखाया जाता है कि तुम्हारे पूर्वज सदा से परस्पर लड़ते आए हैं। उनमें कभी समझौता हो ही नहीं सकता। भारतीय सरकारी विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में इसी दृष्टि से इतिहास पढ़ाया जाता है।

ऊपर जो उद्धरण लिखा गया है उससे पता लगता है कि निष्पक्ष युरोपियन ऐतिहासिक की दृष्टि में पानीपत की लड़ाई राष्ट्र-भक्तों और राष्ट्रद्रोहियों का युद्ध था। लेखक की सम्मति में मराठे केवल हिन्दुओं के प्रतिनिधि नहीं थे, अपितु उन सब शक्तियों और सरदारों के प्रतिनिधि थे जो भारतवर्ष को तथा भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली को विदेशी अफ़गानों के आक्रमण से बचाना चाहते थे। इस प्रसंग में हम पानीपत के उद्योग-पर्व का वर्णन करते हुए बताएँगे कि कौन २ वीर देशभक्त थे और कौन २ देशद्रोही। इसको स्पष्ट करने के लिए अब्दाली की पूर्व विजय-यात्राओं का संक्षिप्त वर्णन करना आवश्यक है।

नादिरशाह ने दिल्ली पर आक्रमण कर, निर्बल मुग़ल बादशाहों को अपने आधीन कर, सिन्धु नदी तक अधिकार कर लिया था। इसके बाद अहमदशाह दुर्रानी ने पंजाब प्रान्त पर आक्रमण कर अपना अधिकार जमाना चाहा। भारतवर्ष में फिर से अफ़ग़ान वंश की स्थापना करने के लिये इस अफ़ग़ान

मराठों की जंगलों तथा पहाड़ोंमें विचरने वाली सेनाओंने उसके पैर नहीं जमने दिए। मल्हारराव होलकर तथा शिन्दे ने सफ़दरजंग तथा गाज़ीउद्दीन के साथ मिल कर सारे उत्तर भारतवर्ष में अपना तेज प्रगट किया। परन्तु मराठों की इस विजय-यात्रा में एक ही कमी थी, वह कमी अव्यवस्था की थी। अन्नाजी हिंगणे, मल्हारराव होलकर, तथा शिन्दे आदि में अनबन हो गई। इनकी अड़चनों को सुलझाने वाला कोई न था। पेशवा दक्षिण की लड़ाइयों में व्यग्र था। उत्तर भारत में प्रभावशाली नेता के बिना काम नहीं चल सकता था।

इस अन्तः कलह की सुलगती आग को शान्त करने के लिये रघुनाथराव को १७५३ ई० में पेशवा ने उत्तर हिन्दुस्थान में भेजा। रघुनाथराव का स्वभाव तीव्र था, वह इस झगड़े को न निपटा सका, जाटों तथा राजपूतों से भी अनबन हो गई। जब तक रघुनाथराव स्वयं दिल्ली में रहा तब तक जाट तथा राजपूत चुप रहे, परन्तु उसके जाते ही वे लोग भी मराठों के विरोध में खड़े हो गये। मराठी सेना की कम संख्या को देख कर अफ़गान पक्ष ने अब्दाली को निमन्त्रण दे दिया। इस बार निमन्त्रण देने वाले सरदार का नाम नजीबुद्दौला था। दूसरी ओर गाजीउद्दीन तथा अवध के वज़ीर दक्षिण के मराठों की सहायता से दिल्ली दरबार की रक्षा कर रहे थे। इस चहल-पहल में एक वीर के बलिदान ने चिरकाल से दूर २ रहकर, मुकाबला करने वाली सेनाओं को पानीपत की लड़ाई में आमने सामने ला खड़ा किया। वह वीर था "दत्ताजी शिंदे"। १७६० ई० में अब्दाली से लड़ाई करते हुये यह सरदार मारा गया। रोमांचकारी बलिदान का समाचार सुन कर सारा हिन्दुस्तान काँप गया। सारे देश ने एक स्वर से मराठों के भगवे झण्डे के नीचे, पानीपत के मैदान में सदा के लिये अफ़गानों का अन्त करने का संकल्प किया।

दत्ताजी शिंदे के वध के कारण पेशवा का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। दत्ताजी शिंदे जैसे वीर पुरुष की मृत्यु छोटी मोटी बात न थी। नाना साहेब ने रघुनाथराव के सारे कारगुजार की पड़ताल की और निश्चय किया कि भविष्य में उत्तर भारत की विजय-यात्राओं में सेनापति का पद कर्नाटक के विजयी चिमणा जी आपा के पुत्र सदाशिवराव भाऊ को दिया जाय। उत्तर भारत के

में कन्धार के झगड़ों के कारण अब्दाली स्वदेश को लौट गया। पञ्जाब का काम कमुरुद्दीनखां के लड़के मीरमन्नू को मिला। उसने अन्तिम दम तक अब्दाली को भारत में आगे नहीं बढ़ने दिया। इधर बादशाह की मृत्यु का समाचार सुनकर शाहज़ादा दिल्ली की ओर आया। उसने निज़ाम उल्मुल्क को दक्षिण से दिल्ली बुलाया। परन्तु २१ मई १७४८ ई० को निज़ाम का देहान्त हो गया। तब लाचार होकर सफ़दरजङ्ग को अपना वज़ीर बनाया और गाज़ी-उद्दीन को दरबार में बख्शीगिरी का अधिकार दिया।

इधर मराठे वीर भी दरबारमें अपना अधिकार बढ़ा रहे थे। पठान लोग गङ्गा जमुना के बीच में अयोध्या लखनऊ आदि प्रदेशों में अलीमुहम्मद के नेतृत्व में उत्पात मचाते थे। सफ़दरजङ्ग ने मराठों के साथ मिलकर अलीमुहम्मद के तीनों लड़कों की पारस्परिक अनबन से फायदा उठाकर रुहेलखण्ड में अपना अधिकार जमाया। इसी समय मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गई। बादशाहत की रक्षा कैसे हो? अदीनाबेग तथा रुहेले पठान सरदार दिल्ली में फिर से पठान वंश को स्थापित करना चाहते थे। सफ़दरजंग तथा गाज़ीउद्दीन पठानों के शासन को नहीं चाहते थे। दोनों ने भारत को इन विदेशी पठानों के आक्रमण से बचाने के लिये १७५० ई०में मराठों के साथ एक अहदनामा किया। मराठों की ओर से इस पर हस्ताक्षर करने वाले जयापा शिंदे और मल्हार राव होलकर थे। इसकी मुख्य शर्तें दो ही थीं:—

१. ठटा मुलतान पञ्जाब राजपूताना रोहेले खण्ड में मराठी फौज के खर्च के लिये मराठों को चौथाई वसूल करने का अधिकार दिया जाय।

२. मराठों को चाहिये कि वह दिल्ली की बादशाही को अब्दाली तथा सिन्ध के अमीरों और रुहेलों के आक्रमण से बचाएँ।

इस इकरार के कारण मराठों और अब्दाली में प्रत्यक्ष मुकाबला ठन गया। दरबार में भी दो पक्ष हो गए। एक पक्ष इस अहदनामे को मानता था, दूसरा इसके विरुद्ध था। मराठों ने शिन्दे की सहायता से रुहेलखण्ड को जीत लिया। पंजाब के उत्तर भाग में रुहेलों तथा पठानों की नहीं चलने दी। अब्दाली ने कई बार चढ़ाइयां करके अपना अधिकार जमाना चाहा परन्तु सिक्खों तथा

थे। इन वीर जातिओं को अपने प्रभाव में रखने के लिये यही स्थान उपयुक्त था। अपनी इस स्थिति-विशेषता के कारण ही यह मैदान वीरों के रक्त से सींचा जाकर, दुनियाँ के इतिहास में अमर हो गया है। अंग्रेज़ों ने भी पानीपत के पास दिल्ली के मैदानोंमें नए किले खड़े कर, प्राचीन इतिहास को दुहराया। स्वतन्त्र अफ़ग़ानिस्तान का मुकाबला कलकत्ते बैठ कर नहीं हो सकता था। स्थान की सैनिक योग्यता को देखकर इन को भी यहां आना पड़ा। अंग्रेज़ी शासन काल में अफ़गानिस्तान भारत पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सका। अन्त में अंग्रेजी सल्तनत को भी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिकूलता तथा राष्ट्रीय जाग्रति के कारण भारत छोड़ना पड़ा है। प्रस्तुत कथा प्रसंग में इस भूमि ने वीर मराठों को निमन्त्रित किया।

मराठे वीरों ने वीर भूमि के आह्वान को सुना और विदेशियों के पदाघात से मातृ-भूमि की रक्षा करने के लिए शुभ मुहूर्त में सदाशिवराव भाऊ के नेतृत्व में उत्तर की ओर प्रस्थान किया।

—:o:—

: १५ :

रंगपञ्चमी से रणरंग में

अब्दाली की दिल्ली पर चढ़ाई सुन कर, दिल्ली के बादशाह ने पेशवाको बुलाया। सब अवस्थाओं की ऊंच-नीच देखकर पेशवा ने १४ मार्च १७६० को बटदुर स्थान में रंगपञ्चमी का त्यौहार मनाकर उत्तर की विजय यात्रा करने मे के लिए सब सरदारों को रङ्गपञ्चमी के रंग गुलाल से अभिनन्दित कर, विदा किया। सदाशिवराव भाऊ मुख्य सेनापति नियत हुआ। पेशवा का पुत्र विश्वासराव भाऊ साथ था। ५० हजार रुपया तथा ५ हजार की सेना साथ थी। इब्राहीम गारदी अपने तोपखाने के साथ था। दक्षिण कर्नाटक में युरोपियनों का मुकाबला करने के लिये सदाशिवराव भाऊ ने इब्राहीम गारदी के आधीन युरोपियन ढङ्ग पर विशेष सेना तय्यार कराई थी। इस सेना के भरोसे सदाशिवराव भाऊ को अपनी विजय में पूरा विश्वास था।

विश्वास के साथ सेनाओं ने कूच किया। मार्ग में रूठे सरदारों को

विजित प्रदेशों की व्यवस्था को ठीक करने तथा छोटे मोटे सरदारों पर दबदबा बैठाने के लिये पेशवा ने अपने १६ साल के लड़के विश्वासराव भाऊ को भी उत्तर भारत में भेजना उचित समझा। मराठों ने निश्चय किया या तो सदाके लिए अब्दालीकी चढ़ाइयों को समाप्त करेंगे अथवा मर मिटकर दुनियांके इतिहासमें अमर हो जायेंगे। वीरोंके ऐसे ही ढ़ङ्ग होते हैं। जब एक वार कुछ करने का निश्चय कर लिया फिर कोई शक्ति नहीं जो उन्हें विचलित करसके। मराठी सेनायें वीर हत्या का बदला लेने के लिये चल पड़ीं। इन सेनाओं के वीर नाद को सुन कर, शत्रु पक्ष भी जी-जान से तय्यारियाँ करने लगा। दोनों पक्षों में युद्ध ठनने लगा है। एक मुग़ल बादशाही के रक्षक, भारतको विदेशी आक्रमण से बचाने वाले राजभक्तों का और दूसरे अफ़गानिस्तान के बादशाह को भारत पर आक्रमण करने के लिये बुलाने वाले देशद्रोही—राष्ट्र-शत्रुओं का।

: १४ :

पानीपत की ओर सेनाओं का प्रस्थान

पानीपत का मैदान भारतीय इतिहास में विशेष महत्व का है। कौरव पाण्डव, पृथ्वीराज, मुहम्मदगौरी, पठान, मुगल मराठे सब विजेताओं ने इस मैदान में ही विजय प्राप्त करके दुश्मन को सदा के लियें समाप्त करने का यत्न किया। पानीपत के इस मैदान में आज तक सात साम्राज्य तबाह हो चुके है। अंग्रेजी शासनकाल से महले पानीपत का मैदान भारतीय शासन का केन्द्रस्थान बना हुआ था। उत्तर तथा दक्षिण की राज शक्तियों की शक्ति-परीक्षा का यहीं स्थान था। जो कोई शक्ति भारत में अपना एकछत्र राज्य स्थापित करना चाहती थी, उसके लिए जरूरी था कि वह सारे भारत पर नियंत्रण रखने के लिए इस केन्द्र स्थान पर अधिकार करे। वहाँ स्थिर होकर, उत्तरदक्षिण तथा मध्य भारत के साथ २ राजपूताना के मैदनों पर भी आँख रखी जा सकती थी। यह मैदान सदा से बलशाली शक्तियों से घिरा रहा है। उत्तर में पंजाबी वीर, आस-पास पश्चिम में राजपूत वीर, पूर्व तथा उत्तर के रुहेले और पुरबिये, दक्षिण में मराठे वीर, इस रण-,मैदान में अपने करतब दिखाने को तैयार रहते

मैदान में पहुँचने से पहले, दोनों ने राजदूतों तथा भेदियों द्वारा नीति-चक्रों की शतरञ्ज के दाव पेच-खेले। कोई किसी को पकड़ न सका। यदि कोई जीतने लगता था तो भाग्य उसके विपरीत हो जाता। अन्त तक दोनों डट रहे। दोनों ने एक दूसरे का रास्ता रोक लिया। सब दृष्टियों से दोनों तुले हुए थे। कोई किसी से कम नहीं था।

सदाशिव भाऊ ने बुंदेले सरदार को लिखा कि तुमने शुजा को मलकाजमानी द्वारा अपनी ओर मिलाने की कोशिश करनी। उसे कहना कि मराठे लोग शाहआलम को दिल्ली की गद्दी पर बैठा कर तुम्हें उसका वज़ीर बनाएँगे। उसे यह भी लिखा कि नजीबुद्दौला को छोड़ कर अन्य मुगल सरदारों, हाफिज़ रहमत खां आदि को अपनी ओर मिलाने की कोशिश करनी।

दूसरी ओर मलकाजमानी ने नजीबुद्दौला के प्रभाव में आकर, सब मुसलमानों को इकट्ठा करना शुरू किया। सेनाओं का जमाव कर दिल्ली में मुसलमानों की छोटी-मोटी सेना को जबलपुर की ओर भेज दिया। मुसलमानों ने दिल्ली से काशी तक अपना प्रभाव फैलाया। उत्तर में हिमालय तक अब्दाली की सेना फैली हुई थी। रुहेलखण्ड में शुजा की उदासीन सेना थी। इटावा तथा यमुना के आस-पास बुंदेलखण्ड में मरा०ों का थोड़ा बहुत जोर था। अनुभवी गोविन्द पन्त बुंदेले ने मराठों की शक्ति को संभाल रखा था। परन्तु यहां के मराठे सरदारों में आपस में अनबन थी। आखिर ३० मई को सदाशिव राव भाऊ ग्वालियर पहुंचा। इस सारी यात्रा में सदाशिव भाऊ ने होलकर तथा बुंदेले को इसी आशय के पत्र लिखे कि कर वसूल करो और शत्रु-पक्ष में फूट पैदा करो। अब्दाली के भक्त सरदारों को अपनी ओर मिलाओ। शुजा पर दोनों पक्ष जोर लगा रहे थे। नजीबुद्दौला तथा बुंदेले दोनों इसको अपनी अपनी ओर मिलाने की कोशिशकर रहे थे। इतनेमें जून का महीना आ गया। वर्षा के कारण आगे बढ़ना मुश्किल था। भाऊ ने जनकोजी को लिखा कि मराठी सेना १० जुलाई तक आगरे पहुंच जायगी। ,इधर शुजा पर अब्दाली का जादू चल गया। अब्दाली और शुजा एक हो गए।

विचार यह था कि आगरे के पास से मराठी सेना यमुना पार कर, बुन्देले की सेना के साथ मिलकर सकुराबाद में अब्दाली की सेना पर छापा

प्रसन्न करते हुए, अव्यवस्थित सरदारों को सुव्यवस्था करने के लिए प्रेरित किया पेशवा के प्रतिभाशाली प्रतिनिधि को आता देखकर सब सरदार सावधान हो गए।

दयाजी गायकवाड़ पेशवाओं के प्रभाव से अलग हो रहा था और पहिले रीति-रिवाज के विपरीत पेशवा के प्रतिनिधि को बांये हाथ से अभिनन्दित करने लगा था। सदाशिवराव भाऊ ने उसे कहा कि पानीपत से लौट कर तुम्हें गुजरात मालवा का अखण्ड अधिकार दिया जायेगा। इस से प्रसन्न हो कर, वह भी पूर्ववत् पेशवा के प्रति सम्मानपूर्वक व्यवहार करने लगा और दांय हाथ से प्रणाम करना शुरु कर दिया।

इब्राहीमखां गारदी को सदेह था कि कहीं मराठे लोग गनिमी युद्धपद्धति (छापेडालकर शत्रु को हैरान करना) का अवलम्बन कर मुझे तोपखाना सहित, मैदान में अकेला छोड़कर न भाग जाँय। सदाशिवराव भाऊ ने उसे विश्वास दिलाया कि युद्ध के मैदान में मैं अन्त तक तुम्हारे साथ रहूंगा, दोनों एक दूसरे का अन्त तक साथ देंगे। इस प्रकार वीर पुरुषों को अपनाकर, सदाशिवराव भाऊ आगे बढ़ने लगा मराठों की इस सेना में ब्राह्मण, प्रभु मराठे सब जातियों के लोग थे। सदाशिवाव भाऊ ने बुन्देलखण्ड के मराठे सूबेदार बुन्देल पन्त को शत्रुओं की स्थिति जानने के लिए लगातार सैंकड़ों पत्र लिखे इन पत्रों से प्रकट होता है कि सदाशिवराव भाऊ किसी सावधानी तथा दूरदर्शिता के साथ शत्रु के गढ़ को साम, दाम, दण्ड, भेद आदि उपायों से फोड़ कर आगे बढ़ रहा था। सदाशिवराव भाऊ केवल वीर ही नहीं था अपितु अपने पिता की तरह नीति कुशल भी था। दूसरी ओर अब्दाली अनुभवी सेनापति था। बाल्यकाल से युद्धों में ही खेला था। दोनों पक्षों के सेनापतियों ने एक दूसरे को उस पार पहुँचा कर ही, लौटने का निश्चय किया था। दोनों अपने पूरे यौवन पर थे।

दोनोंके दिलों पर यौवनमद से सींची जा रही महत्त्वाकांक्षा तथा विजयाभिलाषा की ज्वाला जल रही थी। दोनोंने निश्चय किया हुआ था कि प्रतिपक्षी को हरा कर ही लौटेंगे। सदाशिवराव भाऊ की आयु इस समय ३० वर्ष की थी। अहमदशाह अब्दाली २६ वें वर्ष में प्रवेश कर चुका था। पानीपत के

विश्वासराव बादशाह बना दिया गया है। खास-ए-दीवान की सुनहरी छतों को तोड़ दिया है। इस प्रकार इस्लाम के नाम पर, उसने स्वपक्ष से विचलित होते हुए मुसलमान सरदारों को अपने साथ रखा। नजीबुद्दौला ने विदेशी दुश्मन अब्दाली के आक्रमण को, मुसलमान और हिन्दुओं का प्रश्न बना दिया। मराठों ने इन भ्रमपूर्ण समाचारों को दूर करने की काफी कोशिश की। उन्होंने शाहआलम के पुत्र वलीवद के नाम से शासन कार्य किया। शाहआलम की छाप के सिक्के भी चलाए।

परन्तु साम्प्रदायिक कट्टरपन से आविष्ट हुए भेदभाव जल्दी शान्त नहीं हुए। आज हम भारत में देख रहे हैं कि किस प्रकार विदेशी शक्ति की कठ-पुतली बनकर १५ अगस्त १९४७ को साम्प्रदायिक मुसलमानों ने पाकिस्तान का निर्माण किया है।

उस समय अफ़गानिस्तान के विदेशी राजा के कटपुतली बने हुए, नजीबुद्दौला ने इस राष्ट्रीय प्रश्न को मज़हबी रूप दे दिया। इस देश द्रोह का परिणाम यह हुआ कि मुगल बादशाही की रक्षा न हो सकी। अच्छा होता यदि शिवराव भाऊ एक दम आक्रमण कर ऐसे स्वार्थी देश-द्रोहियों के विचारों को फैलने न देता। सदाशिवराव भाऊ की इस गलती के कारण युद्ध का रंग-ढङ्ग ही बदल गया। अब यह प्रश्न हिन्दुओं और मुसलमानों का हो गया। परिणाम यह हुआ कि मज़हबी जोश में आकर हिन्दुस्तानी भाई-भाई आपस में लड़ पड़े। दोनों को लड़ा कर महत्वाकांक्षी अफ़गानी अब्दाली स्वदेश को लौट गया।

डेढ़ मास बीत गया, यमुना का चढ़ाव नहीं उतरा। बुंदेले की अकेली टुकड़ी कुछ नहीं कर सकती थी। आखिर यह निश्चय किया गया कि उत्तर की ओर कुंजपुरा स्थान की ओर पहुंच कर अब्दाली की सेना को यमुना तथा बुंदेल की सेनाओं के मध्य में घेरा जाय। कुंजपुरा की ओर शिंदे होलकर आदि सरदारों को मुकाबिला करने के लिये भेजा। स्वयं पीछे २ तोपखाने के साथ प्रस्थान किया। इस समय सदाशिव भाऊ की सेना ने यमुना के पश्चिम तटवर्ती २०० मील के मैदान की रक्षा करनी थी। दिल्ली से उत्तर की ओर यमुना के पश्चिम में बागपत २० मील, सोनपत २६ मील,

डाल कर, शत्रु को उत्तर की ओर धकेल दे। इस हालत में शुजा को मराठों के साथ सन्धि करनी पड़ेगी। परन्तु यमुना का पूर चढ़ा हुआ था। सेना का पार उतरना मुश्किल था। अतः निश्चय किया गया कि उधर न जाकर दिल्ली पर अधिकार किया जाय। वहां से मथुरा की ओर चले। मथुरा में जनकोजी शिंदे तथा होल्कर की मध्यस्थी से सदाशिवराव भाऊ ने जाटों के राजा सूरजमल को अपने साथ मिलाया। सदाशिवराव भाऊ ने एक कोस आगे बढ़कर, राजा सूरजमल की अगवाई की। यमुना को साक्षी कर, दोनोंने एक दूसरे की सहायता करने की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार राजपूताने की ओर से रसद पहुंचाने का प्रबन्ध कर सदाशिवराव भाऊ निश्चिन्त हुआ।

इसके बाद शिंदे, होलकर तथा बलवन्तराव आदि मराठे सरदारों को इब्राहीम खान गार्दी के तोफखाने के साथ दिल्ली शहर सर करने के लिए भेजा। देखते-देखते १२ जुलाई को दिल्ली मराठों के अधिकार में आगयी। सदाशिवराव भाऊ ने विश्वासराव भाऊ को आगे करके दिल्ली में प्रवेश किया। विश्वासराव भाऊ ने शान के साथ किले में प्रवेश किया। बादशाही दरबार की सम्पत्ति तथा वैभव को देख कर सब को आनन्द हुआ। सदाशिवराव भाऊ ने किले तथा दिल्ली शहर का प्रबन्ध नारोजी शङ्कर को सौंपा। दिल्ली में ठहर कर अब्दाली की सेना तथा सरदारों में फूट फैलानी शुरू की। दिल्ली में मराठों को अधिकार प्राप्त करते देख कर, शुजा तथा रहमतखां आदि सरदारों को अब्दाली के साथ मिल जाने का दुःख हुआ, उनके दिल टूट गए। सदाशिवराव भाऊ के पास शुजा का भवानीशंकर नाम का वकील रहता था। उसने शुजा की ओर से सन्धि की बातचात भी शुरू कर दी। इस समय यदि सदाशिवराव भाऊ इटावा की ओर से बुन्देल की सेना के साथ मिलकर, अब्दाली की सेना पर आक्रमण कर देता तो निश्चय ही शुजा को मराठों के साथ सन्धि करनी पड़ती।

परन्तु सदाशिवराव भाऊ ने ऐसा नहीं किया। डेढ़ महीना संधि की बातचीत करने में बिता दिया। इतने में नजीबुद्दौला ने कई तरह की उत्तेजक बातें फैला कर मुसलमान मात्र को मराठों के विरुद्ध भड़काया। उसने अफवाह फैला दी कि मराठों ने बादशाह के सिंहासन पर अपना अधिकार कर लिया है।

विश्वासराव बादशाह बना दिया गया है। खास-ए-दीवान की सुनहरी छतों को तोड़ दिया है। इस प्रकार इस्लाम के नाम पर, उसने स्वपक्ष से विचलित होते हुए मुसलमान सरदारों को अपने साथ रखा। नजीबुद्दौला ने विदेशी दुश्मन अब्दाली के आक्रमण को, मुसलमान और हिन्दुओं का प्रश्न बना दिया। मराठों ने इन भ्रमपूर्ण समाचारों को दूर करने की काफी कोशिश की। उन्होंने शाहआलम के पुत्र वलीवद के नाम से शासन कार्य किया। शाहआलम की छाप के सिक्के भी चलाए।

परन्तु साम्प्रदायिक कट्टरपन से आविष्ट हुए भेदभाव जल्दी शान्त नहीं हुए। आज हम भारत में देख रहे हैं कि किस प्रकार विदेशी शक्ति की कठ-पुतली बनकर १५ अगस्त १९४७ को साम्प्रदायिक मुसलमानों ने पाकिस्तान का निर्माण किया है।

उस समय अफगानिस्तान के विदेशी राजा के कठपुतली बने हुए, नजीबुद्दौला ने इस राष्ट्रीय प्रश्न को मज़हबी रूप दे दिया। इस देश द्रोह का परिणाम यह हुआ कि मुगल बादशाही की रक्षा न हो सकी। अच्छा होता यदि शिवराव भाऊ एक दम आक्रमण कर ऐसे स्वार्थी देश-द्रोहियों के विचारों को फैलने न देता। सदाशिवराव भाऊ की इस गलती के कारण युद्ध का रंग-ढङ्ग ही बदल गया। अब यह प्रश्न हिन्दुओं और मुसलमानों का हो गया। परिणाम यह हुआ कि मज़हबी जोश में आकर हिन्दुस्तानी भाई-भाई आपस में लड़ पड़े। दोनों को लड़ा कर महत्वाकांक्षी अफगानी अब्दाली स्वदेश को लौट गया।

डेढ़ मास बीत गया, यमुना का चढ़ाव नहीं उतरा। बुंदेले की अकेली टुकड़ी कुछ नहीं कर सकती थीं। आखिर यह निश्चय किया गया कि उत्तर की ओर कुंजपुरा स्थान की ओर पहुंच कर अब्दाली की सेना को यमुना तथा बुंदेल की सेनाओं के मध्य में घेरा जाय। कुंजपुरा की ओर शिंदे होलकर आदि सरदारों को मुकाबिला करने के लिये भेजा। स्वयं पीछे २ तोपखाने के साथ प्रस्थान किया। इस समय सदाशिव भाऊ की सेना ने यमुना के पश्चिम तटवर्ती २०० मील के मैदान की रक्षा करनी थी। दिल्ली से उत्तर की ओर यमुना के पश्चिम में बागपत २० मील, सोनपत २६ मील,

गणेरि ३६ मील; पानीपत ५४ मील, और कुंजपुरा ७८ मील पर है।

दिल्ली से नीचे दक्षिण की ओर मथुरा ६० मील पर है। आगरा ५० मील है। यमुना के इस पश्चिमी २०० मील के मैदान की मराठों ने देख-रेख करनी थी। यमुना के पश्चिमी तट पर बागपत तथा सोनपत के सामने दूसरे किनारे पर अब्दाली की सेना थी। बुंदेलखंड की ओर बुंदेले वीर थे। उत्तर की ओर मराठे आगे बढ़े। दमाजी गायकवाड़ आदि मराठों को रोकने के लिये अब्दाली ने कुतुबशाह तथा अब्दुलसमदखान को भेजा। इस कुतुबशाह ने ही दत्ताजी शिंदे का वध किया था। इसको देखते ही मराठों का खून खौल उठा। भयंकर लड़ाई हुई, दोनों सरदार मराठों के हाथ में आ गये। सदाशिवराव भाऊ के पास भेज दिये गये। सदाशिवराव भाऊ ने दोनों का शिरच्छेद करने की आज्ञा दी, शिरच्छेद किया गया। दत्ताजी के खून का बदला लिया, रक्त का रक्त से तर्पण किया गया। इस समाचार को सुन कर अब्दाली के रोंगटे खड़े हो गये, इस प्रकार शत्रु का दमन कर मराठों ने १६ अक्टूबर १७६० में कुंजपुरा में विजय-दशमी का त्यौहार धूमधाम के साथ मनाया। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके ही असली विजय-दशमी मनाई जा सकती है। आज हम लोगों ने विजय-दशमी जैसे वीरतापूर्ण त्यौहारों को नाटक तथा लीला का रूप दे दिया है। देश भाइयो! यदि असली विजय-दशमी माननी है तो मराठे वीरों की तरह देशद्रोहियों का मान मर्दन करके राम का नाम जपो। यही सच्ची विजय-दशमी है।

इसी समय सदाशिवराव भाऊ ने गोविन्द पंत बुन्देले को लिखा था कि तुम बुन्देलखंड की ओर से अब्दाली की सेना की रसद को रोको तथा अचानक आक्रमण की युद्ध-पद्धति का सहारा लेकर अब्दाली की सेना को अपनी ओर लगाये रखो। परन्तु बुन्देले की सेना थोड़ी थी, उस ने इस थोड़ी सेना के द्वारा रसद तो रोकी परन्तु अब्दाली की सेना को वह अपनी ओर न खींच सका। इतने में अब्दाली ने अपने आपको चारों ओर से घिरा हुआ देखकर यमुना पार करने का निश्चय किया। रसद के बन्द हो जाने से सेना में महंगाई की बीमारी फूट पड़ी। आखिर २५ अक्टूबर को सदाशिवराव भाऊ को खबर मिली कि अब्दाली की सेना यमुना के पश्चिमी किनारे पर, बागपत के

सामने उतर रही है।

अब्दाली ने यमुना पार करने का निश्चय कर लिया था। चाँदी के पत्रों पर कुरान की आयतें लिखकर, यमुना में प्रवाहित कीं। छाती तक गहरे पानी में हाथियों की पंक्ति खड़ी कर उन पर सारा सामान नदी से पार उतारा। स्वयं घोड़ी पर सवार होकर यमुना पार की, सिपाहियों ने भी,वीर सेनापति का अनुकरण किया। देखते २ बागपत के मैदान में अब्दाली एक लाख सेना के साथ पहुंच गया, इस सेना में २४ हजार सेना अब्दाली की थी। ३० हजार शुजा की और शेष देशी सेना थी। बागपत में मराठों की छोटी सी टुकड़ी थी। अब्दाली की सेना को सिर पर आया देखकर वह टुकड़ी कुञ्जपुरा की ओर झुकी। सदाशिवराव भाऊ ने एकदम पानीपत की ओर बागडोर मोड़ी और गोविन्द पन्त बुन्देले को लिखा कि वह शीघ्र ही अपनी सेना लेकर, बागपत में अब्दाली की सेना का पीछा करे।

इस समय रसद बन्द हो जाने से अब्दाली की सेना की बुरी हालत थी। कीमतें मंहगी हो रही थीं। पीठी तीन सेर, चने चार सेर, घी छटांकों के भाव बिक रहा था। मराठी सेना में गेहूं १६ सेर, चने १२ सेर, घी डेढ़ सेर के भाव बिक रहा था। बुन्देल पंत की छोटी सी सेना यमुना पार न उतर सकी। इतना ही नहीं अब्दाली ने शाहवल्लीखान के लड़के अताईखान को ४ जनवरी के दिन बुन्देले पर आक्रमण करने के लिये भेजा। इस युद्ध में गोविन्द पन्त बुन्देले की पुत्र के साथ मृत्यु हुई।

इस घटना से पहले मराठों की स्थिति सब प्रकार से अच्छी रही। बुन्देले के मरते ही अब्दाली का रसद का द्वार खुल गया। अब्दाली सेना का अन्न कष्ट कम होने लगा। दूसरी तरफ मराठों के यहां कुटिलग्रह कोप प्रकट करने लगे।

पानीपत के मैदान में मराठों ने अपना जमाव किया। मराठों में दो पक्ष हो गये। एक पक्ष का कहना था कि हमें शत्रु की सेना पर धावा कर उसे हैरान करना चाहिये। दूसरे पक्ष का कहना था कि हमें पानीपत में मोर्चा बन्दी करके शत्रु की सेना का प्रत्यक्ष मुकाबला करना चाहिये। मल्हारराव होलकर छापा डालकर लड़ाई करने के पक्ष में था। सदाशिवराव भाऊ ने

इब्राहीमखां गारदी के तोपखाने के भरोसे पर, मोर्चाबन्दी करके लड़ने का निश्चय किया। चारों ओर बड़ी भारी खन्दक खोदी गई। मोर्चाबन्दी की गई। इधर पानीपत से तीन दिन की दूरी के फासले पर अब्दाली की सेना थी। कुछ दिनों तक मराठी सेना की हालत अच्छी रही, परन्तु बुन्देले की मृत्यु के बाद अब्दाली प्रबल होने लगा। सदाशिवराव को भरोसा था कि दक्षिण से उसे सहायता पहुंचेगी। सदाशिवराव भाऊ के गोविन्द पन्त बुन्देले के नाम लिखे हुए नवम्बर तथा दिसम्बर मास के पत्र नहीं मिलते।

प्रतीत होता है ये पत्र शत्रु के हाथ में चले गए। शत्रु ने इन पत्रों का प्रयोग कर दक्षिण तथा उत्तर की ओर से रसद रोकने की कोशिश की। परिणाम यह हुआ कि मराठी सेना में मंहगाई के साथ२ बीमारी फूट पड़ी। सदाशिवराव भाऊ को आशा थी कि दिल्ली से २० लाख का खजाना आएगा, वह आशा भी पूरी नहीं हुई। जाटों तथा राजपूतों की ओर से भी पर्याप्त सहायता नहीं मिली। आखिर भाऊ ने दादा जी को ३०० सवारों को रुपयों की थैलियाँ लाने के लिये दिल्ली भेजा। रक्षा के लिये ५०० सरदार भी साथ भेजे। यह लोग रुपया लेकर रात को लौट रहे थे कि अंधेरे में शत्रु के डेरे में भूल से भटक गये।

दोनों सेनाएँ महीनों निश्चेष्ट होने के कारण थक गई थीं। दोनों सेनाएं एक दूसरे की स्थिति को नहीं जानती थीं। शुजाउद्दौला तथा रुहेले सरदारों ने अब्दाली को कहा कि मराठों पर आक्रमण करो।

अब्दाली ने कहा तुम अपना काम करो। लड़ाई का मैदान मेरे लिये है। इधर मंहगी तथा बीमारी से तङ्ग आकर मराठी सेना ने सन्धि करने की इच्छा प्रकट की। अब्दाली ने कहला भेजा कि मैं तो युद्ध करना ही जानता हूं—मुझे नहीं पता सन्धि किसे कहते हैं। यदि कभी सन्धि की सम्भावना होती थी तो नजीबुद्दौला बीच में पड़ कर फिर से अब्दाली को युद्ध के लिये तय्यार करता था। आखिर १०-१०-१७६१ के दिन मराठी सेना अधीर हो और उसने सदाशिवराव भाऊ से कहा कि अब हम बहुत देर नहीं ठहर सकते अब लड़ाई की तैयारी करो। रङ्गपञ्चमी में रङ्गगुलाल की रेल करने वाली मराठी सेना कुंजपुरे में विजयदशमी का त्योहार मनाकर १०-१०-१७६१ ई०

के दिन रणरंग में तलवारों के साथ शत्रुओं के लहू से रंग गुलाल खेलने के किए उतावली हो उठी। इस उतावली सेना को कोई नहीं रोक सका।

: १६ :

वीरों का बलिदान

१०-१०-१७६१ शनिवार के दिन मराठी सेना ने मकर संक्रान्ति का दिन आनन्दपूर्वक मनाया। अगले दो दिनों में अन्तिम बलिदान की तैयारी की। निश्चय किया गया कि बुधवार को प्रातःकाल शत्रु-सेना पर अन्तिम धावा बोला जाय। चारों ओर बड़े २ सरदारों को तैनात करके तोपखाने की रक्षा के बीच सुरक्षित मण्डलियों में स्त्री-समुदाय को रख कर शत्रु की सेना को बीच में से फोड़ कर निकलने का संकल्प किया। मध्यरात तक सब तय्यारियां हो गईं। रात के अन्तिम प्रहर में सदाशिवराव ने काशीराय के हाथ एक चिट्ठी भेजी, इसमें लिखा था।

"अब तुम्हारे पापों का प्याला लबालब भर चुका है। अब अधिक नहीं सहा जा सकता। यदि कोई सन्धि-चर्चा करनी हो तो एकदम कर लो।" जब यह चिट्ठी अब्दाली के पास पहुँची तो उसने कहा आज आराम करो कल यात्रा की तैयारी करेंगे। कल का दिन आ पहुंचा।

अन्तिम घड़ी आ पहुंची। तीसरे पहरे तक दोनों ओर से भयंकर मार-काट मची। अब्दाली अपने डेरे में बैठा सारी स्थिति को देख रहा था। अब्दाली ने अपनी सेना की छावनी के सामने, कुछ दूरी पर अपना लाल तम्बू लगवाया था। इस स्थान पर प्रतिदिन प्रातःकाल निमाज करने तथा सायंकाल भोजन करने आता था। दिन भर घोड़ी पर सवार होकर, सेना में दौड़ लगाता था। रात को ५००० हजार सेना की टुकड़ी को शत्रु पर आँख रखने के लिए भेज देता था और एक टुकड़ी को छावनी के चारों ओर पहरे पर नियुक्त किया जाता था। अपने दोस्तों को आनन्द की नींद सोने की अनुमति देकर स्वयं दौरा लगाता। पानीपत में डेढ़ मास तक मोर्चाबन्दी लगाकर अब्दाली ने आखिर मराठों की रसद बन्द करने में सफलता पाई।

सदाशिवराव भाऊ विश्वासराव भाऊ तथा इब्राहीमखान गारदी निश्चित की गई योजना के अनुसार शत्रुपक्ष को पीछे हटाते हुए आगे बढ़ रहे थे। इतने में ठीक दोपहर को विश्वासराव के गोली लगी। वह धराशायी हुआ। सेना में खलबली मच गई। सदाशिवराव भाऊ आपे से बाहर हो गया। पूर्वकृत निश्चय को एकदम बदल दिया। सेना हैरान होकर मैदान छोड़ भागी। जनको सिंधे तथा सदाशिवराव भाऊ ने अन्तिम दम तक मैदान नहीं छोड़ा। इब्राहीम खान गारदी शत्रु-सेना द्वारा घेरा जाकर शत्रु के हाथ में कैद हुआ। इसी समय अब्दाली ने अपनी विशेष सेना द्वारा आक्रमण करके, प्रातःकाल से भूख-प्यास की परवाह किये बिना लड़ती हुई मराठी सेना को तीन तेरह कर दिया। सदाशिवराव भाऊ भी वहीं खेत रहा। मल्हारराव आदि वीर वहां से बच निकले। नाना फड़नवीस तथा महादाजी सेंधिया वेश बदल कर दक्षिण पहुंचे। इस पराजय का हाल सुनकर, दिल्ली की मराठी सेना भी दक्षिण को भाग निकली। राजपूताना के मैदानों में से होते हुये मराठे वीर जैसे तैसे दक्षिण की ओर भागे। दक्षिण में हाहाकार मच गया। अगले दिन शुजा ने अब्दाली की अनुमति से सदाशिवराव भाऊ तथा विश्वासराव भाऊ का देहान्त संस्कार आर्य-पद्धति के अनुसार कराया। वीरों ने देश-रक्षा के लिये महीनों से जिस बलिदान की तय्यारी की थी आज उसकी पूर्णाहुति हो गई। कुछ समय के लिये मराठों की आशाएं टूट गईं। नाना साहेब इस समाचार को सुनकर शोकाकुल होकर दिन प्रतिदिन क्षीण होने लगे। इसी शोक में वह इस लोक से चल बसे। इस युद्ध से मराठों की बढ़ती शक्ति को भारी धक्का पहुंचा। परन्तु विजयी शत्रुपक्ष को भी कुछ लाभ नहीं हुआ।

: १७ :

किसको क्या मिला ?

पानीपत का भयंकर युद्ध समाप्त होगया। दोनों पक्षों का भयंकर जन-नाश धन-नाश तथा शक्ति-नाश हुआ। प्रश्न यह है कि दोनों में से किस को क्या

मिला ? दिल्ली की बादशाही को किसने संभाला ? दोनों शक्तियां लड़ती २ घायल होकर, क्षीण हो गईं। मराठों का दम टूट गया। अब्दाली विजेता बना, परन्तु उसे कुछ नहीं मिला। युद्ध के बाद भारत में बसे हुये मुसलमान अब्दाली को घृणा की दृष्टि से देखने लगे। अफगानी सिपाहियों ने भी स्वदेश लौटने के लिये जोर दिया। उधर कंधार में अब्दाली को थका हुआ देखकर विद्रोही सरदारों ने बगावत के झंडे खड़े कर दिये। लाचार होकर अब्दाली को भारत छोड़ना पड़ा। विजय और पराजय में कोई भेद न रहा। दोनों ने भारी नुकसान उठाया। मराठों की शक्ति कम हो गई। अब वे दिल्ली दरबार में अपना ज़ोर न जमा सके। गाज़ीउद्दीन दक्षिण होता हुआ बर्मा की ओर भाग गया। दिल्ली दरबार पूर्ववत असुरक्षित रहा। इसी समय भारत के इतिहास में एक तीसरी शक्ति ने अपने करतब दिखाने शुरू किये। पानीपत की इस लड़ाई से चार साल पूर्व इस नई शक्ति के प्रतिनिधियों ने १७५७ ई० में प्लासी की लड़ाई के बाद दिल्ली दरबार से बंगाल और बिहार की दीवानी प्राप्त की। इस शक्ति का विरोध करने का दम रखने वाले दक्षिण के मराठे ही थे। परन्तु अभाग्यवश पानीपत की लड़ाई में मराठों की कमर टूट गई। मराठा-मंडल में फिर से अन्तःकलह की आग सुलगने लगी। पानीपत की लड़ाई में, दो शक्तियों ने आपस में लड़कर इस तीसरी शक्ति के लिये रास्ता साफ कर दिया। दिल्ली दरबार का बादशाह शाहआलम महत्वाकांक्षियों की कठपुतली बन गया। उसने कहा, जो हमें दिल्ली पहुंचाएगा उस पर ही हम कृपा करेंगे। मराठों और अंगरेजों ने कोशिश की। मराठे थक चुके थे। उत्तर भारत में उनका प्रभाव कम हो रहा था। सरदारों में ईर्ष्याग्नि धधक रही थी। इस समय इस तीसरी शक्ति ने मराठों के जयचन्द्र 'राघोबादादा' का सहारा लेकर, पानीपत के युद्ध का लाभ उठाया। इतिहास कह रहा है कि पानीपत के मैदानमें मराठे न हारते तो भारतमें युरोपियन शक्तियों का प्रवेश न होता। पानीपत की रक्त नदी की तरंगे कह रही हैं कि यदि देशद्रोही नजीबुद्दौला ने विदेशी अफगानोंको निमन्त्रित न किया होता तो १५०सालतक भारत युरोपियन जातियों के पैरों तले न रौंदा जाता। परन्तु देशद्रोहियों को जन्म देने वाले देशों को पराधीनता रूपी भयंकर दण्ड मिलता ही है !!!

बिजली की चमक

पानीपत की लड़ाईके बाद महाराष्ट्रमें चारों ओर निराशा छागई। नाना साहेब की मृत्यु के बाद कोई भी अनुभवी योग्य पथदर्शक न था। कुछेक तरुण योग्य व्यक्तिथे; परन्तु महत्वाकांक्षी सरदार उन्हे कार्यक्षेत्र में आने नहीं देते थे। नाना साहेब की मृत्युके बाद माधवरावको पेशवाई के पदपर नियुक्त किया गया। इस समय इसकी आयु १६ वर्ष की थी। राघोबा दादा को पेशवा का संरक्षक नियत किया गया, माधवराव में अपने पिता के सब गुण थे। थोड़े समय में ही इसने राजदरबार के सब काम संभाल लिये, तात्कालिक मराठा इतिहास का अनुशीलन करके पेशवा इस परिणाम पर पहुंचा कि जब तक देश में तथा मराठा मंडल में व्यवस्था का ठीक प्रबन्ध नहीं होगा तब तक शक्ति स्थिर नहीं हो सकती। पुराने महत्वाकांक्षी, नए महत्वाकाक्षियों की उन्नति को नहीं सह सकते। बहरामखां ने अकबर के रास्ते में अनेक अड़चनें खड़ी की थीं। राघोबा दादा ने भी माधवराव के रास्ते में रुकावटें डालीं। माधवराव ने सखाराम बापू तथा नाना फड़नवीस आदि योग्य सलाहकारों की सहायता से राघोबा को नियन्त्रण में रखा।

माधवराव ने गायकवाड़, सेंधिया आदि सरदारों को दायित्व पूर्ण काम देकर, मराठा संघ (Maratta confedracy) संगठित करना शुरू किया इससे उसे सफलता भी प्राप्त हुई। तुलजा की प्रसिद्ध लड़ाई में निजाम का पराभव किया और इस कंटक को दूर किया। इतना ही नहीं, इन्हीं दिनों दक्षिण में हैदरअली का दमन करके, उस पर अपनी धाक बैठायी। पेशवा की इस कर्तृत्वशक्ति को देखकर, सब के दिलों में फिर से आशायें उभरने लगीं। उत्साहित मराठे सरदारों ने फिर से एक बार, १७६५-१७६६ ई० में उत्तर-भारत पर धावा बोल दिया। नजीबखां आदि का मान मर्दन कर फिर अपना प्रभाव स्थापित किया।

पेशवा माधवराव के समय जो नई प्रसिद्ध रियासतें बनीं उनके नाम मशहूर हैं। सिंधिया और मल्हारराव होलकर के वंशजों ने ग्वालियर तथा इन्दौर में मराठों का नाम अमर कर दिया। इन्दौर की महारानी अहल्याबाई आज भी राजनीतिज्ञों को प्रकाश देती है। चारों ओर से आशाओं की सुनहरी

एक ही चट्टान

किरणें छिटक रही थीं। उत्तर-भारत में मराठों की बिजली सी चंचल तलवारें अपनी चमक से राजपूत जाट तथा मुसलमानों को चकाचौंध कर रही थीं। ठीक इस समय माधवराव अल्पकाल में १७७१ ई० में २६ वर्ष की उमर में इस लोक से विदा हो गये। रमाबाई भी साथ ही सती हो गई। माधव कुछ समय के लिये चमक कर मिट गया चारों ओर अन्धकार छा गया।

माधवराव की इस अकाल मृत्यु के कारण महाराष्ट्र की उठती हुई आशाएं टूट गयीं। बनी बनाई वाटिका उजड़ने लगी। माधवराव की योग्यता अभी अपना रंग जमा रही थी कि बीच में सब कुछ अधूरा रह गया। माधवराव ने उस अल्पकाल में जो कुछ किया वही बहुत है। अपने पिता के उद्देश्य को पूरा करने में किसी प्रकार की कमी नहीं की। उसके निष्पक्षपात स्वभाव तथा नियम पालन कराने में कठोर स्वभाव को जनता नहीं फूली। इसी स्वभाव का परिणाम था कि राघोबा दादा जैसे महत्वाकांक्षियों को उसके सामने दबना पड़ा।

: १६ :

हत्यारा राघोबा

Raghoba afterwords murdered Narayan Rao......and was supported by the Brit'sh Government, a very evil chapter in Anglo—Indian History.

राघोबा ने नारायणराव का खून किया या कराया, ब्रिटिश सरकार ने उसकी पीठ ठोंकी—एंगलो इंडियन इतिहास का यह एक अत्यन्त शरारतपूर्ण अध्याय है। कलकत्ता रिव्यू Vol II न० ४ पृ० ४३०

माधवराव ने अन्तिम समय में नाना फड़नवीस राघोबादादा तथा अन्य सरदारों को बुलाकर कहा कि मेरे पीछे नारायणराव को पेशवा बनाकर मराठा-मंडल का शासन किया जाय। वह अपने बड़े भाई की तरह होनहार न था। राघोबा दादा चाचा के नाते से दरबार में अपनी अपनी मुख्यता रखना चाहता था। नारायणराव की धर्मपत्नी गोपिका बाई तथा राघोबा की स्त्री आनन्दीबाई में भी अनबन थी।

राघोबा नाना साहेब के शासन काल के समय से मराठा-मंडल में ऊंचे से ऊंचा स्थान प्राप्त करना चाहता था। पेशवाओं ने समय २ पर उसे अच्छे से अच्छे मौके दिये; परन्तु अपने उतावले स्वभाव के कारण वह कभी भी सफल नहीं हो सका। वह वीर था—मैदानों में तलवार चलाने में किसी से कम न था परन्तु व्यवस्था और प्रबन्ध करने की उसमें योग्यता न थी। इसी लिये वह प्रजा-मंडल में तथा नीचे के सरदारों में लोक प्रियता प्राप्त न कर सका। नारायणराव पेशवा बना। इस समय अंग्रेज लोग मराठा-मंडल में फूट के बीज बोने की कोशिश में थे। असफल महत्वाकाक्षी राघोबा ने जब देखा कि इतनी देर तक कोशिश करने पर भी उसे मराठा-मंडल में कोई अच्छा स्थिर पद नहीं मिला तब निराश होकर, उसने नारायणराव पेशवा का खून करने का निश्चय किया।

नारायणरावके कोई सन्तान नहीं थी। राघोबा की धर्मपत्नी आनन्दीबाई क्रूर स्त्री थी। उसने अपने पति की महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिये, पेशवा के पद को अपने वश में प्रचलित करने के लिये गुप्तरूप से महलों में गारदियों की सहायता से १७७३ ई० में नारायणराव का खून करवाया। किसने खून किया इस विषय में मतभेद है, परन्तु यह सर्व-सम्मत बात है कि राघोबा ने अंग्रेजों के रेजीडेण्ट मोस्टन की जानकारी में यह खून कराया था। अभी तक मराठा मण्डल में ऐसी घटना कभी नहीं हुई थी कि किसी ने ऊंचा पद पाने के लिए हत्या का पाप किया हो। महत्वाकांक्षी राघोबा ने इस निर्दोष रक्त द्वारा अपने आपको तथा मराठा-मंडल को कलंकित किया। नारायणराव का खून क्या हुआ मराठा-मंडल की मृत्यु हो गई। किसी उत्तराधिकारी के न रहने से राघोबा पेशवा बना। राघोबा की नीच वासनाओं से, नाना फड़नवीस, सखाराम बापू आदि परिचित थे। उन्हें मालूम था कि यदि पेशवाई राघोबा के हाथ में न रही तो वह विदेशियों के हाथ में बेच देगा। इन वीर राष्ट्र भक्तों ने स्वर्गस्थ नारायणराव पेशवा की गर्भवती धर्मपत्नी गंगाबाई के नाम से पेशवाई का राज्य करने का प्रस्ताव किया। निराश होकर राघोबा पेशवाई प्राप्त करने के लिये सूरत में अंग्रेजों की शरण में गया। इधर नारायणराव के सवाई माधवराव नामका लड़का पैदा हुआ। [illegible] उसे पेशवा बनाया।

[illegible]

नाना फड़नवीस ने इसके नाम से शासन करना शुरू किया।

राघोबा ने अंग्रेजों की शरण लेकर उन्हें मराठा शाही में निमन्त्रित किया।

इस प्रकार मराठा शाही के मध्याह्न का सूर्य्य अपनी पूरी ज्योति से चमक कर अदूरदर्शी राघोबा राहु का ग्रास बना। नाना फड़नवीस ने अपने जीते जी महाराष्ट्र देश को इस राहु के प्रकोप से बचाया।

———

तृतीय परिच्छेद

अंगरेजों का मायाजाल

From factories to forts, from forts to fortification, from fortification to garrisons, from garrisons to armies and from armies to conquests. The graduations were natural, and the results inevitable, where we could not find a danger, we were determind to find a quarrel.

Philip Francis.

१७ वीं सदी तक युरोपियन जातियों को भारतवर्ष के सम्बन्ध में नाम-मात्र का ज्ञान था। सबसे पहले पुर्तगाल के राजा इमैन्युल ने सशस्त्र जहाजी बेड़े के साथ वास्कोडिगामा को, नए देशों की खोज के लिये भेजा। वास्को-डिगामा अफ्रीका के दक्षिण किनारे होता हुआ मालाबार पहुंचा।

हिन्दोस्तान के इन प्रदेशों की समृद्धि तथा ऐश्वर्य को देख कर, पुर्तगीज़ों की नज़र इधर गड़ गई। धीरे २ मालाबार के स्थानीय राजाओं से मैत्री का सम्बन्ध स्थापित किया। आखिर दिल्ली दरबार से इन्होंने अपनी शक्ति तथा सत्ता को स्वीकार कराया। इन पुर्तगीज़ लोगों ने व्यापारीय तथा धार्मिक प्रश्नों तक ही अपने कार्य क्षेत्र को सीमित किया। परन्तु अन्य युरोपियन जातियां, पुर्तगीज़ लोगों की शक्ति को कम करने का यत्न कर रही थीं। पुर्तगीज़ लोग देर तक इन युरोपियन जातियों की गति को नहीं रोक सके। १६११ ई० में इन लोगों ने पुर्तगीज़ सेनाओं को पराजित कर सूरत पर अधिकार कर लिया। [illegible] लोग दिन प्रतिदिन शक्तिशाली होने लगे। यदि इस जाति का ध्यान आस-पास के देशों की ओर खिंचता तो असम्भव नहीं था कि यह लोग भारत [illegible]। इन जातियों की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर, इंगलैंड [illegible] सौदागरों ने [illegible] देशों में अपना पैर फैलाने [illegible] करनी शुरू कीं। इन लोगों की बढ़ती शक्ति को

कम करके, फ्रांसीसी मैदान में उतरे। फ्रांसीसियों के मैदान में आते ही फ्रांस का सदा का प्रतिद्वन्द्वी इंगलैंड भी मैदान में आ उतरा। राणी एलिज़बेथ ने स्पेनिश आर्मेडा को तहस-नहस कर, इंगलैंड के नवयुवकों को विश्व विजयी बनने के लिये उत्साहित किया। १६०० ई० सन् में इंगलैंड में ईस्ट इण्डिया कम्पनी बनाई गयी। इसी कम्पनी ने भारत में ब्रिटिश शक्ति का सूत्रपात किया। इसी कम्पनी के नौकरों ने स्वदेश भक्ति के भाव से प्रेरित होकर, धीरे २ कोठियां, क़िले, क़िलेबन्दी तथा सेनाएं तय्यार कर, भारत में अपना अधिकार जमाया। जिस समय योरोपियन जातियों ने भारत में प्रवेश किया था उस समय भारत में दिल्ली के मुग़ल बादशाह, प्रभावशाली एकछत्र शासक थे।

योरोपियन जातियों ने अनुनय विनय द्वारा यहां पैर जमाने की कोशिश की। परन्तु कई कारणों से उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त नहीं हुई। पुर्तगीज़ लोग धार्मिक कट्टरपन के कारण सबकी आंखों में अखरने लगे। हालैंड वालों ने अपने कार्यक्षेत्र को सीमित किया और केवल मात्र व्यापार करना पसन्द किया। हालैंड वाले साम्राज्यवाद के विरोधी थे अतः उन्होंने व्यापारी कोठियों को क़िलों का रूप नहीं दिया। फ्रांस वाले अपनी उदारता तथा केन्द्रिय सरकार के स्वातन्त्र्य-प्रिय होने के कारण भारत में राजनैतिक प्रभुता न पा सके। केवलमात्र अंगरेज़ जाति ही अपनी कूट नीतिज्ञता तथा स्थिर प्रवृत्तिता के कारण यहां की शासक बन सकी। अंगरेज जाति ने यहां कैसे पैर जमाए इसका संक्षिप्त वर्णन ऊपर के उद्धरण में एक अंगरेज़ विद्वान् ने ही कर दिया है। शुरू में व्यापारी कोठियां खोलीं, धीरे २ व्यापारी कोठियों को किलों का रूप दिया। किलों को संगठित तथा दृढ़ किया। इन संगठित सुरक्षित किलों को सेनास्थान बनाया। अपने नौकरों तथा क्लर्कों को कम्पनी की सेनाओं का सेनापति बनाकर, छोटी मोटी लड़ाइयां रचाकर, कभी किसी देशी राजा का पक्ष लेते कभी किसी का। जहाँ कोई ऐसी बात न होती थी, वहां स्वयं विविध पक्ष पैदाकर उनमें लड़ाइयां करा देते।

इन छोटे २ राजाओं को आपस में लड़ाकर, जहां एक ओर उनकी शक्ति को कम किया, वहां भारत की केन्द्रीय शासन-शक्ति को निर्बल तथा प्रभाव हीन करने के लिये प्रांतीय तथा स्थानीय शासकों को दिल्ली की बादशाहत से स्वतन्त्र

होने के लिये उत्साहित किया। अंगरेजों की इस कुटिल चाल का खुला चिट्ठा बंगाल के इतिहास में स्पष्ट दीखता है। जब तक अलीवर्दीखां बंगाल पर शासन करता रहा। अंग्रेजों ने उससे छेड़छाड़ नहीं की।

उस समय इन्होंने दिल्ली के निर्बल बादशाहों की कृपा प्राप्त कर बंगाल में रहने का प्रबन्ध किया। वहां अपनी स्थिति पक्की करके, दिल्ली के बादशाह को निर्बल हुआ देखकर इन्होंने धीरे २ अपना असली रूप प्रकट करना शुरू किया। इनकी इस कूट चाल को समझने वाले बिरले ही राजनीतिज्ञ थे। अलीवर्दीखान ने मृत्यु-शय्या पर लेटे हुए, सिराजुद्दौला को निम्नलिखित वचन कहे थे। वह मर्मस्पर्शी और सच्ची स्थिति को प्रकट करने वाले हैं।

"इस देश में युरोपियन लोगों की बढ़ी हुई शक्ति को ध्यान में रखो। तेलगु देशों में इन जातियों ने जो लड़ाइयां लड़ी हैं उनको दृष्टि में रखकर सदा सजग रहो।"

"इन जातियों ने देशी नरेशों के निजू झगड़ों को बहाना कर, धीरे २ उनके राज्य छीन लिये हैं। इन सब जातियों को एक साथ एक समय में कमज़ोर करने का इरादा मत करना। अंगरेजों की ताकत सब से प्रबल है। इन्होंने अभी हाल में अंगदेश को जीतकर, अपने आधीन किया है। पहले इन अगरेजों का दमन करना।"

"पुत्र! इनको अपने राज्य में किले मत बनाने देना और नांही इनके सिपाहियों को अपने देश में बसने देना। यदि तुमने इन्हें अपने प्रदेश में बसने और क़िले बनाने की अनुमति दी तो याद रखना यह देश तुम से छिन जायगा और यह इसके मालिक बन जायेंगे"।

अलीवर्दीखां ने अंगरेजों की कूट नीति से अपने उत्तराधिकारी को सचेत किया। सिराज, महत्वाकांक्षी स्वार्थी सरदारों से आवृत्त था। अतः अली-वर्दीखा की आज्ञाओं को कार्य-रूप में परिणत नहीं कर सका। परिणाम यह हुआ कि १७५७ ई० की पलासी की लड़ाई में बंगाल अंगरेजों के हाथ में चला गया। युरोपियन जातियों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने की ताकत उस समय भारत की तात्कालिक केन्द्रीय शासन-शक्ति में नहीं थी। भारत की

शासक शक्ति अफगानिस्तान के आक्रमणों, तथा अन्तः कलह के कारण क्षीण और निस्तेज हो चुकी थी।

अंगरेज़ जाति ने प्रारम्भमें मराठा जातिसे छेड़-छाड़ नहीं की। क्योंकि अंगरेज़ मराठों की शक्ति को समझते थे। ई०सन्१७५७तक मराठा सेनापतियों ने कई बार अंगरेज़ोंके मुकाविलेमें, दिल्ली दरबार तक हाथ बढ़ाया। परन्तु यह अवस्था देरतक नहीं चल सकी। आखिर नारायणराव पेशवा के समय राघोबा के निमंत्रण पर अंगरेजों को मराठा मंडल में प्रवेश करने का मौक़ा मिला। इस समय भारत में अंगरेज़ों के राजनैतिक मायाजाल को छिन्न भिन्न करने वाली यदि कोई शक्ति थी तो मराठा जाति थी। अंगरेज़ और मराठे एक दूसरे को समझते थे। बंगाली, मद्रासी, हिन्दू, राजपूत, मुसलमान अन्य सब जातियां इनके मायाजाल में किसी न किसी रूप में उलझ चुकी थीं।

: २ :

नाना फड़नवीस और महादाजी सेंधिया

Give us Nana Faranvis and such like; what poor pigmies we are as Indian administrators compared with natives of that stamp.
Mr. J. Sullivan.

"यदि भारतवर्ष का सुशासन करना है तो हमें नाना फड़नवीस जैसे योग्य व्यक्तियों का संग्रह करना चाहिये। हम लोग नाना फड़नवीस जैसे योग्य शासकों के मुकाबिले में भारतीय शासक की दृष्टि से कुछ भी नहीं (नगण्य) हैं।"

नाना फड़नवीस महाराष्ट्रीय इतिहास का चमकता हुआ सितारा है। यदि नाना फड़नवीस अपनी नीति में सफल हो जाते; यदि देशद्रोही राघोवा अपनी स्वार्थ पूर्ण नीति से नाना के रास्ते में अड़चन पैदा न करता तो महाराष्ट्र देश अंगरेजों की राजनैतिक पराधीनता की वेड़ियों में न जकड़ा जाता। नाना-फड़नवीस ने अपनी आंखों पानीपत का युद्ध देखा था। पानीपत के मैदान में उसने देख लिया था कि किन कमियों के कारण मराठे लोग पराजित हुए थे। महादजी सेंधिया भी उस युद्ध के अनुभवी सैनिकों में से एक था। महादजी

शूरवीर और पराक्रमी था। इस समय राजनीति के सब दांव-पेच में नाना फड़नवीस के पाये का दूसरा आदमी महाराष्ट्र में कोई नहीं था। दूसरी ओर रण कुशलतामें महादाजी सेंधिया की आन का दूसरा कोई नहीं था। यदि दोनों मिलकरः—महाराष्ट्र की रक्षा करना चाहते तो मराठा जाति का यह पतन-काल उदयकाल में परिणत हो जाता। अंगरेज़ों को इन दों वीर पुरुषों का ही मुकाबला करना था। महादाजी सेंधया योद्धा और महत्वाकांक्षी सिपाही था; अंगरेज़ों को उससे भय नहीं था। वह लोग ऐसे महत्वाकांक्षियों को सरलता के साथ आधीन करने में चतुर थे। वह समझते थे कि उनका असली मुकाबला नाना फड़नवीस से है; और जब तक नाना फड़नवीस महाराष्ट्र के राज्य-कार्य को संचालित करेगा; तब तक मराठा मंडल में अंगरेजों की दाल नहीं गलेगी।

महादाजी सेंधिया महाराष्ट्र का भुजबल था, शस्त्रबल था। नाना फड़नवीस महाराष्ट्र का मस्तिष्क था। जब तक मस्तिष्क और बाहु परस्पर एक दूसरे के अनुकूल हों, तब तक दुश्मन वार नहीं कर सकता। वार करने वाला यही कोशिश करेगा कि किसी तरह मस्तिष्क और बाहु आपस में एक दूसरे के सहायक न बनें।

अंगरेज़ लोग युद्धों में सफलता प्राप्त करने के इस रहस्य को समझते थे। इसलिये वह ऐसा मौका देखते थे जब इन दोनों वीरों में लड़ाई या अनबन पैदा हो। नाना फड़नवीस की राजनीति कुशलता तथा योग्यता को देखने के लिये आवश्यक है कि तुलनात्मक दृष्टि से नाना फड़नवीस तथा महादाजी सेंधिया का जीवन चरित पाठकों के सामने रखा जाय। इन दोनों व्यक्तियों ने महाराष्ट्र के यश को स्थिर रखने, उसकी विजय-पताकाओं को दूर २ तक ले जाने के लिये भरसक कोशिश की थी।

: २ :

महादाजी सेंधिया

सेंधिया के पूर्वज उच्च तथा प्रतिष्ठित घराने में से थे। वे लोग मुग़ल

सम्राटों की सेना में उच्च पदों पर काम कर चुके थे। भाग्य के फेर से पेशवाओं के यहां वह लोग नीच वृत्ति की सेवा में नियुक्त किए गए। राणोजी का पिता पटेल का काम करता था। राणोजी बालाजी विश्वनाथ के शरीर-रक्षकों में से एक था। राणोजी का यह काम था कि जब कभी पेशवा राजा से भेंट करने जाए तब वह उसके जूतों की देख रेख करे। एक बार राजा से बातचीत करते हुए पेशवा को देर हो गयी। इधर राणोजी की आंख लग गई। राणोजी ने निद्रित होते हुए भी, पेशवा के जूते को अपनी छाती के साथ लगाकर संभाल रखा।

पेशवा राणोजी के इस भक्तिपूर्ण ईमानदारी के सरल व्यवहार से बहुत ही सन्तुष्ट हुआ, और उसे मालवा के उत्तरार्ध का शासक बना दिया। १८ वीं सदी के प्रारम्भ में दिल्ली के बादशाह ने हैदराबाद राजदरबार के संस्थापक आसफ़जाह को मालवा का शासक बनाकर भेजा था। १७२१ ई० में आसफ़-जाह दक्षिण में विजय यात्रा करने गया। तब मालवा में राजा गिरधारीलाल को शासक बनाकर भेजा गया।

इसी समय पेशवा ने मालवा को जीतने की अभिलाषा से राणोजी को मालवा के उत्तरार्ध का शासक बनाया और मालवा के दक्षिण भाग को जीतने के लिये मल्हारराव जी होलकर को नियुक्त किया। उस समय के प्रच-लित रीति रिवाजों के अनुसार राणोजी के अन्तःपुर में कई वेश्याएँ थीं। उन वेश्याओं में से माधवराव या माधोजी सिन्धिया का जन्म हुआ। राणोजी का असली पुत्र देर तक जीवित नहीं रहा।

माधोजी सिन्धिया बिना किसी विरोध के राणोजी का उत्तराधिकारी बना। माधोजी वेश्या-पुत्र था, इस कारण कट्टर हिन्दुओं में उसकी प्रतिष्ठा नहीं थी। नाना फड़नवीस ने उदार राजनीतिज्ञ की भाँति माधोजी के प्रति मित्रता का भाव ही रखा। परन्तु जब नाना फड़नवीस ने देखा कि माधोजी सिन्धिया अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिये विदेशियों का सहारा ले रहा है, तब उसने इसका प्रतिवाद किया। माधोजी सिन्धिया से महाराष्ट्र को बहुत आशाएँ थीं। माधोजी पानीपत का अनुभवी योद्धा था। परन्तु महत्वाकांक्षा की आग ने उसे महाराष्ट्र मंडल के लिये पूर्ण उपयोगी सिद्ध नहीं

किया। अंगरेज़ लोगों की मालवा के उपजाऊ मैदान पर दृष्टि थी, परन्तु इस समय होलकर राज्य में देश भक्त अहिल्यांवाई शासन करती थी। अहिल्याबाई ने विदेशियों को अपने राज्य में हस्तक्षेप नहीं करने दिया, इसीलिये अंगरेजों ने मराठा-मंडल में द्वेषाग्नि फैलाने के लिये सिन्धिया को अपने जाल में फंसाया।

: ४ :

नाना फड़नवीस की जीवनी

नाना फड़नवीस का असली नाम बालाजी जनार्दन भानु था, उसका पालन पोषण उच्च घराने के कुमारों की तरह हुआ था। बालाजी विश्वनाथ के साथ जो भानु भाई छत्रपति के पास आए थे, उन्हीं के वंशजों में से नाना फड़नवीस भी था। बालाजी विश्वनाथने भानु बन्धुओं को मराठा मंडल में फड़नवीसी दफ्तर के लेख-पत्रिका सम्बन्धी कार्यों पर नियुक्त किया। अपनी योग्यता द्वारा भानु बन्धु पेशवाओं के साथ २ उन्नति के पथ पर अग्रसर होते गए। पेशवाओं और भानु बन्धुओं के पूर्वजों में जिस प्रकार प्रम भाव था; उसी प्रकार उनके वंशजों में पारस्परिक स्नेह का भाव बना रहा। जिस समय स्वार्थी लोगों ने पेशवाई पर आक्रमण करना चाहा; उस समय इन भानु भाइयों ने ही उसकी रक्षा की। नारायणराव पेशवा की मृत्यु के बाद राघोबा दादा पेशवाई को अपने हाथ में लेना चाहता था, परन्तु नाना फड़नवीस ने परम्परागत धर्म का पालन करते हुए पेशवाई तथा मराठा मंडल को सुरक्षित करने का यत्न किया। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये उसने अपने आपको शान्त जीवन से निकाल कर, जटिल जीवन में डाला।

वैयक्तिक दृष्टि से नाना फड़नवीस का पेशवाई के कार्यों में भाग लेने में कोई स्वार्थ नहीं था। परन्तु रामदास तथा ब्रह्मेंद्र स्वामी की निष्काम कर्म करने की शिक्षाओं से प्रेरित होकर, नाना फड़नवीस ने निरीह भाव से राष्ट्रसेवा के लिए अपने आपको तय्यार किया और शिवाजी द्वारा स्थापित साम्राज्य की रक्षा करने का दृढ़ संकल्प किया।

पानीपत के भयंकर युद्ध में नाना फड़नवीस ने राजनीति की शिक्षा पाई थी। नाना फड़नवीस कुमारावस्था में ही (१६ साल की आयु में) मरा० सेनाओं के प्रधान सेनापति सदाशिवराव भाऊ का मंत्री बनकर, पानीपत के मैदान में पहुंचा था। इस यात्रा का उद्देश्य उत्तरी भारत के तीर्थों की यात्रा करना भी था। इस दूसरे उद्देश्य से प्रेरित होकर, नाना फड़नवीस की माता और धर्मपत्नी भी उसके साथ २ पानीपत के मैदान में पहुंची थीं। पानीपत के मैदान में पराजित हो जाने के कारण जो भागदौड़ मची उनमें नाना को माता और पत्नी से हाथ धोना पड़ा। कुमारावस्था ही में नाना अनाथ और विधुर हो गया। पानीपत की भागदौड़ में नाना स्वयं वेष बदलकर पैदल भागा, भटक कर दक्षिण में पहुंचा था। इन आपत्तियों से उद्विग्न होकर, प्रिय निकट सम्बन्धियों के विछोह निराश होकर उसने एक बार सन्यासी भिक्षुक बनने का निश्चय किया। परन्तु राष्ट्रभक्तों की प्रेरणा से उसने यह विचार छोड़ दिया और राजनैतिक संन्यासी का जीवन बिताते हुए; अपने जीवन को राष्ट्रकार्य में लगाने का संकल्प किया।

माधवराव पेशवा का मन्त्री बनकर नाना ने अपने अनुभवों से राष्ट्र की जो सेवा की उसे कोई नहीं भुला सकता। माधवराव की मृत्यु के बाद नारायणराव पेशवा के अल्पकालिक दुःखान्त शासन में भी नाना फड़नवीस इसी हैसियत में काम करता रहा। इस प्रकार धीरे २ सब तरह का अनुभव प्राप्त कर माधवराव द्वितीय के समय नाना फड़नवीस अष्ट प्रधान मंडल में प्रधानामात्य के पद पर पहुँचा। इस पद पर पहुंच कर उसने पेशवाई तथा मराठा मंडल को जिस योग्यता से संभाला उसकी सराहना, खिजे हुए अंग्रेज़-समालोचकों को भी करनी पड़ी। नाना फड़नवीस और राघोबा की इसलिये नहीं बनी, क्योंकि राघोबा ने बम्बई के अंग्रेज़ व्यापारियों की सहायता से मराठा मंडल में अव्यवस्था पैदा करने का यत्न किया।

नाना फड़नवीस की अपने समकालीन अन्य भारतीय राजनीतिज्ञों से, विशेषता यह थी कि वह शत्रु को अच्छी तरह समझता था और उसकी चालों को गहरी तथा सूक्ष्म दृष्टि से देखता था। महादाजी सेंधिया तथा राघोबा आदि तो यही न जानते थे कि उनका असली शत्रु कौन है? वह पुराने स्वभाव के

अनुसार मुसलमानों तथा प्रतिद्वन्द्वी पुराने मराठे सरदारों को ही अपना दुश्मन समझते थे।

नाना फड़नवीस ने यह बात ताड़ ली थी कि इस समय भारतीय राजघरानों का असली दुश्मन कौन है ? उसने देख लिया था कि दिल्ली के बादशाह तथा हैदराबाद के निज़ाम और टीपू सुल्तान में इतना पानी नहीं कि वह मराठों की शक्ति का अपमान कर स्वेच्छाचार कर सकें। यह सब लोग मराठों की तलवार का लोहा मान चुके थे। इस लिए नाना फड़नवीस ने अपनी शक्ति को इन जीते हुये शत्रुओं के नाश में लगाना उचित नहीं समझा। इतना ही नहीं अपितु उसने इन स्वदेशी भारतीय राजाओं और नबाबों को एक सूत्र में ग्रथित करने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न को पूरा करने के लिये इसने गुप्तचर विभाग का ऐसा प्रबन्ध किया था जिससे उसे अंगरेजों की हरेक चाल का पता लगता रहे। इस गुप्तचर विभाग की उत्तमता के कारण ही अंगरेज़ों की भेद-नीति महाराष्ट्र में सफल नहीं हो सकी। नाना फड़नवीस के इस गुप्तचर विभाग के प्रबन्ध के सम्बन्ध में निम्नलिखित उद्धरण लिखना अप्रासंगिक नहीं है।

"नाना फड़नवीस के गुप्तचर-विभाग का प्रबन्ध इतना उत्तम तथा पूर्ण था कि देश के किसी भी भाग में यदि कोई महत्वपूर्ण घटना होती थी तो उस घटना के सम्बन्ध में भिन्न २ साधनों द्वारा दर्जनों की संख्या के वृत्तान्त-लेख ठीक समय में उसके पास पहुंचते थे। इन भिन्न २ स्थानों से आए हुए वृत्तान्त-लेखों को पढ़कर वह अपने कमरे में बैठा हुआ ही घटना की असलियत को जान लेता था।" (मेजरबसु)

माधोजी सिंधिया को नाना फड़नवीस कहा करते थे कि यदि हमने मराठा साम्राज्य में अंग्रेज़ों को पैर रखने का भी स्थान दिया तो यह देश हमारे हाथ में नहीं रहेगा। जहां नाना फड़नवीस असली शत्रु को पहिचानता था वहां प्रतिद्वन्द्वी शत्रु अंगरेज़ भी इस बात को समझते थे कि भारत की राजशक्ति मुग़ल बादशाहों के हाथों से छिनकर मराठों के हाथों में चली गई है। मराठों के सेनापति तथा राजदूत दिल्ली में शाहआलम के सलाहकार थे। वह समझते थे कि जब तक महाराष्ट्र में नाना फड़नवीस की मुख्यता रहेगी तब तक

कोई व्यक्ति महाराष्ट्र तथा भारत की राजधानी दिल्ली में प्रभुता नहीं पा सकता। पूना के रेज़िडेण्ट चार्लस मलेट ने लिखा था :—

As long as Nana remained supreme at the Poona court they (British) should never dream of obtaining a firm footing in the Maratha Empire.

"जब तक पूना दरबार में नाना फड़नवीस की मुख्यता है तब तक ब्रिटिश जाति को मराठा साम्राज्य में स्थिर स्थान प्राप्त करने की आशा नही करनी चाहिए।"

इस प्रकार दोनों शत्रु एक दूसरे का महत्त्व समझते हुये एक दूसरे का दमन करने के लिये भरसक यत्न करते थे। एक ओर क्लाइव की कूटनीति के सम्प्रदायमें शिक्षा पाया हुआ वारन हैस्टिंग है, दूसरी ओर नाना फड़नवीस। वारन हैस्टिंग ने जी जान से राघोबादादा तथा सिंधिया आदि को प्रलोभन देकर नाना फड़नवीस के विरुद्ध करने की कोशिश की। उसने पूना दरबार में फूट पैदा करने में कुछ कसर नहीं छोड़ी। दूसरी ओर नाना ने मैसूर निज़ाम भोंसले आदि राजवंशों को अंग्रेज़ों के विरोध में खड़ा करने में, अपना वह अप्रतिम चातुर्य दिखाया जिसे देखकर अंग्रेज़ों को भी चकित होना पड़ा। नाना फड़नवीस ने दुनियां को छोड़कर भी, ब्राह्मणवृत्ति को धारण कर, आने वाली जनता के सामने यह उदाहरण रखा है कि किस प्रकार राष्ट्र सेवा के लिए निष्काम भाव से काम करना चाहिए। नाना फड़नवीस ने अपने जीते जी अपने प्रण को निबाहा और अंग्रेज़ों का मराठा मंडल में पैर नहीं जमने दिया। ऐसे निष्काम कर्मयोगी ही राष्ट्रों के सच्चे जीवनदाता होते हैं।

: २ :

पूना दरबार और अंगरेज़

जब राघोबा को पता लगा कि पूना दरबार के दरबारी उसे पेशवा नहीं बनाना चाहते तब वह अपनी रक्षा के लिये गुजरात चला गया। राघोबा ने नारायणराव पेशवा की विधवा के पुत्र पैदा होने की घटना के सम्बन्ध

में भ्रम फैलाने शुरू किये और बम्बई की अंग्रेज़ी सेना का सहारा लेकर, यह प्रमाणित करना चाहा कि नारायणराव की विधवा के कोई पुत्र नहीं हुआ।

बम्बई की सरकार ने मराठा दरबार में झगड़े पैदा करने के लिये राघोबा के पक्ष को पुष्ट करने में किसी तरह की कमी नहीं की। पूना दरबार के अन्तःकलहों तथा अंग्रेज़ों की कुटिल चालों का वर्णन करने से पहले यह बता देना आवश्यक है कि इस समय भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी-सरकार की क्या स्थिति थी।

१७७३ ई० के रेगुलेटिंग एक्ट के बनने से पूर्व, बंगाल, मद्रास तथा बम्बई की प्रैसीडेन्सी सरकार बिल्कुल स्वतन्त्र थीं। इंग्लैण्ड में रहने वाले कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के साथ इनका सीधा सम्बन्ध था। परन्तु १७७३ ई० के रेगुलेटिंग एक्ट के अनुसार बंगाल का गवर्नर, गवर्नर-जनरल बना दिया गया। वह पार्लियामैंट द्वारा नियुक्त कौंसिल की सहायता से मद्रास तथा बम्बई की सरकारों का निरीक्षण करता था।

वारन हैस्टिङ्ग और उसकी कौंसिल की आपस में नहीं बनती थी। कौंसिल के फ्रैन्सिस आदि मेम्बर उसकी कुटिल नीति को पसन्द नहीं करते थे। इसलिये उसके प्रत्येक कार्य की भारतीय हित की दृष्टि से आलोचना करते थे। जब तक इस कौंसिल का ज़ोर रहा, वारन हैस्टिङ्ग को अपनी स्वेच्छाचारिता चलाने का मौका नहीं मिला। यह कौंसिल, रेगुलेटिङ्ग एक्ट के अनुसार, अपने अधिकारो का प्रयोग कर बम्बई आदि की प्रैज़िडेन्सी-सरकारों को समय २ पर टोकती रहती थी।

राघोबा ने बम्बई की सरकार से सहायता मांगी। बम्बई सरकार को चाहिये था कि वह कलकत्ता कौंसिल तथा गवर्नर जनरल की स्वीकृति से ही राघोबा के साथ किसी प्रकार की संधि करती परन्तु बम्बई सरकार ने अपने चिरकाल के स्वप्नों को पूरा करने के लिये राघोबा से सूरत की संधि कर ली। अंग्रेज़ लोग बसई और सलसेटी नाम के स्थानों पर अधिकार करना चाहते थे।

राघोबा ने जब सहायता मांगी तब बम्बई सरकार ने १७७५ ई० मार्च

मास में सूरत शहर में राघोबा के साथ संधि की। इस संधि की शर्तों में यह तय हुआ कि राघोबा अंग्रेज़ों को बसई और सलसट के शहर तथा सूबा सूरत के मराठी हिस्से दें। अंग्रेज़ अपनी सेना की सहायता से राघोबा को पेशवाई दिलाएंगे। इस सूरत की संधि के कारण मराठे और अंगरेज़ों में लड़ाई हुई। राघोबा कर्नल कीटिंग की सेना के साथ पूना पर चढ़ाई करने के लिये १७ मार्च को कैम्बे स्थान पर पहुंचा। कैम्बे से ११ मील उत्तर-पूर्व दुमज स्थान पर राघोबा ने अपनी अवशिष्ट टुकड़ी को तैनात किया था। १६ अप्रैल को कर्नल कीटिंग भी यहीं आ पहुंचा।

इस बड़ी सेना के साथ राघोबा पूना की ओर बढ़ा। दूसरी ओर से पूना दरबार ने हरीपन्तफड़के के नेतृत्व में शत्रु का मुकाबला करने के लिये अपनी सेना भेजी। दोनों सेनाओं की पहली मुठभेड़ में कई अंगरेज़ सिपाही मारे गए और कई ज़ख्मी रहे। दक्षिण के घरू झगड़ों तथा वर्षा ऋतु के समीप होने से हरिपन्तफड़के पूना की ओर लौटने लगा। कर्नल कीटिंग ने नर्बदा नदी के समीप उसका पीछा किया। परन्तु किसी प्रकार की सफलता नहीं हुई। जिस समय राघोबा गुजरात में पहुंचा। उस समय गायकवाड़ के घराने में पिल्लोजी की मृत्यु के बाद सयाजीराव और गोविन्दराव में राजगद्दी के लिये झगड़े हो रहे थे। सयाजीराव पागल था परन्तु उसका छोटा भाई फतेहसिंह चालक चुस्त था। फतेहसिंह अपने भाई की ओर से गोविन्दराव से लड़ रहा था। कर्नल कीटिन ने इस गृह-कलह से फायदा उठाना चाहा। परन्तु जब तक हरिपन्त फड़के वहां रहा उसकी कोई भेदनीति नहीं चली, राघोबा को गुजरात से कोई सहायता नहीं मिली। इधर हरिपन्त फड़के के लौटते ही बम्बई सरकार ने प्रसिद्ध कुटिल मोस्टन को गुजरात भेजकर, गायकवाड़ के गृहकलह को खूब बढ़ाया, मौका देखकर फतेहसिंह के साथ संधि करके भड़ौंच के उपजाऊ इलाके तथा नर्बदा के प्रदेशों को अपने अधिकार में किया। सयाजीराव नाममात्र का राजा रहा, असली शक्ति फतेहसिंह के हाथ में रही। इसी संधि के कारण अंगरेज़ों को गुजरात के तीन परगने मिले। अंग्रेज़ों के साथ अलग संधि करने से गायकवाड़ का राज्य मराठा मंडल से अलग होगया और इसने मराठा मंडल की संगठित शक्ति को शिथिल करने की भूमिका बांधी।

राज्य से बाहर भेज दिया। इस पर भी वारन हैस्टिंग ने सेनाओं की गति को नहीं रोका।

शत्रु के इस व्यवहार से नाना फड़नवीस इस परिणाम पर पहुंचा कि अंगरेज़ लोग पुरन्दर की संधि को तोड़ने के लिए उतारू हैं और किसी न किसी प्रकार युद्ध छेड़ने का बहाना ढूँढ रहे हैं। यह देख कर नाना फड़नवीस ने भी मुकाबला करने की तय्यारियां शुरू कर दीं।

इसी समय युरोप में इंगलैंड और फ्रांस में लड़ाई छिड़ गई। वारन हैस्टिंग ने एक दम बम्बई सरकार को सूचना दी कि वह भोंसले के साथ संधि करे और पूना दरबार के प्रति द्वेष-भाव प्रकट न करे। परन्तु बम्बई सरकार ने इसकी कुछ परवाह नहीं की। राघोबा को कर्ज़ा देकर आर्थिक सहायता दी, और अपनी सेना की एक टुकड़ी नाना फड़नवीस तथा उसकी पार्टी को दमन करने के लिए रवाना की। बम्बई सरकार के एक सभ्य मि० ड्रेयर ने कहा कि हमें शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। वारन हैस्टिंग द्वारा भेजी गई सेना की प्रतीक्षा करनी चाहिए। परन्तु उसकी नहीं सुनी गई। २२ नवम्बर को करनल ईगर्टन के नेतृत्व में तथा मोस्टन आदि तीन सभ्यों की कमेटी के निरीक्षण में अंगरेज़ सेना राघोबा को पेशवा बनाने तथा पूना दरबार का मान मर्दन करने के लिये भेज दी गई। उसी समय, मि० मोस्टन जो कि अपनी कुटिल नीति के कारण प्रसिद्ध था, बीमार पड़ा और बम्बई लौटकर १७७६ ई० जनवरी में मर गया।

राघोबा इस लड़ाई में स्वयं सेना के साथ था। उसके नाम से युद्ध सम्बन्धी सूचनाएं जारी की गईं। खांडेल तक अंगरेजी सेना निरन्तर बेरोक-टोक बढ़ती गई। नाना फड़नवीस इस समय चुपचाप नहीं बैठा था। अपने गुप्तचर विभाग द्वारा उसे दुश्मन की हरेक बात पल २ में मालूम हो रही थी। वह बम्बई सरकार की चालों को सूक्ष्म दृष्टि से देख रहा था। सिंधिया और होलकर, इस समय पूना दरबार में थे। नाना ने उन दोनों को सेनापति बना कर, मराठी सेना के साथ अंगरेजों का मुकाबला करने भेजा। मराठे सरदारों ने खांडेल तक जान बूझ कर अंगरेज़ी सेना को नहीं रोका और उन्हें तलीगांव तक बेरोक-टोक बढ़ने दिया। तलीगांव बम्बई से १८ मील की दूरी पर है।

१७७६ की ७ जनवरी को अंगरेज़ी-सेना इस जगह पर पहुंची। इसी स्थान पर मराठी सेना अपने सेनापतियों के निरीक्षण में मुकाबला करने के लिये तैयार खड़ी थी। मराठों की इस सजी-सजाई सेना को देख कर अंगरेजी सेना के दिल कांप गये। उन्होंने सोचा कि दुश्मन का मुकाबला करके, पराजित होने की अपेक्षा, पहले ही लौट जाना अच्छा है। अंगरेजी सेना के पास केवल मात्र १८ दिन की रसद बाकी थी। पूना वहां से ३, ४ दिन की पहुंच में था। भयभीत हुई अंगरेज़ी सेना ११ जनवरी को बम्बई की ओर लौटने लगी। लौटती हुई सेना ने भारी २ तोपें बड़े तालाबों में डाल दीं और रसद के भंडारों को जला दिया।

मराठी सेनाओं ने लौटती हुई अंगरेज़ी सेना को चारों ओर से घेर लिया; और बम्बई सरकार की रसद तथा सामान को लूट लिया। परन्तु मनुष्यता के नाम पर, अंगरेज़ी सेना का जीवन नाश नहीं किया। चारों ओर से घिरी हुई अंगरेज़ी सेना ने शत्रु के सामने आत्मसमर्पण कर दिया; और १३ जनवरी को सेना के साथ आई हुई संधि कमेटी ने पूना दरबार के साथ संधि की बातचीत शुरू की। अंगरेज़ी सेना ने पूना दरबार द्वारा पेश की गई शर्तों को स्वीकार करने में आनाकानी की, परन्तु लाचार होकर उन्हें निम्नलिखित शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं :—

१. अंगरेज़ राघोबा को पूना दरबार के हाथ में सौंप दें।

२. माधवराव पेशवा के समय से महाराष्ट्र के जो प्रदेश अंगरेज़ों ने जीते हैं तथा उन्हें भड़ोंच और सूरत में जो कर वसूल किया है, उसे लौटा दें।

दूसरी तरफ वारन हेस्टिंग ने कर्नल लेज़ली के नेतृत्व में बंगाल से जो सेना भेज़ी थी वह धीरे २ आगे बढ़ रही थी। वारन हेस्टिंग कर्नल लेज़ली की इस सुस्ती से नाराज था और निश्चय कर चुका था कि कर्नल लेज़ली को सेनापति पद से हटा कर कर्नल गाडर्ड को उस पद पर नियुक्त किया जाय।

अभी यह विचार हो रहा था कि कर्नल लेज़ली का देहान्त हो गया। कर्नल गाडर्ड बुन्देलखंड और मध्य भारत में से होता हुआ बम्बई की ओर

आ रहा था। रास्ते में हिन्दू राजाओं ने उसका विरोध किया, परन्तु भूपाल के नवाब ने उसका साथ दिया। बरार के राजा ने अंगरेज़ों के साथ सुलह तो नहीं की, परन्तु बङ्गाल की सेना को बरार में से होकर जाने से नहीं रोका। कर्नल गाडर्ड को रास्ते में ही बम्बई की अंगरेज़ी सेना की अपमानजनक पराजय का हाल मालूम हुआ। यह सुनते ही वह सूरत की ओर अपनी सेना को लेकर वेग के साथ बढ़ने लगा। दो फरवरी को पूना दरबार ने अपना वकील भेजकर अंगरेज़ी सेना को एकदम बंगाल लौटने के लिये कहा। अंगरेज़ी सेना के सेनापतियों ने कहा कि हम गवर्नर जनरल की आज्ञा से बम्बई जा रहे हैं। मराठों के साथ हमारी किसी प्रकार की लड़ाई नहीं है। मराठा वकील इस बहकावे में आ गया। जब वारन हैस्टिंग को बम्बई की सेना के पराजय का हाल मालूम हुआ। उसने कर्नल गाडर्ड को बम्बई तथा बंगाल की संयुक्त सेनाओं का सेनापति नियत कर आज्ञा दी कि वह पूना दरबार से पुरन्दर की संधि को स्वीकार कराए तथा उससे यह भी वचन ले कि वह फ्रांस वालों के साथ किसी प्रकार का व्यापारिक व राजनैतिक सुलहनामा नहीं करेंगे। कर्नल गार्डड को यह भी अधिकार दिया कि यदि आवश्यकता हो और पूना दरबार सन्धि न करे तो युद्ध की घोषणा भी करदी जाय।

वारन हैटिंग ने मराठा मंडल में गृह-कलह पैदा करने की ओर विशेष ध्यान दिया। गायकवाड़ अंगरेज़ों के साथ था। कर्नल कीटिंग द्वारा बरार के राजा को भी प्रलोभन देकर मराठा मंडल से अलग कर लिया गया। अब सिन्धिया और होलकर को मराठा मंडल से अलग करने की सिरतोड़ कोशिश होने लगी। माधोजी सिंधिया नाना फड़नवीस का दांया हाथ था। जिस समय बम्बई की पराजित सेना से सन्धि की शर्तों को पूरा करने के लिये जमानत के रूप में, दो अंगरेज़ों को मराठों के यहां रखा तब तक यह गौरव महादजी को ही दिया गया था। कि वह उन अंगरेज़ों तथा राघोबा का निरीक्षक नियत किया जाय। कर्नल गाडर्ड ने गुजरात में सिंधिया को हरे बाग दिखाकर नाना फड़नवीस के मुकाबिले में मराठा मंडल में मुख्यता दिलाने की आशा दिलाई। माधोजी सिंधिया इस जाल में फँस गया। उसने ज़मानत के रूप में रखे हुए अंगरेज़ों, तथा राघोबा को अंगरेज़ों के हाथ में लौटा दिया। सिंधिया को

आशा थी कि अंगरेज़ इस उपकार के बदले उसके साथ अलग संधि करेंगे। परन्तु कर्नल गाडर्ड ने ठीक समयपर चकमा दे दिया और अलग संधि करने से साफ इनकार कर दिया। कर्नल गाडर्ड ने मौका देखकर महादा जी के सैनिकों पर छापा भी डाला तथा अन्यों को मैदान से भगा देने में भी संकोच नहीं किया।

नाना फड़नवीस अंगरेज़ों के कुटिलता तथा अविश्वसनीय व्यवहार से तंग था। उसने सोचा कि एक बार इनको अच्छी तरह बता देना चाहिये कि वर्तमान भारत में उनकी क्या स्थिति है? इस उद्देश्य से नाना फड़नवीस ने साम्प्रदायिक मतभेद की परवाह न करके निजाम, हैदरअली अर्काट के नवाब तथा अन्य छोटे २ राज्यों को अंगरेज़ों को विरुद्ध संगठित होने के लिये निमन्त्रण दिया। उसी उद्देश्य से दिल्ली के बादशाह को अपने साथ मिलाने के लिये, दिल्ली स्थित मराठा वकील पुरुषोत्तम महादेव हिंगे के द्वारा निम्नलिखित आशय की चिट्ठी दिल्ली में शाहआलम के पास भेजी।

टोपिकारों (युरोपियन) के रंग ढंग अन्यायपूर्ण तथा शरारत से भरे हैं। उनका तरीका यह है कि वह पहले भारतीय राजाओं को फुसलाते हैं और पीछे उनके राज्य को छीनकर राजा को कैद में डाल देते हैं। उदाहरण के लिये शुजाउद्दौला मुहम्मदअली खां, चन्दावर और अर्काट के राजा पर्याप्त हैं। इस लिये आप को चाहिये कि युरोपियनों को उठने न दें, नहीं तो युरोपियन लोग सारे देश पर अधिकार कर लेंगे। दिल्ली का सम्राट् सम्पूर्ण देश का स्वामी है। इसलिये यह सर्वथा उचित है कि वह इस बात पर ध्यान दें। दक्षिण के सब राजा परस्पर मिल गये हैं। उत्तरीय भारत में सम्राट् और नजीबखाँ को चाहिये कि सब राजाओं को संगठित कर अंगरेज़ों का दमन कर उनकी बढ़ती शक्ति को रोकें। इसी में भारतीय साम्राज्य की प्रतिष्ठा तथा समृद्धि बढ़ेगी।"

हेस्टिंग को नाना फड़नवीस की इस चाल का जब समाचार मिला वह एक दम सहम गया। उसने कर्नल गाडर्ड द्वारा निराश किये गए, महादाजी सिंधिया को फिर से आशा की चमक दिखाकर पूना दरबार के साथ संधि करने के लिये मध्यस्थ बनाया। इस मध्यस्थी का परिणाम ही सालबाई की संधि है।

यदि महादाजी मध्यस्थ न बनता तो असंभव नहीं था कि हिन्दुस्तान के सम्मिलित राज्य अंगरेज़ों की शक्ति को सर्वथा के लिये नष्ट कर देते। परन्तु दैव को यह अभीष्ट नहीं था। अंगरेज़ों को इस समय अनुभव हुआ कि उनके मुकाबले में भी कोई शक्ति है जिसको आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता। हैस्टिंग को नाना फड़नवीस की नीति-कुशलता तथा रण-चातुरी के सामने हार माननी पड़ी। वारन हैस्टिंग ने महत्वाकांक्षी महादाजी की सहायता लेकर, मुश्किल से अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखा। इस संधि की (१७८१ ई०) मुख्य शर्तें यह है :—

१. राघोबा का पक्ष अंगरेज़ छोड़ दें और वह तीन लाख सालाना पेन्शन लेकर चाहे जहां कहीं रहे।

२. सालसट टापू अंगरेज़ों के अधिकार में रहे परन्तु दोनों एक दूसरे के जीते हुए प्रदेश एक दूसरे को वापिस लौटा दे।

३. मराठे अंगरेज़ों के युरोपियन शत्रुओं की मदद न करें और अंगरेज़ मराठों के देशी शत्रुओ की मदद न करे।

४. गायकवाड़ नियमानुसार पेशवा को कर देकर अपने मुल्क का प्रबन्ध करे।

५. अंगरेज़ व्यापारियों को दक्षिण में व्यापार करने की अनुमति दी जाय।

इस समय राघोबा का देहान्त हो गया और नाना फड़नवीस ने अवसर पाकर मराठा मंडल को फिर से संगठित करने का यत्न शुरू किया। नाना फड़नवीस की धाक चारों ओर बैठ गई। अंगरेज़ लोग भी उसकी योग्यता को सराहने लगे और उसके जीते जी उन्होंने महाराष्ट्र की ओर बढ़ने का साहस नहीं किया।

: ७ :

दिल्ली का टिमटिमाता दीपक

१७६१ ई० में पानीपत के मैदान में मराठों और मुसलमानों में जो

लड़ाई हुई थी, उसमें यह निश्चित हो गया था कि दिल्ली के बादशाह टिमटिमाते दीपक की तरह शीघ्र ही बुझ जायंगे। वजीर जिसे चाहते थे उसे गद्दी पर बिठाते थे। इसी गड़बड़ में दिल्ली के बादशाह आलमगीर का खून हुआ। इस आलमगीर का लड़का शाहआलम बंगाल में था। पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर, इसने अंगरेज़ों का सहारा लेकर, अपने आप को इलाहबाद में अभिषिक्त कराया। भारत साम्राज्य का केन्द्रीय नगर दिल्ली था। जिसके हाथ में दिल्ली का बादशाह होगा, वही भारत में शासन करेगा। इस बात को उस समय की उठती हुई शक्तियां भली प्रकार समझती थीं। अंगरेज़, मराठे और अवध का वजीर, तीनों ही इस कोशिश में थे कि बादशाह उनके हाथ में आ जाए। जब तक दिल्ली दरबार में नजीबखान रहा, मराठों की कुछ नहीं चली। अंगरेज़ लोग नजीबखान को सहारा देकर, मराठों के विरोध में षडयन्त्र रचते थे और धीरे २ दरबार में अपना प्रभाव बढ़ा रहे थे। परन्तु नजीबखान की मृत्यु के बाद मराठों को रोकनेवाला प्रभावशाली व्यक्ति दरबार में कोई नहीं था। शुजाउद्दौला और अंगरेज़ बादशाह को दिल्ली नहीं पहुँचा सके। इस दशा में निराश होकर बादशाह ने मराठों की शरण ली। बादशाह शाहआलम में इतना तेज और बुद्धिबल न था, कि वह स्वयं दिल्ली पहुंच कर आत्मरक्षा कर सके।

मराठों और बादशाह में यह तय हुआ कि बादशाह मराठों को १० लाख रुपये दे और वह उसे दिल्ली पहुंचाएँ। अंगरेज़ों ने कलकत्ता से अपना वकील भेजकर, बादशाह को इस प्रकार की शर्तें करने से मना किया। मई मास में बादशाह इलाहबाद से दिल्ली की ओर प्रस्थित हुआ। दिसम्बर मास में पाटलिबुवा महादाजी के साथ बादशाह शाहआलम ने, दिल्ली शहर में प्रवेश किया। महादाजी सिंधिया ने बादशाह को गद्दी पर बिठाया। दिल्ली दरबार में दो पार्टियां हो गईं। एक मराठों के पक्ष की, दूसरी रुहेले अफ़गान सरदारों की। महादाजी सिंधिया की प्रबल अभिलाषा थी कि वह इस झगड़े को भी अपने सामने समाप्त करता। परन्तु दक्षिण में पेशवाई के सम्बन्ध में नए झगड़े पैदा होने के कारण उसे पूना लौटना पड़ा। इधर दरबार में १८७१ ई० तक बादशाह के सहायकों की रक्षा में उसकी स्थिति सुरक्षित रही। परन्तु नजीब-

गुलाम कादिर का पीछा किया। मेरठ के किले में उसको जा घेरा। परन्तु वह वहां से भी निकल भागा। गुलाम कादिर मेरठ के किले से निकल कर भाग रहा था कि रास्ते में एक खेत में घोड़े से गिर गया। एक कायस्थ ब्राह्मण ने उसे पकड़ कर राणाखान के पास पहुंचा दिया।

राणाखान ने उसे मथुरा में महादाजी सेंधिया के पास भेजा। महादाजी ने उसे गधे पर उल्टे मुंह चढ़ाकर शहर में घुमाया। उसकी आंखें निकलवा दीं। जब वह गालियां देने लगा तब उसके नाक, हाथ पैर तथा जीभ कटवा कर उसके शरीर का अवशिष्ट भाग बादशाह के पास दिल्ली भेज दिया। परन्तु दिल्ली पहुंचने से पूर्व रास्ते में ही १७८६ ई॰ में उसका देहान्त हो गया। महादाजी सेंधिया के इस कार्य ने मुग़ल बादशाही के भक्तों तथा अंगरेज़ों पर उसकी शक्ति प्रकट कर दी। जनता ने देख लिया कि दिल्ली दरबार के टिम-टिमाते बादशाही दीपक के लिये संरक्षा-दीपक का कार्य यदि कोई कर सकता है तो वह मराठों के सेनापति ही कर सकते हैं, दूसरा कोई नहीं। मराठों की शक्ति को देखकर बादशाह ने पेशवा को वकील-इ-उल्मुल्क की उपाधि दी। महादाजी पेशवा का प्रतिनिधि बन कर सब काम देखने लगा। दिल्ली में शान्ति स्थापित कर, विरोधी राजपूत सरदारों का दमन किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस समय क्या उत्तर भारत में और क्या दक्षिण में मराठों की नयी राज-शक्ति के सामने पुरानी राजशक्तियां कमज़ोर हो गयीं।

भारत में चारों ओर उनकी विजय पताका फहराने लगी। १७९२ ई० तक महादाजी ने दिल्ली में किसी दूसरी शक्ति को नहीं आने दिया। दिल्ली दर-बार में बादशाही तख्ते-ताउस पर आसीन बादशाह नेत्रहीन तथा तेजहीन था। वह अशक्त और केवलमात्र सिंहासन की पुरानी शोभा को कायम रखने वाला था। इसके बाद यह बादशाही दीपक; जब तक मराठों की संरक्षा में रहा, इसकी रक्षा होती रही। परन्तु भारतीय राजघरानों की रही सही शोभा तथा प्रतिष्ठा को मलियामेट करने पर तुली हुई, ब्रिटिश जाति ने जब १८०३ ई० में मराठों को पराजित किया तब इस रही सही ज्योति को भी बुझा दिया। इतना ही नहीं इस जाति ने धीरे २ छलबल से बादशाह को अपना आश्रित बना कर १८५७ ई० में मौका देखकर, मुगल वंश का सर्वनाश कर दिया। मुगल बाद-

शाहों की कृपा से ही अंगरेज़ लोग बंगाल में प्रविष्ट हुए थे। उन्हीं की कृपा से उन्हें वहां की दिवानी मिली थी। उन्हीं के अनुग्रह से इन्हें यहां व्यापारी कोठियां खोलनी मिली थीं। परन्तु किसी ने सच कहा है कि विजयी होकर, कृतज्ञता प्रगट करने वाली जातियां विरली ही होती हैं। स्वेच्छाचारी विजयी शक्तियां गुलाम कादिर की तरह अपनी पापमयी इच्छाओं को पूरा करने के लिये कृतघ्न राक्षस का रूप धर लेती हैं। अंगरेज़ जातियों के प्रतिनिधियों ने भी यहा यही कार्य किया। १८५७ ई० के भारतीय स्वातन्त्र्य युद्ध में बादशाह को बर्मा में कालेपानी की सजा देकर भेजा और उसके पुत्रों को दुनियां से मिटा दिया।

मुगल बादशाह के टिमटिमाते दीपक को बुझाने वाली यदि कोई जाति है तो वह अंगरेज़ जाति है। अशक्त बेबस शत्रु को कुचल कर शक्ति प्राप्त करने के लिये, सब कुछ करने वाली अंगरेज़ जाति को आने वाले निष्पक्ष ऐतिहासिक माफ नहीं कर सकते। मराठों ने यथाशक्ति धर्मभेद होने पर भी भारतीय मुगल बादशाही की रक्षा की, उसकी टिमटिमाती ज्वाला को प्रदीप्त रखने की कोशिश की। इतना ही नहीं इस कार्य के लिए शक्तिशाली जातियों से दुश्मनी भी ठानी। यह घटना स्पष्ट कह रही है कि विदेशी, विदेशी ही हैं और स्वदेशी स्वदेशी ही हैं। उस लाल किले में जहां गुलामकादिर ने भयकर अत्याचार किए थे, विदेशी शासक किले पर तैनात हुए अपना राक्षसी रूप दिखाने लगे। उस दिन वहां बादशाह तो था, आज उसका नामोनिशान भी नहीं है। उस दिन टिमटिमाते बादशाही दीपक को देखकर भारतीयों के दिल में उच्च भावनाएं जागृत होती थीं परन्तु आज वह भावनाएँ भी शान्त हैं। उस समय गुलाम कादिर के अत्याचारों की अंधेरी रात में, महादाजी सेंधिया की मराठी सेना ने किले पर तैनात की गई तोपों से शहर वालों की रक्षा की थी, पर अंगरेज़ी शक्ति को बचाने वाला भी कोई नहीं है। उस दिन अत्याचारों की घनी अमावस थी परन्तु फिर भी टिमटिमाता दीपक भटकों को राह दिखा रहा था, आज वह दीपक भी बुझ गया है। चारों तरफ अंधेरा है। भाई २ को नहीं पहचानता। आपस में हो रही हैं। इस लड़ाई को रोकने का एकमात्र उपाय यही है कि हम भारतीय

स्वाधीनता की ज्योति को देखें और उसके प्रकाश में चलते हुए स्वाधीनता के के कठिन पद से विचलित न हों।

× × ×

प्रसन्नता की बात है कि १५ अगस्त १६४७ को अंगरेज़ी शासन चक्र भी अपने पापों के बोझ से दबकर चूर २ होगया है और आज उस लाल किले पर भारतीय प्रजातंत्र का तिरङ्गा फहरा रहा है।

—:०:—

: ८ :

मराठों पर कुटिल ग्रह

आशा लग रही थी कि फिर से मराठे भारत में अपना झंडा फहराएंगे। महादाजी सेंधिया ने १७६२ में इस काम को चरमसीमा तक पहुंचा दिया। अभी आवश्यकता थी कि इस विजय को स्थिर रूप दिया जाता। परन्तु काल को यह अभीष्ट नहीं था। १७६३ में महादाजी सेंधिया का देहान्त होगया। जब आपत्तियां आती हैं, तब साथ ही आती हैं। नानाफड़नवीस नारायणराव पेशवा के पुत्र सवाई माधवराव को राजकार्य संचालन करने के लिये तैयार कर रहा था। नाना ने इस पेशवा को अपने निरीक्षण में शिक्षित किया था। उसे आशा थी कि यह पेशवा नष्ट हुई विजय-श्री को फिर से चमका देगा। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर नाना ने टीपू जैसी विरोधनी शक्तियों को अपनी राजनीति-कुशलता से बेकार कर दिया था।

सब देश भक्त आशा पूर्वक फिर से मराठा जाति के तेजस्वी रूप के आलोक की प्रतीक्षा में थे। परन्तु इतने में एक भयंकर घटना हो गई। सवाई माधवराव नाना के निरीक्षण में शिक्षा प्राप्त कर रहा था। राघोबा दादा के पुत्र बाजीराव ने पिता का बदला लेने के लिए सवाई माधवराव के हृदय को विषमय विचारों से कलुषित करना शुरू कर दिया। उसने पेशवा के दिल पर यह भाव अंकित किया कि जिस प्रकार हम नाना की कैद में हैं उसी प्रकार तुम भी उसकी कैद में हो। इस विवशता तथा परवशता के दुःख में सवाई माधवराव १७६५ ई० में आत्मघात करने के लिए पेशवाओं के महलों की ऊपर की

मंजिल से नीचे कूद पड़ा। भयंकर चोट के कारण कुछ दिनों तक जीवित रह कर मर गया। अब नाना फड़नवीस के सामने फिर यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि किसे पेशवा बनाया जाय। इस आपत्ति ने किए कराए पर पानी फेर दिया।

इसी समय सन् १७६५ ई० के होलकर घराने की रानी अहिल्या बाई की मृत्यु हो गई। दो साल बाद तुकोजी होलकर का भी इस लोक से प्रयाण हो गया। हम पहले लिख चुके हैं कि अंगरेज़ लोग अहिल्याबाई के रहते उसके राज्य में कूटनीति के फैलाने में सफल न हो सके। क्योंकि अहिल्याबाई दूरदर्शिनी धर्म परायणा राज्ञी थीं। उसने देशद्रोही राघोबा को अपने राज्य में प्रवेश नहीं करने दिया। परन्तु इस अकालिक मृत्यु के कारण होल्कर राज्य भी अंगरेज़ों की भेदनीति का उपजाऊ स्थान बन गया। गायकवाड़ में गृहद्रोह फैल रहा था। महादाजी सेंधिया की मृत्यु के बाद वहां भी पुराने मराठा साम्राज्य की शान की सराहना करने वाला कोई नहीं रहा। प्रभावशाली व्यक्तियों के कार्यक्षेत्र से हटते ही संगठित मराठा-मण्डल छिन्न-भिन्न होने लगा। महाराष्ट्र पर आए हुए इस कुटिल ग्रह ने ही यहीं तक बस नहीं की। रामशास्त्री जिसकी निष्काम सदिच्छाओं तथा परामर्शों का मराठा जाति पर प्रभाव था, वह भी परलोक सिधारा। इस प्रकार योग्य व्यक्तियों के उठ जाने से पूना दरबार में अकेला नानाफड़नवीस ही रह गया। अन्य स्वार्थी महत्वाकांक्षी उससे ईर्ष्या करने लगे। उसकी उन्नति को न देख सके। योग्य आदमी को योग्य आदमी ही पहचान सकते हैं। मराठा मंडल इन वीरों के उठ जाने से अनाथ हो गया।

इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व हम माता अहिल्याबाई के सम्बन्ध में अंगरेज़ ऐतिहासिक की सम्मति देते हैं जिससे पता लगेगा कि भारतीय महिलाओं ने राजनैतिक क्षेत्र में भी किस सफलता के साथ काम किया। मि० टौरेन्स 'एम्पायर इन एशिया' नाम की पुस्तक १०१ पृष्ठ पर स्वेच्छाचारी तथा पंचायती राज्य की बुराइयों तथा लाभों पर विचार करते हुए लिखते हैं—

"अहिल्याबाई का ३० साल का शासनकाल इस बात का उदाहरण है कि शुद्ध और सम्माननीय आदर्शों से प्रेरित हुआ कोई व्यक्ति एकतन्त्र राज्य की बुराइयों को भी दूर कर सकता है।"

"१७६५ ई० में होलकर वंश का कोई पुरुष उत्तराधिकारी नहीं बचा था। इस दशा में मृतराजा की माता अहिल्याबाई ने राज्य का कार्य संभाला। उसने आश्चर्यमयी योग्यता से राज्य-कार्य को निभाया। रूस की प्रसिद्ध कैथराइन की तरह वह विदेशी नीति में सफल रही; परन्तु इस सफलता को प्राप्त करने के लिये उसने कैथराइन की तरह अपने पति का खून नहीं किया। साहस में वह इंगलैंड की प्रसिद्ध रानी एलिज़बेथ से किसी अंश में कम नहीं थी। परन्तु उसने एलिज़बेथ की तरह अपनी प्रतिद्वन्दिनी मेरी को जेल में कैद कर मरवाया नहीं।"

अहिल्याबाई का उद्देश्य धर्मपूर्वक न्याय के अनुसार राष्ट्र तथा प्रजा की स्थिति को उन्नत करना था। उसकी सेनाशक्ति थोड़ी थी। सुप्रबन्ध के कारण उसे अन्तरीय शासन करने में कभी दिक्कत नहीं हुई। सारी प्रजाएं उसके लिये सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार रहती थीं। वह अपने आपको परमात्मा के प्रति उत्तरदात्री समझती थी। अहिल्याबाई अपने धर्म में दृढ़ निश्चय वाली थी और साथ ही भिन्न २ धर्म वाली अपनी प्रजाओं के प्रति सहिष्णुता-पूर्वक व्यवहार करती थी। उसका जीवन पवित्र और धर्ममय था अपने प्रिय सम्बन्धियों की मृत्यु होने पर भी उसने साहस के साथ अपने कर्तव्य का पालन किया। वह विधवा और पुत्रहीन होकर ही परलोक सिधारी।"

मराठा शासनकाल के उत्तरार्ध में रानी अहिल्याबाई ने भारतीय महिलाओं के यश को उज्ज्वल किया। यह जगमगाता महिला-रत्न भी इस कुटिल ग्रह की छाया से न बच सका। इन योग्य व्यक्तियों के उठ जाने पर, फिर से अंधेरा छा गया और मराठा साम्राज्य का उज्जवल भविष्य फिर से धुन्धला हो गया। राष्ट्र भक्तों की आशाओं पर फिर से निराशा का तुषार छा गया।

———

कृतघ्नता की पराकाष्ठा

सवाई माधवराव पेशवा की मृत्यु का वर्णन हो चुका है। अंगरेज़ ऐतिहासिकों ने उस समय के अंगरेज़ अफसरों के बयानों के आधार पर यही परिणाम निकाला है कि सवाई माधवराव नानाफड़नवीस के कड़े निरीक्षण के कारण विवश हो गया था। परन्तु मेज़र बसु आदि भारतीय ऐतिहासिकों का कहना है कि यह बात ठीक नहीं है। नानाफड़नवीस को बदनाम करने के लिये ही यह भ्रम फैलाया गया था। खैर, यह निर्विवाद बात है कि सवाई माधवराव निःसन्तान होकर परलोक सिधारा। अब नाना के सामने फिर यही प्रश्न उपस्थित हुआ कि पेशवा कौन बने ? वह जानता था राघोबा का पुत्र बाजीराव द्वितीय अदूरदर्शी है। पिता की तरह स्वार्थ सिद्धि के लिये वह राष्ट्र हित की परवाह नहीं करेगा। वह यह भी समझता था कि अंगरेज़ लोग इसे अपनी कठपुतली बनाएंगे

इन बातों पर विचार कर नाना जी ने यह निश्चय कर लिया कि सवाई माधवराव पेशवा की विधवा यशोदाबाई राज्य की मालकिन हो और वह किसी लड़के को गोदी ले। इस विषय में नाना ने तुकोजी होलकर से भी सलाह ली, और पूना स्थित अंगरेज़ रैज़िडैन्ट मैलट को भी इसकी सूचना दी। अंगरेज़ लोग समझते थे कि बाजीराव को तो वह अपने जाल में फंसा सकते हैं परन्तु नाना फड़नवीस द्वारा शिक्षित किया हुआ नवयुवक उनके दांव पर नहीं चढ़ेगा।

बाजीराव ने पेशवाई की गद्दी को खाली देखकर उसके लिए कोशिश करनी शुरू की। नाना को बाजीराव का यह विचार ज्ञात हुआ। उसने घर की लड़ाई को बन्द करने के लिये बाजीराव द्वितीय को ही पेशवा बनाया। बाजीराव और दौलतराव सेंधिया मिल गए। बाजीराव के दिल में यह बात घर कर गई कि जब तक नानाफड़नवीस की चलेगी तब तक हम स्वतन्त्र नहीं हैं। अतः उसने दौलतराव सेंधिया को दो करोड़ रुपये का प्रलोभन देकर इस बात के

लिए तैयार किया कि वह नाना को गिरफ्तार करे। नाना गिरफ्तार किया गया।

परन्तु बाजीराव शर्तों के अनुसार सेंधिया को रुपया न दे सका। बाजीराव ने उसको पूना शहर लूट कर रुपया वसूल करने की अनुमति दी। उसने यथेच्छ लूट मचाई। बाहर लूट मचाने वालों के घर में शान्ति नहीं रह सकती। इसी समय सेंधिया के राज्य में कई झगड़े खड़े हो गए। उन झगड़ों को निपटाने के लिये सेंधिया को लाचार होकर नाना को कैद से मुक्त करना पड़ा। सन् १८०० ई० मार्च के महीने में नाना कैद से छूट बाहर आया। कुछ दिन बाद उसका देहान्त हो गया। नाना फड़नवीस ने मराठा साम्राज्य की निष्काम सेवा की। मराठा राज्य को बचाने के लिये उससे जो कुछ बन पड़ा, उसने वह सब कुछ किया। दिन रात सतर्क रहा, अन्तिम दम तक मराठा-मण्डल में से फूट की बुराई को दूर करने की कोशिश की। इसी कोशिश में अपने प्राणों के शत्रु बाजीराव को पेशवा भी बनाया। सिंधिया तथा होलकर की रियासतों की प्रतिष्ठा को कायम रखने में तन मन वार दिया। परन्तु हम देखते हैं कि ऐसे निष्काम ब्राह्मण के साथ मराठा जाति ने कृतघ्नता की। जो जातियां अपने वीरों का सम्मान करना नहीं जानतीं वह कभी शक्तिशाली नहीं बन सकतीं। मराठा जाति ने मराठा सरदारों ने नाना के साथ जो कृतघ्नता का व्यवहार किया है उसी का परिणाम यह हुआ कि उनके वंशज पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े गये। यदि बाजीराव द्वितीय नाना फड़नवीस की सलाह से कार्य करता तो क्या मजाल थी कि अंगरेज़ मराठा शाही का अन्त कर पाते। नाना फड़नवीस उनकी चालों को समझता था। नाना फड़नवीस ने अन्तिम समय तक दम साध कर, आपत्तियां झेलकर, पूर्व पुरुषों द्वारा स्थापित राष्ट्र की रक्षा की। उसके इस कार्य के कारण उसका नाम भारत के इतिहास में सदा मान तथा प्रतिष्ठा के साथ याद किया जायगा। मराठों पर कुटिल-ग्रह का प्रकोप आ चुका था। नाना फड़नवीस की मृत्यु के कारण वह घोर प्रलय के रूप में बदल गया। नाना के मरते ही दुश्मन प्रबल हो गये। एक ओर से निज़ाम अपना खोया हुआ राज्य फिर से हथियाने की कोशिश करने लगा, दूसरी ओर अंगरेज़ों ने फिर से रेज़िडेंटों का जाल फैला कर पूना,

इन्दौर तथा मालवा में अपनी भेद-नीति का जाल फैलाना शुरू किया। इस भेद-नीति के कारण ही मराठा की रही सही शक्ति भी नष्ट हो गयी और अंगरेज़ों के रैजिडैन्ट सब रियासतों के मालिक बन गए। वीरों के प्रति कृतघ्नता करने वाली जातियों को यही फल मिलता है।

: १० :

दूसरा बाजीराव

नाना फड़नवीस ने लाचार होकर बाजीराव को पेशवा बनाया था। जिस समय इसने सेंधिया से मिलकर नाना के विरुद्ध षडयन्त्र करने शुरू किये उस समय मराठा मंडल की अन्तःकलह को देखकर निजाम तथा अंगरेज़ मिलकर, मुकाबला करने के लिये खड़े हुए टीपू सुल्तान की शक्ति नष्ट हो गई थी। मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टम में अंगरेज़ों का झण्डा लहरा रहा था। अंगरेज़ों को भय था कि कहीं दक्षिण के मराठे जागीरदार, पूना के मराठे सरदारों के साथ न मिल जांय। इस लिये उन्होंने दक्षिण के जागीरदारों में पूना दरबार के विरुद्ध भाव फैलाने शुरू किये। बाजीराव द्वितीय ने जब देखा कि अब कुछ नहीं हो सकता तब उसने नानाफड़नवीस को फिर कार्य सौंपा। नाना ने मराठा सरदारों को निज़ाम और यूरोपियन के विरुद्ध संगठित करना शुरू किया। अभी यह कार्य शुरू किया ही था कि १६ फरवरी सन् १८०० ई० को नाना फड़नवीस का देहान्त हो गया। अब मराठा मंडल में कोई दूरदर्शी व्यक्ति न रहा। बाजीराव असहाय था। उसने दौलतराव सेंधिया का सहारा लेकर, शासन करना शुरू किया। वह बुद्धिमान था; वह लड़ाका और साहसी भी था। इसी समय होलकर घराने में तुकोजी होलकर के मरने के बाद उसके उत्तराधिकारियों में झगड़े होने लगे। यह चार भाई थे। काशीराव मल्हारराव यशवन्तराव, और बिठोजी। सेन्धियों ने काशीराव और मल्हारराव का दमन किया। मल्हारराव मारा गया। यशवन्तराव और बिठोजी भाग गए। इस भागदौड़ में बिठोजी को बाजीराव पेशवा ने हाथी के पैरों तले रुंदवा दिया।

यशवन्तराव को जब यह समाचार मिला उसने एकदम पूना पर आक्रमण कर लूट मचा दी और सेंधिया तथा बाजीराव की सेनाओं को पराजित कर दिया। बाजीराव की जगह उसके भाई अमृतराव को पेशवा बनाने की घोषणा कर दी। सेंधिया पूना में था इसलिये यशवन्तराव ने मालवा पर आक्रमण किया। माधोराव सिन्धिया की विधवा रानियां भी दौलतराव सेंधिया के विरुद्ध हो गई थीं। नागपुर के रेजिडैन्ट मि० कौलब्रुक ने बरार के राजा तथा उसके पास आए हुए यशवन्तराव होलकर को सिंधिया के विरोध में विद्रोह करने के लिए प्रेरित्त किया। इस समय अङ्गरेज़ समझते थे कि नाना फड़नवीस के पीछे सिंधिया ही एक ऐसा व्यक्ति है जो उनकी चालों को समझता है। सिंधिया ने बाजीराव को हर हमय सचेत रखा कि वह अङ्गरेज़ों को अपने देश में न आने दे। बाजीराव ने सर आर्थर वेल्सली को धुंधुआ नाम के व्यक्ति का पीछा करने के लिये महाराष्ट्र प्रदेशों में घूमने की आज्ञा दी, तब सेंधिया ने उसका विरोध किया। सर आर्थर वेल्सली की चिट्ठियां बताती हैं कि उसने इस मौके से पूरा लाभ उठाकर महाराष्ट्र की भौगोलिक तथा सेना संचालन सम्बन्धी स्थिति को देख लिया था। इसके बाद सेंधिया ने अपनी शिक्षित सेना द्वारा अङ्गरेज़ों तथा अङ्गरेज़ रेजिडेंटों की कुछ नहीं चलने दी। गवर्नर जनरल ने लाचार होकर पूना के असफल रेजिडेंट पामर को हटाकर उसकी जगह कर्क पैट्रिक को नियुक्त किया। परन्तु वह बीमार होकर विलायत चला गया। उसकी जगह कर्नल क्लोज पूना का रेजिडेंट बना। इसी ने श्रीरंगपट्टम में टीपू सुल्तान के घर में फूट के बीज बोये थे।

बाजीराव पेशवा की बातों से हैरान होकर, सेंधिया ने यही उचित समझा कि बाजीराव पेशवा पर हर समय पहरा रहे; जिससे विदेशी लोग उस पर नीति-चक्र का पाँसा न फेंक सकें। मूर्ख बाजीराव ने इस पहरेको बुरा मनाया और यशवन्तराव आदि से मिल कर सेंधिया के निरीक्षण से मुक्ति पाने की चेष्टा की। अङ्गरेज़ों ने यशवन्तराव होलकर को सेंधिया के विरुद्ध सहायता देने में कोई भी कमी नहीं की। गवर्नर जनरल वेल्सली ने इस समय अपने सेनापति को लिखा कि :—

"वह सिंधिया के विरोध में राजपूत राजाओं को खड़ा करने की कोशिश

करे ; साथ ही राज दरबार की विधवा रानियों के द्वारा सिंधिया की प्रजाओं में दौलतराव के प्रति विद्वेष का भाव पैदा करे। यशवन्तराव होलकर और विधवा रानिओं ने परस्पर, दिखावे की लड़ाई लड़कर युरोपियनों के बहकावे में आकर मारवाड़ की ओर प्रस्थान किया। इधर सिंधिया की अनुपस्थिति में पूना में गड़बड़ हो गई। यशवन्तराव होलकर ने मौका देखकर पूना पर आक्रमण किया। इसी समय वेल्सली ने पूना के रेंजिडेंट को आज्ञा दी कि वह यशवन्तराव होलकर की सेनाओं से किसी प्रकार का लड़ाई झगड़ा न करे, क्योंकि होलकर सिंधिया की पारस्परिक लड़ाई से हमें फायदा है। हम इस लड़ाई से फ़ायदा उठाकर पूना के राजदरबार को बाधितकर, अनुकूल यथेष्ट शर्तों के अनुसार संधि कर सकेंगे। मराठों के साथ अङ्गरेज़ों ने जो संधि की उसके अनुसार उनका कर्त्तव्य था कि वह पेशवा तथा सिंधिया को होलकर के विरुद्ध सहायता देते। परन्तु इसमें अङ्गरेज़ों का स्वार्थ बिगड़ता था अतः उन्होंने यह नहीं किया ; अपितु होलकर को सिंधिया के विरुद्ध उकसाकर बाजीराव को असहाय बना दिया। होलकर ने अपनी अधेड़ अशिक्षित सेना की सहायता से पेशवा और सिंधिया की शिक्षित सेनाओं को हरा दिया।

जिस समय पूना में यशवन्तराव होलकर विजयी होता है और पेशवा पराजित होता है उस समय पूना का रेजिडेंट कर्नल क्लोज वहीं था। होलकर ने कर्नल क्लोज को निमन्त्रण देकर सिंधिया और अपने झगड़े को निपटाने के लिये कहा। दोनों को लड़ाकर अङ्गरेज़ों ने बाजीराव को असहाय बना दिया। बाजीराव पूना से सिंहगढ़ गया और सिंहगढ़ से रायगढ़ होता हुआ फिर महाराष्ट्र को लौटा। यहां से उसने बम्बई सरकार को रक्षा के लिये जहाज भेजने को लिखा। अङ्गरेज़ी सरकार द्वारा भेजे गये जहाजों पर चढ़कर अपने साथियों के साथ बाजीराव द्वितीय ६ दिसम्बर १८०२ को बसई में पहुंचा। अङ्गरेज़ों की चिरकाल की इच्छा पूरी हुई। अंगरेज़ पेशवा को अपने जाल में फंसा कर अपने अनुकूल सहायक सेना की शर्तें स्वीकार कराना चाहते थे। बाजीराव ने कई सालों तक इन्हें स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। परन्तु अब वह लाचार था। असहाय था। उसका सब कुछ अंगरेज़ों के हाथ में था। उसकी पेशवाई तथा उसका जीवन विदेशियों के हाथ में आ गया। इस हालत में मराठे सर-

दारों तथा पूना दरबार की सलाह लिये बिना उसने ३१ दिसम्बर १८०२ को बसई की संधि पर हस्ताक्षर कर दिये। संधि की शर्तें यह हैं :—

१. बाजीराव आत्म रक्षा के लिये अंगरेज़ों की सहायक सेना को रखे और उसके खर्च के लिये ३६ लाख का मुल्क अलग कर दे।

२. अंगरेज़ों के युरोपियन शत्रुओं (फ्रांसीसियों) को बाजीराव अपने राज्य में स्थान न दे।

३. अन्य देशी रजवाड़ों से अंगरेज़ों की मध्यस्थी से ही सुलह या लड़ाई करे, स्वतन्त्र रूप से नहीं। बाजीराव ने इन पर हस्ताक्षर कर दिए। हस्ताक्षर क्या किये मराठा साम्राज्य को अंगरेज़ों के हाथ बेच दिया। मराठों की स्वाधीनता का सूर्य अस्त हो गया। कमज़ोर बाजीराव ने अपनी कमजोरी के कारण शक्तिशाली मराठा साम्राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। अंगरेज़ लोग समझते थे कि मराठे सरदार इस संधि को स्वीकार नहीं करेंगे। इस विरोध की उमड़ती हुई आंधी का मुकाबला करने के लिए अंगरेज़ों ने विशेष तय्यारी करनी शुरू की। इस युद्ध में मराठे सरदारों ने अपनी शक्ति को संगठित करने की कोशिश की, परन्तु अंगरेज़ों की भेद-नीति के कारण मराठे अपने इस उद्योग में सफल न हो सके।

: ११ :

सिंधिया और होलकर

इस द्वितीय मराठा युद्ध का एक मुख्य कारण बसई की सुलह थी। लार्ड वेलज़ली चाहता था कि होलकर सिंधिया, बरार के भोंसले इस संधि को स्वीकार न करें। वेलज़ली का एक मात्र उद्देश्य सिंधिया की शक्ति को कम करना था। १८०३ ई० में सिंधिया ने यह घोषणा की कि हम पेशवा बाजीराव को फिर से पूना की गद्दी पर बैठाना चाहते हैं। इस उद्देश्य से तीनों पार्टियां मिलने को तय्यार हो गईं। उन्होंने कम्पनी की सीमा स्थित सेना के प्रति किसी प्रकार का विरोध भाव प्रकट नहीं किया। बाजीराव पेशवा कम्पनी की छोटी सेना की रक्षा में था। इस सेना ने पूना दरबार में शान्ति स्थापित करने की

ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ली। अंगरेज़ों की सेनाएँ सिंधिया होलकर तथा बरार के सीमाप्रान्तों पर तैनात थीं। इस प्रकार शत्रुओं से आवृत होने पर एक दम युद्ध के लिये तय्यार होना कठिन था। परन्तु तीनो ने इस बात पर एका कर लिया कि वह बसई की सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे। इस पर लार्ड वेल्सली ने सिंधिया को लिखा कि वह अपनी सेना को नर्बदा के पार ले जाय। इधर आर्थर वेल्सली मैसूर से बड़ी भारी फौज लेकर बाजीराव के शत्रुओं का दमन करने के लिए आया हुआ था। कर्नल मैलकम नर्मदा के किनारे पर था। तीनों मराठे सरदारों ने कहला भेजा कि हम अपनी सीमा में ही हैं। हां यदि अंगरेज सेनापति कोई खास तिथि निश्चित करेंगे तो हम उनके साथ अपनी सेनाएं पीछे हटा लेंगे। लार्ड वेल्सली ने इसे भी स्वीकार नहीं किया। उसने इसी बात पर ज़ोर दिया कि वह अंगरेज़ों की सहायक सेना को अपने पास रखें।

युक्ति यह दी कि मराठा सरदार हमारी सहायक सेना को नहीं रखेंगे तो हम बसई की संधि के अनुसार मराठा मंडल पर पूरा नियन्त्रण नहीं कर सकेंगे। जवाब में सिंधिया और बरार के भोंसलों ने कहा कि हम बसई की सुलह पर हस्ताक्षर कर अपनी स्वतन्त्रता को नहीं खोएंगे। पेशवा ने खुशी से बसई की संधि पर हस्ताक्षर नहीं किए; बाधित होकर ही किए हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम पेशवा को मुक्तबन्धन करें। इस भाव से प्रेरित होकर बरार और सेंधिया ने युद्ध की तय्यारियां शुरू कर दीं। अंगरेज़ इसकी प्रतीक्षा में ही थे। सेंधिया की सेना में कई युरोपियन अफ़सर नौकरी करते थे। अंगरेज़ोंने उनको ईसाइयत के नाम पर अपने साथ मिलाने में संकोच नहीं किया। सेंधिया का फ्रांसीसियों के साथ मेल है इस बहाने की आड़ में लार्ड वेल्सली ने निम्नलिखित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए सिंधिया तथा बरार के विरुद्ध युद्ध घोषित किया। यशवन्तराव होलकर की सिंधिया से नहीं बनती थी। अतः उसने इस समय उदासीन रहना ही उचित समझा और युद्ध के मैदानों से अलग होकर स्वतन्त्र रूप से लूट मचाने के लिये राजपूताना के मैदानों में निकला। जिन उद्देश्यों को पूरा करने की घोषणा करके यह युद्ध जारी किया गया था वह यह हैं—

सम्पन्न थीं। ७ जुलाई को मांसन मुकन्दरा के दर्रा से ६० मील की दूरी तक चम्बल नदी की ओर बढ़ा। उसे यह समाचार मिला कि होलकर नदी पार कर रहा है। यह भी सुना कि कर्नल मरे, जिसे होलकर पर आक्रमण करना चाहिए था, गुजरात की ओर लौट गया है, और यह भी देखा कि अपनी सेना के पास दो दिन की ही रसद है। इन बातों से मांसन घबरा गया। इस घबराहट में उसने मुकन्दरा के दर्रे की ओर लौटने का निश्चय किया। मांसन ने धीरे २ सामान भेजकर लौटना शुरू किया। होलकर ने मौका देखकर शत्रु की लौटती हुई सेना पर धावा बोल दिया। और उसे घेर लिया। होलकर स्वयं घुड़सवार सेना के साथ था। उसने सेनाओं को टुकड़ियों में बांटकर अंगरेज़ों को हराया। मांसन को पराजित होकर भागना पड़ा। अंगरेज़ों की इस पराजय के कारण होलकर का नाम तथा मान चमक गया। अन्य देशी राजा भी अंगरेज़ों के विरुद्ध सिर उठाने लगे।

होलकर ने इस पराजय से फायदा उठाकर एक दम दिल्ली पर धावा बोल दिया परन्तु वहां सफल न हुआ। इस असफलता से होलकर निराश नहीं हुआ। उसने भरतपुर के जाट राजा रणजीतसिंह के साथ सुलह कर अंगरेज़ों का मुकाबला किया। चारों ओर अंगरेज़ों के सतर्क होने के कारण दीग के दुर्ग में दोनों (होलकर तथा रणजीतसिंह) की सम्मिलित सेनाएं अंगरेज़ों के सामने न ठहर सकीं। होलकर वहां से निकल भागा। अंगरेज़ों ने सोचा कि जब तक भरतपुर के किले को आधीन नहीं किया जायगा तब तक अन्तिम विजय नहीं मिल सकती। इस उद्देश्य से लेक ने सारा ज़ोर भरतपुर के किले को जीतने में लगाया। जनरल लेक ३ जनवरी १८०५ ई० को भरतपुर पहुंचा। पूरे बल के साथ किले पर धावा बोला। दीवार में कुछ दरार दिखाई दिया। परन्तु सफलता नहीं हुई। जनरल लेक ने तीन बार किले को जीतने के लिए विशेष कोशिश की। परन्तु एक बार भी सफलता नहीं हुई। अंगरेज़ लोग शत्रु के गढ़ में घर के द्रोही पैदा कर विजय प्राप्त करने में अभ्यस्त थे। परन्तु उन्हें यहां कोई देशद्रोही नहीं मिला। लाचार होकर गवर्नर जनरल ने लार्ड लेक को युद्ध बन्द करने को लिखा। इतने में अमीरखान के विश्वासघात के कारण विजय की झलक दिखने लगी। इसी समय लाचार होकर भरतपुर के राजा ने

भी आत्मरक्षा के विचार से संधि की शर्तों पर विचार करने की इच्छा प्रकट की। अंगरेज़ तो तैयार ही थे। सुलह हो गई। अब होलकर का साथ देने वाला कोई नहीं था। इधर वेल्सली की जगह लार्ड कार्नवालिस आ गया। उसने एकदम युद्ध बन्द कर दिया। यशवन्तराव होलकर विफल होकर बेचैन हो गया।

कार्नवालिस की शांतिमयी नीति के कारण सिंधिया ने अपने आप को होलकर से अलग रखना उचित समझा। असहाय साधनहीन यशवन्तराव होलकर ने अपने आपको दुश्मन के हाथ में नहीं सौंपा; और नांही रक्षा के लिये हाथ पसारा। वह वहां से पंजाब गया। उसे आशा थी कि पंजाब का स्वतन्त्र शासक महाराजा रणजीतसिंह उसे अंगरेज़ों के विरुद्ध सहायता देगा। परन्तु वहां भी उसे सफलता न हुई। रणजीतसिंह ने उसको अंगरेज़ों के साथ लड़ाई न करने की सलाह दी।

अमीरखां के अधम चरित से पता लगता है कि लार्ड लेक भी होलकर की वीरतामयी विजय यात्राओं से तंग हो चुका था। उसे भय था कि कहीं होलकर रणजीतसिंह या अन्य सिक्ख सरदारों के साथ न मिल जाय। इस लिये उसने कलकत्ता कौंसिल की आज्ञानुसार अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने के लिये रणजीतसिंह द्वारा होलकर को संधि करने के लिये तय्यार किया। आखिर संधि की शर्तें १८०५ की १४ दिसम्बर को तय हुईं। इसके अनुसार अंगरेज़ों ने ताप्ती और गोदावरी के दक्षिण की ओर के सब प्रदेश, जो होलकर से छीने थे, उसे लौटा दिये। होलकर के राज्य में सहायक सेना की भी स्थापना की गयी।

इस प्रकार हमने देखा कि अंगरेज़ों ने जबर्दस्ती, नीति बल द्वारा छल-बल से भारत के राजाओं को आपस में लड़ाकर अपना राज्य कायम किया। यशवन्तराव होलकर का परिश्रम सराहनीय है। जब उसे एक बार अंगरेज़ों के स्वार्थ-पूर्ण स्वभाव का पता लग गया उसने फिर उन पर कभी विश्वास नहीं किया। इस लिए वह सिंधिया की तरह अपमानित नहीं हुआ। आखिर होलकर आत्मग्लानि से उद्विग्न होकर १८११ ई० में इस लोक से चल बसा।

पूना दरबार में षड्यन्त्र

बम्बई की संधि के बाद पूना दरबार में कर्नल क्लोज रैजिडेएट था। लार्ड वेल्सली ने कई बार कर्नल क्लोज को इस बात के लिये प्रेरित किया कि वह पूना दरबार में द्वेषाग्नि पैदा करे और बाजीराव की रही सही शक्ति को नष्ट करे। परन्तु कर्नल क्लोज ने लार्ड वेल्सली की इस योजना को नहीं माना। वह बाजीराव का हित चिन्तक था। वह पूना दरबार तथा अंगरेज़ी सरकार के बीच में खुर्शेदजी नाम के पारसी द्वारा सारा कारोबार करता था। जब तक कर्नल क्लोज रैजिडैन्ट रहा उसकी पेशवा से किसी प्रकार की अनबन नहीं हुई। परन्तु कर्नल क्लोज के बाद जब एलफिन्सटन रैजिडेन्ट बन कर आया, तब इसने लार्ड वेल्सली की नीति के अनुसार दरबार में नित नये षड्यन्त्र करने शुरू किए। खुर्शेदजी को राज्य-कार्य से अलग कर स्वयं सब काम देखने शुरू किए। इस समय बाजीराव पेशवा तथा गायकवाड़ के दरबार में कुछेक प्रश्नों पर झगड़ा था। पेशवा ने एलफिन्स्टन से कहा कि वह इनका फैसला कराएं।

एलफिन्स्टन के कहने से गायकवाड़ ने गंगाधर शास्त्री को इस काम के लिये भेजा। यह गंगाधर शास्त्री पहले पेशवाओं के दरबार में नौकर था। गुस्ताखी के अपराध में इसे वहां से निकाला गया था। गंगाधर शास्त्री जब पूना में आया, इसने एलफिन्स्टन को खुर्शेदजी के विरुद्ध भड़काया।

पेशवा ने गंगाधर शास्त्री के साथ विवाह सम्बन्धी प्रस्ताव पेश करके उसे अपने अनुकूल करने की कोशिश की। परन्तु एलफिन्सटन के रहते यह कार्य न हो सका। गंगाधर शास्त्री का पेशवा तथा गायकवाड़ के साथ जो लेन देन था, उसका फैसला भी कर दिया। परन्तु स्वयं पीछे से यह कह कर टाल दिया कि गायकवाड़ इसे नहीं मानेगा।

अंगरेजों के इशारे पर इसने पेशवा का वज़ीर बनना भी अस्वीकार किया और पेशवा की साली का अपने पुत्र के साथ जो विवाह होना निश्चित हुआ था, उसे भी बन्द कर दिया। इसी समय १८१५ ई० जौलाई मास में

गंगाधर शास्त्री पेशवा के साथ पुरन्दर गया। वहां किसी ने शास्त्री का खून कर दिया। कहा जाता है कि बाजीराव के मुंहलगे त्रिम्बकजी पिंगले ने पेशवा के इशारे पर ही यह खून कराया था। परन्तु इस पक्ष के समर्थन के लिए कोई पुष्ट प्रमाण नहीं दिया जाता।

परन्तु एलफिन्सटन ने यही कहा कि इस हत्या का कराने वाला त्रिम्बक पिंगल है; और बाजीराव को अन्तिम सूचना दी कि यदि वह किले को हमारे हाथ में नहीं सौंपेगा तो पूना पर आक्रमण कर दिया जायगा। बाजीराव ने बेबस होकर पिंगले को अंगरेज़ों के हाथ में सौंप दिया अंगरेज़ों ने उसे थाना में गिरफ्तार किया।

पूना दरबार में दो ही प्रभावशाली अनुभवी व्यक्ति थे। खुर्शेदजी और पिंगले। एलफिन्सटन ने षड्यन्त्रों का जाल फैलाकर, बाजीराव को दोनों व्यक्तियों से अलग कर दिया। ये दोनों व्यक्ति ही समय २ पर बाजीराव को सलाह देकर ढाढ़स बँधाते थे।

: १४ :

अङ्गरेज़ और बाजीराव

पूना का रेजिडेन्ट एलफिन्सटन, पेशवा के साथ जान बूझ कर लड़ाई छेड़ना चाहता था। रेजिडेंट ने पेशवा को वह शर्तें पूरी करने को कहा। त्रिम्बकजी पिंगले ब्रिटिश सेना की रक्षा में कैद था। वह वहां से निकल भागा। कहा जाता है कि वह पेशवा के राज्य में रहता था। एलफिन्सटन ने पेशवा को कहा कि वह त्रिम्बकजी पिंगले को एक मास के भीतर अंगरेज़ों को सौंप दे और साथ ही एक दम जमानत के तौर पर सिंहगढ़ पुरन्दर और राजगढ़ के किलों को हमारे आधीन कर दे। एलफिन्सटन सेनाएं लेकर पूना की ओर बढ़ा बाजीराव ने १८१७ ई० ६ मई को तीनों किले अंगरेज़ों के हाथ में सौंपने का हुक्म कर दिया। अंगरेज़ इतने से ही सन्तुष्ट न हुए उन्होंने बाजीराव से कहा कि वह गंगाधर शास्त्री की हत्या के बदले पूना की संधि पर हस्ताक्षर करे। बाजीराव ने निर्दोष होते हुए भी हस्ताक्षर कर दिये। इस संधि द्वारा पेशवा ने

गायकवाड़ से जो कुछ लेना था उसे सदा के लिए छोड़ दिया। अंगरेज़ों ने गुजरात के उपजाऊ प्रदेशों को पेशवा से छीन कर अपने अधिकार में करने की कोशिश शुरू की। बाजीराव अंगरेज़ों के इस कृतघ्नता-पूर्ण व्यवहार से बहुत हैरान हुआ।

बाजीराव तथा सरदारों ने निश्चय किया कि या तो स्वाधीनता के साथ जीवन बिताएंगे या मर मिटेंगे। बापू गोखले के नेतृत्व में मराठी सेनाओं ने अंगरेज़ों के विरुद्ध युद्ध का शंख बजा दिया। किसी भी ब्रिटिश लेखक ने बापू गोखले के विषय में बुरी आलोचना नहीं की। इसने बसई की संधि कराने में, उन्हें पूरी सहायता दी थी। परन्तु इस समय वह भी इनके अत्याचारों तथा अन्यायों से हैरान हो चुका था। एलफिन्सटन ने मराठी सेना का मुकाबला करने के लिये गवर्नर जनरल को लिखा। कर्नल बर जनरल स्मिथ सेनाओं के साथ १८१७ ई० ५ नवम्बर को पूना में पहुंचे। इसी दिन खिड़की का प्रसिद्ध युद्ध हुआ। पेशवा की सेना हार गई। पेशवा प्रसिद्ध पार्वती मन्दिर पर खड़ा हुआ, युद्ध के उतार चढ़ाव को देख रहा था। इस पराजय का जहां एक कारण यह था कि मराठों की सेना में कई स्वामी-द्रोही थे वहां मुख्य कारण यह था कि बापू गोखले जनरल स्मिथ और कर्नल बर की सेनाओं के मिलने से पहले अंगरेज़ी फौजों पर आक्रमण करने में सफल नहीं हो सका। खिड़की के युद्ध में पराजित होकर, बाजीराव पूना से भाग निकला। बापू गोखले की सेना ने इसके बाद कई जगह अंगरेज़ों को हराया परन्तु इसी बीच में बापू गोखले का देहान्त होगया। पेशवा कमज़ोर था, उसमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वह सेना का संचालन कर सके। और बाजीराव ने संधि करने की इच्छा प्रकट की। माल्कम ने पेशवा को ८ लाख की वार्षिक पेन्शन देनी स्वीकार की। इस पर बाजीराव ने १८१८ ई० के जून मास में अंगरेज़ों के हाथ में अपने आपको सौंप दिया।

अंगरेज़ों ने उसे कानपुर के समीप बिठूर स्थान में भेज दिया। वहां पर १८५१ ई० में इस लोक से चल बसा। वह अन्तिम पेशवा था। १८१८ ई० में, इसने [illegible] साल पुत्र नाना साहब को दत्तक पुत्र बनाया और पेशवाओं की [illegible] उसे सौंपी। इस वीर ने भी १८५७ ई० में अपने